इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

भवभूति प्रणीत महावीरचरितम् का आलोचनात्मक अध्ययन

(A Critical Study of Mahavircharitam of Bhavabhuti)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशिका

डा० (श्रीमती) ज्ञान देवी श्रीवास्तव

एम्०ए० (गोल्डमेडलिस्ट) डी०फिल्०

अध्यक्ष

सस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्त्री

सीमा श्रीवास्तव

एम्०ए० (सस्कृत)

शोधच्छात्रा

सस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

[१९९७ ई

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **सीमा श्रीवास्तव** ने अपना शोध–कार्य मेरे निर्देशन मे सम्पन्न किया। इनके शोध–कार्य का विषय ***"भवभूति प्रणीत महावीरचरितम् का आलोचनात्मक अध्ययन"*** था।

डा० (श्रीमती) ज्ञान देवी श्रीवास्तव

एम०ए० (गोल्डमेडलिस्ट) डी०फिल्०

अध्यक्ष

सस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

समर्पण

परमात्म स्वरूप में विलीन
परमप्रिय पिताश्री श्री हरिशंकर लाल
को ऋणरूपेण समर्पित

अन्तत मैं ग्राफिक्स प्वाइन्ट, लका, वाराणसी के प्रोप्राइटर श्री उदय शकर पाण्डेय एव उनके सहयोगी श्री बृन्देश कुमार प्रजापति, श्री आनन्द कुमार पाण्डेय तथा अनुज श्री अजीत कुमार प्रभृति के प्रति भी हृदय से आभारी हूँ जिन्होने सस्कृतनिष्ठ इस शोध–प्रबन्ध के, लेजर प्रिन्टिग द्वारा, मुद्रण के कष्टसाध्य कार्य को सम्पन्न करने मे अपना पूर्ण सहयोग दिया है।

शोध विषय की समीक्षा करने मे मैं कहाँ तक सफल हुयी हूँ, इसका निर्णय करने हेतु प्रकृत शोध–प्रबन्ध नीरक्षीरविवेकी परीक्षको के समक्ष प्रस्तुत है।

सीमा श्रीवास्तव

दिनाक १५–१२–१९९७ (सीमा श्रीवास्तव)

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ सख्या

पृष्ठ सख्या

पृष्ठ सख्या

पृष्ठ सख्या

प्रथम अध्याय

कवि परिचय

प्रथम अध्याय

कवि–परिचय

महाकवि भवभूति आदिकवि वाल्मीकि, अश्वघोष, भास, कालिदास प्रभृति कोविदो के अनन्तर सस्कृत साहित्याकाश मे उद्भूत ऐसे देदीप्यमान नक्षत्र हैं जिन्होने पूर्ववर्ती कवियो के नाट्यवैशिष्ट्यो के अनुकरण के साथ ही अपनी मौलिक प्रतिभा का सम्यक् परिचय दिया है। भवभूति की तीन कृतियॉ उपलब्ध हैं– महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् तथा उत्तररामचरितम्। 'उत्तरेरामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते' – उक्ति उनके करुणरस–प्रतिपादन, प्रतिभा एव वैदुष्य का चरम निदर्शन है। भवभूति प्रथम नाटककार हैं जिन्होने अपने दो रूपको के माध्यम से रामचरित से सम्बद्ध मुख्य घटनाक्रमो को प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। मालतीमाधवम् प्रकरण ग्रन्थ है।

(१) वश तथा गुरु परिज्ञान

भवभूति ने महावीरचरितम् मे अपने वशादिक का सविस्तर परिचय प्रस्तुत किया है जिससे ज्ञात होता है कि दक्षिणापथ मे वर्तमान पद्मपुर इनका वासस्थल था, वहॉ तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध, काश्यपगोत्री, अपनी शाखा मे अग्रणी, पक्तिपावन, गार्हपत्यादिक पञ्चाग्नि के उपासक, चान्द्रायण प्रभृति व्रतो का अनुष्ठान करने वाले, सोमयागकर्त्ता, उदुम्बर उपाधि धारण करने वाले ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण निवास करते थे, उन्हीं के वश मे समुत्पन्न, वाजपेय याग के सम्पादनकर्त्ता महाकवि के अनन्तर पॉचवे वशज भट्टगोपाल के पौत्र तथा नीलकण्ठ एव जतुकर्णी की सन्तान महाकवि भवभूति थे। ये 'श्रीकण्ठपदलाञ्छन', 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' आदि विशेषणो से अलकृत विद्वान् थे।[1] भवभूति के गुरु 'ज्ञाननिधि' महर्षियों मे अगिरा के समान एव योगाभ्यासियो मे श्रेष्ठ, स्वनामानुरूप ज्ञानपुञ्ज थे।[2]

---

१ अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुर नाम नगरम्। तत्र केचित्तैत्तिरीया काश्यपाश्चरणगुरव पक्तिपावना पञ्चाग्नयो धृतव्रता सोमपीथिन उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिन प्रतिवसन्ति। तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो वाजपेययाजिनो महाकवे पञ्चम सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्र पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसभव श्रीकण्ठपदलाञ्छन पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्र कविमित्त्रधेयमस्माकमिति भवन्तो विदाकुर्वन्तु।
–महावीरचरितम् १/४–५

२ श्रेष्ठ परमहसाना महर्षीणा यथाङ्गिरा।
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरु ।। –वही १/५

कवि ने मालतीमाधवम् मे उपर्युक्त परिचय को सक्षेप मे निर्दिष्ट किया है, साथ ही श्रोत्रियब्राह्मणोचित कृत्यो, शास्त्रश्रवण, यज्ञादिक अनुष्ठान आदि का उल्लेख कर श्रोत्रियकुलपरम्परा का गुणकीर्तन किया है।[1] उत्तररामचरितम् मे कवि ने वशादिक का स्वल्प परिचय दिया है।[2] तीनो कृतियो मे परिचय से सम्बद्ध वैभिन्य प्राप्त नहीं होता है।

(२) नाम एव उपाधि

महाकवि भवभूति ने नाटको की प्रस्तावना मे 'श्रीकण्ठपदलाञ्छन भवभूतिर्नाम' निर्दिष्ट किया है जिसकी व्याख्या दो प्रकार से की गयी है – कवि का नाम भवभूति है अथवा श्रीकण्ठ – एतद् विषयक विभिन्न मत प्राप्त होते हैं।

टीकाकार वीरराघव[3], जगद्धर[4], त्रिपुरारि[5] तथा घनश्याम[6] 'श्रीकण्ठ' नाम तथा भवभूति उपाधि मानते हैं। सी० कुन्हनराजा भी कवि का मूल नाम श्रीकण्ठ मानते हैं।[7]

आर्यासप्तशती मे भवभूति से सम्बन्धित एक श्लोक निर्दिष्ट है –

> तपस्वी का गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव।
> गिरिजाया कुच वन्दे भवभूति सिताननौ।।[8]

आर्यासप्तशती के टीकाकार अनन्तपण्डित ने भवभूति कवि की उपाधि तथा वास्तविक नाम 'श्रीधर' निर्दिष्ट किया है– 'श्रीधर' इति कविनाम। भवभूतिरिति 'गिरिजाया कुचौ' इति प्रकरणोत्तर

---

१ ते श्रोत्रियास्तत्त्वविनिश्चयाय भूरि श्रुत शाश्वतमाद्रियन्ते।
इष्टाय पूर्ताय च कर्मणेऽर्थान् दारानपत्याय तपोऽर्थमायु।। –मालतीमाधवम् १/५

२ अस्ति खलु तत्रभवान्काश्यप श्रीकण्ठपदलाञ्छन पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्र।
–उत्तररामचरितम् १/१–२

३ पितृकृतनामेदम्। 'साम्बा पुनातु भवभूति पवित्रमूर्ति' इति श्लोकरचनासन्तुष्टेन राज्ञा भवभूतिरिति ख्यापित।
–महावीरचरितम् टीका (Reference in P V Kane Uttarramchanta of Bhavabhuti, Introduction, P 2

४ नाम्ना श्रीकण्ठ प्रसिद्ध्या भवभूतिरित्यर्थ। –मालतीमाधवम् टीका (Ibid)

५ श्रीकण्ठपद लाञ्छन यस्य स। भवभूतिरिति व्यवहारे तस्यैव नामान्तरम्। –मालतीमाधवम् टीका (Ibid)

६ भवात् शिवात् भूति भस्म सम्पद यस्य ईश्वरेणैव जातु द्विजरूपेण विभूतिर्दत्ता। –उत्तररामचरितम् टीका (द्रष्टव्य डा० अयोध्या प्रसाद सिह भवभूति और उनकी नाट्यकला पृ० ३)

७ C Kunhan Raja (Forward by K M Munshi) - Survey of Sanskrit Literature, P 183 First ed 1962, Bharatiya Vidyabhawan, Bombay

८ वही १/३६

पदवीनाम। किन्तु भवभूति ने नाटको की प्रस्तावना मे 'श्रीकण्ठ' पद का स्पष्टोल्लेख किया है, अतएव अनन्तपण्डित का उपर्युक्त कथन निराधार प्रतीत होता है।

इसके विपरीत कतिपय विद्वान् कवि का नाम भवभूति तथा श्रीकण्ठ 'उपाधि' मानते हैं। प्रो० मिराशी के अनुसार 'लाञ्छन' 'भूषण' आदि पद उपाधि हेतु प्रयुक्त होते हैं, यथा– गउडवहो मे 'कइराय लञ्छणस्स वप्पइरायस्स' मे 'कविराज' वाक्पतिराज की उपाधि हेतु प्रयुक्त है।[१] डा० शारदारञ्जन रे[२] के मत मे 'भवभूतिर्नाम मे प्रयुक्त नाम पद से स्पष्ट है कि यह कवि का नाम है यथा– 'हिमालयो नाम नगाधिराज'[३], 'गिरिप्रस्रवणो नाम'[४], 'श्रमणा नाम सिद्धशबरी'[५] मे नाम पद व्यक्तिविशेष का निर्वचन करता है।

डा० एस० के बेल्वल्कर के अनुसार कवि का पूरा नाम 'श्रीकण्ठ–नीलकण्ठ–उदुम्बर' था कालान्तर मे वे भवभूति के नाम से प्रसिद्ध हुए।[६] डा० कीथ 'श्रीकण्ठ–नीलकण्ठ' नाम मानते हैं।[७] यह मत दक्षिण भारत मे प्रचलित वशादिक से समन्वित सुदीर्घ नाम रखने की परम्परा से प्रभावित प्रतीत होता है।

भवभूति के समकालीन कवि वाक्पतिराज ने 'भवभूति' नाम का ही उल्लेख किया है –

> भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यामृत रसकणा इव स्फुरन्ति।
> यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथानिवेषु।।[८]

---

१ V V Mirashı - Bhavabhutı, P 58, Fırst ed 1974, Motılal Banarası Das

२ Bhavabhutı's Uttarramchantam, Introductıon, P 5-6

३ कुमारसम्भवम् १/१

४ उत्त[illegible] १/२५–२६

५ महावीरचरितम् ५/२७

६ Rama's Later Hıstory or Uttarramchanta (An Ancıent Hındu Drama by Bhavabhutı) - S K Belvalkar, Introductıon, P XXV, note 4, Harvard Unıversıty Part-I, Intro & Translatıon (Harvard Onental Senes Volume 21, Cambndge Massachusetts, Harvard Unıversıty Press, 1915

७ The Sansknt Drama - A B Keıth, P 186, Fırst Indıan edıtıon, 1992, Motılal Banarasıdas Publishers, Del[illegible]

कल्हण[1] तथा राजशेखर[2] ने भवभूति का ही नाम निर्दिष्ट किया है। किन्तु कविकृतियो की अन्तरग समीक्षा से उनकी 'शिव' के प्रति अनन्य भक्ति प्रकट होती है। मालतीमाधवम् के नान्दी श्लोक मे कवि ने भगवान् शिव की स्तुति की है –

> चूडापीडकपालसङ्कुलगलन्मन्दाकिनीवारयो
> विद्युत[illegible]विमिश्रत्विष ।
> पान्तु त्वामकठोरकेतकशिखासन्दिग्धमुग्धेन्दवो
> भूतेशस्य भुजगवल्लिवलयस्रङ्नद्धजूटा जटा ।।[3]

भवभूति के तीनो नाटको का अभिनयस्थल कालप्रियानाथ भी उनकी शिवभक्ति का प्रकाशक है। इसी प्रकार 'श्रीकण्ठपदलाञ्छन' पद भी उनकी शिवभक्ति का अभिव्यञ्जक है। श्रीकण्ठ भगवान् 'शिव' का अपर नाम है।[4] कवि का नाम 'भवभूति' है।

(३) उपनाम

भवभूति ने अपने नाटको मे वश–परिचय देते समय अपने कुल का उपनाम उदुम्बर निर्दिष्ट किया है।[5]

प्रो० मिराशी के अनुसार डा० भण्डारकर, त्रिपुरारि तथा वीरराघव ने 'उदुम्बर' पद का उल्लेख किया है, किन्तु जगद्धर ने 'डम्बरनामान' पद प्रयुक्त कर भ्रामक स्थिति उत्पन्न की है।[6] प्रो० मिराशी के मत मे उदुम्बर (गूलर) एक वृक्ष विशेष है, यह भवभूति का उपनाम नहीं हो सकता है। जगद्धर ने शकानिराकरणार्थ 'डम्बरनामान' पाठ कल्पित किया होगा। मिराशी के अनुसार महाराष्ट्र मे वृक्षविशेष के नामपूर्वक अनेक ग्राम विद्यमान हैं, यथा– अम्बेगॉव, चिन्कोली, पलसगॉव आदि। यवतमाल जिले मे पेनगगा के उत्तरी तटवर्ती 'उमरखेद' नामक ग्राम मे भवभूति के परिवार की कतिपय परम्पराये विद्यमान हैं, सम्भवत यह कवि का मूल स्थान है।[7]

---

१ राजतरगिणी ४/१४४
२ बालरामायण १/१६
३ मालतीमाधवम् १/१
४ उग्र कपर्दी श्रीकण्ठ शितिकण्ठ कपालभृत्। –अमरकोष १/१/३०
५ उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिन प्रतिवसन्ति। –[illegible]म् १/४–५ एव मालतीमाधवम् १/४–५
६ V V Mirashi Bhavabhuti, P 53-4
७ Ibid, P 55

यहाँ विचारणीय है कि भवभूति ने 'उदुम्बर' पद का स्पष्ट प्रयोग किया है अतएव किसी अन्य डम्बर' प्रभृति पद की कल्पना के लिये अवकाश नहीं है। मालतीमाधवम् मे कवि ने कतिपय स्थलो पर सादृश्य अर्थ मे 'डम्बर'[1] पद प्रयुक्त किया है, अतएव यह 'उपनाम' नहीं हो सकता है। कवि ने 'वाजपेययाजिन'[2] विशेषण प्रयुक्त किया है, इस याग मे 'उदुम्बर' लकडी की आवश्यकता होती है। सम्भवत कवि ने इसी कारण 'उदुम्बर' विशेषण प्रयुक्त किया है।

(४) अन्य–नाम–साम्य

(क) भवभूति एव उम्बेक

महाकवि भवभूति के सम्बन्ध मे एक विचारणीय प्रश्न है – क्या महाकवि भवभूति का अपर नाम 'उम्बेक' है ? दोनो को एक व्यक्ति स्वीकार करने मे विद्वानो मे वैमत्य है।

वस्तुत इस शका का मूल कारण स्व० एस०पी० पण्डित को प्राप्त मालतीमाधवम् की एक ५०० वर्ष प्राचीन हस्तलिखित प्रति है। यह प्रति उन्हे इन्दौर के श्री एम०वी० लेले से प्राप्त हुयी है जिसका उल्लेख उन्होने गउडवहो की भूमिका मे किया है। इस हस्तलिखित प्रति से ज्ञात होता है कि इसके तृतीय अक की रचना कुमारिलभट्ट के शिष्य ने की है, षष्ठ अक उम्बेकाचार्य ने लिखा है तथा दशम अक भवभूति ने।[3]

उपर्युक्त प्रति के सम्बन्ध मे यह विचारणीय है कि किसी ग्रन्थ के लेखक क्या कई व्यक्ति हो सकते हैं ? यहाँ तीन व्यक्तियो का उल्लेख है – (१) कुमारिल शिष्य (२) उम्बेक (३) भवभूति। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या कुमारिल के शिष्य कोई अन्य व्यक्ति हैं ?

इसके अतिरिक्त उपर्युक्त सन्दिग्धता का एक अन्य हेतु है, महाकवि भवभूति ने मालतीमाधवम् की प्रस्तावना मे एक पद्य विन्यस्त किया है –

---

१ मालतीमाधवम् ३/७ ६/१६

२ महावीरचरितम् १/४–५

३ इति भट्टकुमारिलशिष्यकृते मालतीमाधवे तृतीयोऽङ्क इति श्रीकुमारिलस्वामिप्रसादप्राप्तवाग्वैभव–श्रीमदुम्बेकाचार्यविरचिते मालतीमाधवे षष्ठोऽङ्क इति श्रीमद्भवभूतिविरचिते मालतीमाधवे दशमोऽङ्क ।
– S P Pandit Introduction to Gaudvaho, P CC Viff (Reference P V Kane Uttarramcharita, Introduction, P 22)

> ये नाम केचिदिह न प्रथयन्त्यवज्ञा जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्न ।
> उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्यय निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ।।[1]

उम्बेक ने उपर्युक्त पद्य 'तात्पर्य टीका' के आरम्भ मे मगलश्लोक के रूप मे उद्धृत किया है।

चित्सुखाचार्य के अनुसार भवभूति एव उम्बेक के मतो मे साम्य है, अतएव दोनो अभिन्न हैं[2] तथा प्रत्यक्स्वरूप भगवान् ने 'तत्वप्रदीपिका' पर 'नयनप्रसादिनी टीका' मे भवभूति तथा उम्बेक का तादात्म्य प्रतिपादित किया है।[3]

डा० कुन्हनराजा के अनुसार टीका के आरम्भ मे 'ये नाम केचिदिह पद्य अनुपयुक्त है, भवभूति मीमासा ग्रन्थ लिखते समय नैराश्यभाव क्यो प्रकट करेगे ? यह पद्य नाटक के लिये उपयुक्त है। किसी अन्य व्यक्ति ने भवभूति तथा उम्बेक को अभिन्न मानकर उक्त श्लोक निर्दिष्ट किया है।[4]

डा० मिराशी[5] के मत मे समस्त ग्रन्थो के आरम्भ मे मगलश्लोक का होना अपरिहार्य नहीं है। मण्डनप्रणीत 'भावनाविवेक' मे मगलश्लोक उपनिबद्ध नहीं है। साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि किसी कवि ने दूसरे कवि का पद्य उदाहरणार्थ ग्रहण न किया हो। यथा– उम्बेक ने शबर एव कुमारिल के विचारो का विश्लेषण करते समय महाभारत का पद्य उद्धृत किया है।[6] डा० कुन्हनराजा ने स्वय तात्पर्यटीका की प्रस्तावना मे उदाहरण दिया है कि टीकाकारो ने अन्य कवियो का श्लोक मगलार्थ प्रयुक्त किया है। यथा– दण्डीप्रणीत 'काव्यादर्श' का श्लोक[7] [illegible] 'सर्वानुक्रमणीभाष्य' मे मगलश्लोक के रूप मे उल्लिखित है।

सम्प्रति विचारणीय है कि उम्बेक कुमारिल के शिष्य थे अथवा नहीं? क्या भवभूति तथा उम्बेक अभिन्न हैं?

---

१ मालतीमाधवम् १/६

२ तथा आप्तवाक्य शब्दप्रमाणमिति नैयायिकानामपि (अलक्षणम्)। आप्तोदीरितवाक्येषु मालतीमाधवादिषु। व्यभिचारान्न तद्युक्तमाप्तत्वस्यानिरुक्तित'।। स्वकपोलकल्पितमालतीमाधवादिवाक्येषु प्रामाण्याभावादतिप्यासि। नहि पुराप्त एव सन् [illegible]टकानाटिका[illegible]दप्रबन्धविरचनमात्रेणानाप्तो भवति भवभूति। उक्त चैतद्भट्टोम्बेकेन। –तत्त्वप्रदीपिका (चित्सुखी) पृ० ४२८

३ [illegible] । एतदेव ग्रन्थान्तरस्थेन तद्वचनेन समतयति उक्त चैतदिति। –वही

४ Tātparyatīka, Introduction, P XXXIII and P XXXIV

५ V V Mirashi Bhavabhuti, P 92-97

६ गुगे[illegible] कार्याकार्यमजानत ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते।। –उद्योगपर्व १७८ ४८, शान्तिपर्व १४० ४८ (Ibid, P 94)

७ चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहसवधूर्मम।
मानसे रमता नित्य सर्वशुक्ला सरस्वती।। –काव्यादर्श १/१ (Ibid, P 95)

डा० मिराशी के अनुसार उम्बेक ने कुमारिल के श्लोकवार्तिक तथा मण्डनप्रणीत भावनाविवेक पर टीका लिखी है, उम्बेक कुमारिल एव मण्डन के परवर्ती रहे होगे, अतएव उम्बेक (७७५–८००ई०) को कुमारिलशिष्य नहीं माना जा सकता है।[1]

पडित बलदेव उपाध्याय के अनुसार महाकवि भवभूति का अपर नाम उम्बेक था, इन्होने अपने गुरु कुमारिल भट्ट के श्लोकवार्तिक पर व्याख्या लिखी थी।[2]

डा० पी०वी० काणे के अनुसार उम्बेक कुमारिल के शिष्य थे।[3] भवभूति ने नाटककार के रूप मे प्रसिद्धि प्राप्त की कालान्तर मे दक्षिण भारत मे क्लिष्ट शास्त्रो की रचना कर 'उम्बेक' के रूप मे प्रख्यात हुये।[4]

उम्बेक मीमासक विद्वान् थे। अतएव इस सम्बन्ध मे विचारणीय है कि भवभूति ने अपने नाटको की प्रस्तावना मे 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' विशेषण प्रयुक्त किया है, इसमे 'वाक्य' पद से मीमासा विषयक नैपुण्य की गर्वोक्ति की है। भवभूति ने 'यद्वेदाध्ययन'[5] मे पूर्वमीमासा के स्वत– प्रामाण्यवाद, 'अम्बुनिमज्जयन्त्यलाबूनि ग्रावाण प्लवन्ते'[6] तथा 'अर्थवाद'[7] आदि का प्रयोग कर मीमासा–विषयक ज्ञान को स्पष्ट किया है। महाभारत के सभापर्व[8] तथा पूर्वमीमासा–सूत्र के शबरभाष्य[9] मे 'अम्बुनि ' वाक्य उल्लिखित है। भवभूति के गुरु 'ज्ञाननिधि' थे। भवभूति के नाटको से उनकी द्रविड भाषा के प्रति अभिरुचि दृष्टिगत होती है।[10]

उपर्युक्त विभिन्न मत–मतान्तरो का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट है कि भवभूति ने अपने गुरु का नाम 'ज्ञाननिधि' निर्दिष्ट किया है। यदि 'कुमारिल' गुरु होते तो कवि ने दोनो गुरुओ का उल्लेख किया होता। कवि ने अपने किसी अन्य नाम 'उम्बेक' का उल्लेख नहीं किया है। उम्बेक

---

१ V V Mirashi Bhavabhuti, P 91
२ सस्कृत साहित्य का इतिहास चतुर्थ सस्करण पृ० ५०२
३ काणे धर्मशास्त्र का इतिहास पञ्चम भाग पृ० ११४
४ P V Kane Uttarramchanta of Bhavabhuti, Introduction, P 25
५ मालतीमाधवम् १/८
६ महावीरचरितम् १/३६–४०
७ उत्तररामचरितम् १/३६–४०
८ वही ६६/११
९ वही १/१/५
१० P V Kane Uttarramcharita of Bhavabhuti, P 25

प्रसिद्ध मीमासक थे। भवभूति ने कतिपय स्थलो पर मीमासा–सम्बन्धी ज्ञान प्रदर्शित किया है, किन्तु मालतीमाधवम् मे साख्य, योग, उपनिषद् आदि सिद्धान्तो का नामोल्लेख किया है, मीमासा का नहीं।[1]

(ख) मण्डन, सुरेश्वर, उम्बेक, विश्वरू' तथा भवभूति

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने स्पष्टरूप से निर्दिष्ट किया है कि जिस प्रतिभाशाली ने नाटको मे अपना नाम भवभूति रखा, मीमासा मे उसी ने अपना नाम उम्बेक रखा तथा कालान्तर मे आचार्य शकर द्वारा सन्यासी बनाये जाने पर उसी का नाम सुरेश्वर पडा'।[2]

माध्वाचार्यप्रणीत शकरदिग्विजय मे मण्डन एव शकराचार्य का शास्त्रार्थ वर्णित है। इसमे लिखा है कि मण्डन का अपर नाम विश्वरूप था –

> अय च पन्था यदि ते प्रकाश्य सुधीश्वरो मण्डनमिश्रशर्मा।
> दिगन्तविश्रान्तयशा विजेयो यस्मिन् जिते सर्वमिद जित स्यात्।। (पृ० २५०)

अपि च

> सदा वदन् योगपद च साम्प्रत स विश्वरूप प्रथितो महीतले। (पृ० २५०)

मण्डन का ही एक अन्य नाम उम्बेक था– उवेक इत्यभिहितस्य हि तस्य लोकै । (पृ० २५१)।

अनेक नामो के सन्दर्भ मे डा० पी०वी० काणे ने निम्नलिखित स्थल उद्धृत किया है कि विश्वरूपाचार्य ने 'याज्ञवल्क्यस्मृति' पर 'बालक्रीडा' नामक टीका लिखी है जिस पर यतीश्वर–वेदात्मन्प्रणीत 'विभावना टीका' के एक पद्य मे वर्णित है कि भवभूति, सुरेश्वर तथा विश्वरूप अभिन्न थे –

> यत्प्रसादादय लोको धर्ममार्गस्थित सुखी।
> भवभूतिसुरेशाख्य विश्वरूप प्रणम्यतम्।।

आनन्दगिरिप्रणीत शकरदिग्विजय के अनुसार मण्डन कुमारिल के भगिनीपति थे, अतएव मण्डन एव कुमारिलभट्ट समकालीन थे। शकरदिग्विजय के अनुसार मण्डन एव शकराचार्य के मध्य

---

१ यद्वेदाध्ययन तथोपनिषदा साख्यस्य योगस्य च। –मालतीमाधवम् १/८ का प्रथमार्ध

२ आचार्य बलदेव उपाध्याय सस्कृत सुकवि समीक्षा, पृ० ३२२

वाद–विवाद के पूर्व ही कुमारिलभट्ट की मृत्यु हो गयी थी। विदारण्यप्रणीत शकरदिग्विजय मे उम्बेक–मण्डन तथा विश्वरूप–मण्डन को अभिन्न बताया गया है। इन प्रमाणो के आधार पर विद्वानो ने पॉचो व्यक्तियो के लिये एक नाम की सकल्पना प्रस्तुत की है, किन्तु कुमारिल का समय ६५०–७००ई० था, मण्डन (६८०–७२०ई०) कुमारिल के परवर्ती थे। उम्बेक एव मण्डन को अभिन्न नहीं माना जा सकता है क्योकि उम्बेक (७००–७५०ई०) कुमारिल के शिष्य थे, उन्होने कुमारिल के श्लोकवार्त्तिक तथा मण्डन के भावनाविवेक पर टीका लिखी थी। मण्डन तथा विश्वरूप भिन्न व्यक्ति हैं। विश्वरूप तथा सुरेश्वर अभिन्न हैं, सन्यासी एव आचार्य शकर के शिष्य होने के पश्चात् विश्वरूप ने अपना नाम सुरेश्वर रखा, इनका रचनाकाल ८००–८४०ई० था।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कुमारिल भट्ट उम्बेक तथा मण्डन से पूर्ववर्ती थे। मण्डन एव उम्बेक मे कालभेद है। मण्डन तथा सुरेश्वर के काल मे १०० वर्ष का अन्तराल है, अतएव इन्हे अभिन्न नहीं माना जा सकता है। विश्वरूप तथा सुरेश्वर एक व्यक्ति हैं। उम्बेक तथा भवभूति का ऐक्य स्वीकार नहीं किया जा सकता है।[2] एक व्यक्ति के सम्बन्ध मे अनेक नामो की सकल्पना उचित प्रतीत नहीं होती है।

(५) जन्मस्थान

भवभूति का जन्मस्थान 'पद्मपुर' किस स्थान से सम्बद्ध है – यह विवादास्पद है। कवि ने महावीरचरितम् तथा मालतीमाधवम् मे दक्षिणापथान्तर्गत 'पद्मपुर' का सम्यक् उल्लेख किया है।[3] मालतीमाधवम् की कतिपय पाण्डुलिपियो मे पाठान्तर है– 'विदर्भेषु पद्मपुर नाम नगरम्'। सम्प्रति दक्षिणापथ से 'दक्षिण भारत' तथा विदर्भ से 'बरार' अभिप्रेत है, प्रचलित है।[4] कामसूत्र के टीकाकार यशोधर के अनुसार दक्षिणापथ नर्मदा नदी का दक्षिणवर्ती प्रान्त है।[5] काव्यमीमासाकार राजशेखर ने दक्षिणवर्ती विदर्भ देश का उल्लेख किया है।[6]

---

१ P V Kane Uttarramchanta of Bhavabhutı, P 22-5
२ द्रष्टव्य प्रकृत शोध प्रबन्ध, पृ० ७
३ 'अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुर नाम नगरम्'। –महावीरचरितम् १/४–५ तथा मालतीमाधवम् १/४–५
४ सस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ पृ० ५१७ १०५६
५ (क) नर्मदाया दक्षिणेन देशो दक्षिणापथ'। -Kāmasūtra, Chaukhamba Sansknt Senes, P 112
(ख) राजशेखर बालरामायण – षष्ठ अक पृ० २०२
६ राजशेखर काव्यमीमासा पृ० ४०–४३

डा० मिराशी के अनुसार टीकाकार जगद्धर मालतीमाधवम् मे वर्णित पद्मावती नगरी तथा पद्मपुर को अभिन्न मानते हैं – 'पद्मनगर पद्मावती'[1] तथा एम०वी० लेले ने भवभूति के तीनो नाटको के अभिनयस्थल कालप्रियानाथ का जमुना के समीपवर्ती काल्पी से साम्य स्थापित किया है तथा काल्पी के दक्षिण मे स्थित पद्मपवाया का पद्मपुर से तथा पद्मपुर का पद्मावती से।[2]

जनरल कनिंघम ने सिन्धु नदी के तटवर्ती नरवार का पद्मावती से साम्य स्थापित किया है, यह ग्वालियर के दक्षिण–पश्चिम मे ४० मील दूरी पर स्थित है।[3]

डा० बेल्वल्कर के अनुसार पद्मावती–वर्णन से स्पष्ट नहीं होता है कि यह कवि का जन्मस्थान है। सम्भवत भवभूति ने वहॉ अधिक समय व्यतीत किया हो। कवि ने जन्मस्थान विदर्भ–स्थित पद्मपुर का स्पष्ट निर्देश किया है, ग्वालियर राज्य के निकट नरवार मे नहीं।[4]

डा० आर०जी० भण्डारकर के अनुसार पद्मपुर नागपुर के अन्तर्गत चन्द्रपुर अथवा चॉदा के समीप स्थित है। यहॉ तैत्तिरीय शाखा के महाराष्ट्री ब्राह्मण भी निवास करते हैं। भवभूति–निर्दिष्ट गोदावरी नदी इस स्थल के निकट प्रवाहित होती है।[5]

प्रो० मिराशी के अनुसार पद्मपुर भण्डारा जिले की आमगॉव जमीन्दारी से ढाई मील दूर एक ग्राम है। मध्यप्रदेशस्थ दुर्ग जिले के पानाबार मोहल्ले से प्राप्त ताम्रपत्र मे प्रवरसेन प्रथम तथा उनके पौत्र का उल्लेख है। पद्मपुर वाकाटको (२५०–५१०ई०) की राजधानी थी। अन्तिम वाकाटक राजा हरिषेण का शासनकाल ५००ई० था। वाकाटको ने उदुम्बर निवासी ब्राह्मणो को सरक्षण प्रदान किया था, जिसमे भवभूति के पूर्वज भी रहे होगे, कालान्तर मे कवि ने कन्नौजनृपति यशोवर्मा का राजाश्रय प्राप्त किया होगा। चॉदा एव भण्डारा जिले मे पद्मपुर, पद्मापुर, पद्म नामक छ ग्राम हैं। भण्डारा जिले मे आमगॉव का समीपवर्ती पद्मपुर ही प्राचीन राजधानी प्रतीत होता है। यहॉ प्राचीन खण्डहर उपलब्ध हैं तथा शिलालेखो मे उत्कीर्ण ग्राम भी विद्यमान हैं। यहॉ भग्न मूर्तियॉ तथा शिल्पकल की

---

१ V V Mirashi Bhavabhuti, P 34

२ Ibid

३ Archaeological Survey Report, Vol II, PP 308-318 (Reference in "Geographical Dictionary of Ancient and Maedeval India - Nando Lal Dey, P 143)

४ Rama's Later History or Uttara-Ramachanta (An Ancient Hindu Drama by Bhavabhuti) - Introduction P XXXVII - Shripad Krishna Belvalkar, Harvard University Part-I Introduction and Translation (Harvard Oriental Series Volume 2), Cambridge Massachusetts, Harvard University Press, 1915

५ भण्डारकर–मालतीमाधवम् टिप्पणी खण्ड, पृ० ३

वस्तुएँ दृष्टिगत हुई हैं। भवभूति ने भी दुर्गम वनो का वर्णन किया है, अत यह स्थल ही प्राचीन पद्मपुर से साम्य रखता है।[1]

प्रो० काणे के अनुसार विदर्भ मे खुदाई–कार्य न होने से आमगॉव के समीपस्थ पद्मपुर को निवास–स्थान नहीं माना जा सकता है। वाकाटको की नन्दिवर्धन तथा प्रवरपुर प्रभृति राजधानी विश्रुत है। मध्य प्रदेश के दुर्ग जिले से प्लेट प्राप्त हुआ है, यह आमगॉव समीपस्थ पद्मपुर से १०० मील दूर है। इस प्लेट मे पद्मपुर का नामोल्लेख मात्र है। अनेक जाली प्लेट भी प्राप्त होते हैं। अतएव इन साक्ष्यो पर आधारित तर्क प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है।[2]

प्रो० मिराशी के अनुसार यद्यपि विदर्भ–स्थित पद्मपुर मे कोई खुदाई–कार्य नहीं हुआ है। वाकाटको के २५ अभिलेखो मे से १४ ताम्रलेखो मे उत्पत्तिस्थान निर्दिष्ट है। ताम्रलेख सुदूर प्रान्त मे मिल सकते हैं, किन्तु ध्वसावशेषो एव मन्दिरो से स्थानान्वेषण हो सकता है। आमगॉव समीपस्थ पद्मपुर मे ध्वसावशेष विद्यमान हैं। ताम्रपत्र मे वाकाटकवशावली का विशद वर्णन है। अतएव भण्डारा जिले का आमगॉव समीपस्थ पद्मपुर ही कवि का जन्मस्थान माना जा सकता है।[3]

डा० आर०जी० हर्शे के अनुसार प्रो० मिराशी ने भारत इतिहास सशोधक मण्डल, पूना मे भण्डारकर के मत का समर्थन किया था। किन्तु सह्याद्रि (मई १९३५) के एक लेख मे उन्होने विचार परिवर्तित कर आमगॉव समीपस्थ पद्मपुर को कवि का जन्मस्थान निर्दिष्ट किया है। 'चॉदा गजेटियर' मे वर्णित है कि रवान्दकीय बल्लालशाह ने १४५०ई० मे चॉदा जिले का पुनर्निर्माण कराया था। उसके पूर्व यह क्षेत्र गहन वन था। यहॉ पर पहले लोकपुर अथवा इन्द्रपुर नामक नगर था। भवभूति के समय भद्रावती कोसलो की राजधानी थी, वहॉ पर हिन्दू मन्दिर एव बौद्ध मठ थे। सम्भवत चन्द्रपुर एव पद्मपुर राजधानी के उपनगर रहे हो। यदि पद्मपुर राजधानी होती तो कवि ने इसका सगर्व उल्लेख किया होता, उन्होने विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर का उल्लेख किया है।[4]

---

१ V V Mirashi Bhavabhuti, P 35-38
२ P V Kane Uttarramcharita of Bhavbhuti, P 7-8
३ V V Mirashi - Bhavabhuti, P 45-52
४ R G Harshe Observations on the Life and Works of Bhavabhuti, P 5-7 (Translated from the Orginal French by Jang Bahadur Khanna), Published by Meharchand Lachhmandas, Delhi First Published French 1938 English 1974

उपर्युक्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य मे अन्तरग समीक्षा अपरिहार्य है। मालतीमाधवम् मे माधव अध्ययन एव मालतीपरिणयार्थ विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर से पद्मावती प्रेषित किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि पद्मावती विदर्भ से बाहर थी। यह कवि के स्थान–परिवर्तन का भी द्योतक है।

दक्षिणप्रदेशस्थ गोदावरी नदी, दण्डकारण्य आदि का विस्तृत वर्णन कवि के दाक्षिणात्य होने की पुष्टि करता है। उत्तररामचरितम् मे राम को द्वादश वर्षों के अनन्तर अभिज्ञान मे कठिनाई प्रतीत होती है। यह घटना प्रकारान्तर से कवि–जीवन पर प्रकाश डालती है। इससे कवि का दक्षिण प्रदेश से सम्बन्ध प्रतीत होता है। कवि के पूर्वजो द्वारा यागादिक–सम्पादन उनकी सुदृढ आर्थिक स्थिति का द्योतक है। भवभूति ने अपनी कृतियो मे किसी राजाश्रय का उल्लेख नहीं किया है, सम्भवत उन्होने तीन ग्रन्थो की रचना के पश्चात् यशोवर्मा का राजाश्रय ग्रहण किया हो। अतएव स्पष्ट है कि कवि दक्षिणप्रान्त के निवासी हैं, उनका जन्मस्थान 'पद्मपुर चॉदा जिले मे स्थित है।

(६) अभिनयस्थल–कालप्रियानाथ

भवभूति के तीनो रूपक कालप्रियानाथ के यात्रावसर पर अभिनीत हुये थे, जिसमे विभिन्न दिशाओ से लोग आते थे। कवि ने नाटको की प्रस्तावना मे स्पष्टोल्लेख किया है –

१– सूत्रधार 'भगवत कालप्रियनाथस्य यात्रायामार्यमिश्रा समादिशन्ति'।[1]

२– सूत्रधार 'सन्निपतितश्च भगवत कालप्रियनाथस्य यात्राप्रसगेन नानादिगन्तवास्तव्यो जन'।[2]

३– सूत्रधार 'अद्य खलु भगवत कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान्विज्ञापयामि'।[3]

कालप्रियनाथ तथा कालप्रियानाथ दो पाठान्तर प्राप्त होते हैं। 'कालप्रियानाथ' पद की व्युत्पत्ति तथा स्थान विवादास्पद है। डा० अयोध्या प्रसाद सिह के अनुसार टीकाकार वीरराघव ने कालप्रिया का अर्थ 'पार्वती' तथा उनके नाथ कालप्रियानाथ का अर्थ 'शिव' माना है।[4] डा० कीथ[5] के

---

१ महावीरचरितम् १/१–२
२ मालतीमाधवम् १/३–४
३ उत्तररामचरितम् १/१–२
४ कालप्रियानाथस्य कालप्रियानाम्बिकापते । (महावीरचरितम् टीका) डा० अयोध्या प्रसाद सिह भवभूति और उनकी नाट्यकला, पृ० ६
५ Dr Keith - The Sanskrit Drama, P 186

अनुसार कालप्रियनाथ उज्जयिनी का महाकाल मन्दिर है। डा० अयोध्या प्रसाद सिह के अनुसार कालप्रियनाथ 'शिव' हैं, किन्तु वे महाकाल से भिन्न हैं।[1]

पी०वी० काणे के अनुसार कालप्रियनाथ सम्भवत पद्मपुर मे ही भगवान् शिव का पूजास्थल हो अथवा उज्जयिनी का महाकाल मन्दिर। ब्रह्मपुराण मे वर्णित है कि मालवाप्रदेशस्थ अवन्ति नगर मे भगवान् शिव का महाकाल मन्दिर था। किसी भी नये कवि का उज्जयिनी के महाकालोत्सव पर नाट्यप्रस्तुति करना प्रेरणाप्रद हो सकता है। महाकाल मन्दिर में सहस्रो स्त्री एव पुरुष ज्योतिर्लिंग–दर्शनार्थ एकत्रित होते हैं। डा० काणे के मत मे महाभारत के अनुशासन पर्व (१७/६४) तथा शान्तिपर्व (२८४/६४) मे भगवान् शिव हेतु 'कालपूजित' तथा 'कालनाथ' आदि पद प्रयुक्त हैं। शिवपुराण प्रभृति ग्रन्थो मे भी 'कालकाल', 'कालयोगी', 'महाकाल' प्रभृति पदो से 'शिव' का अभिधान किया गया है।[2]

डा० करमरकर मालतीमाधवम् के नवम अक मे वर्णित स्वर्णबिन्दु नाम से प्रसिद्ध स्वयभू 'शिवलिग' को 'कालप्रियनाथ' मानते हैं, यह मधुमती तथा सिन्धु नदियो के सगम पर स्थित है।[3] डा० गगासागर राय वर्तमान काल्पी को ही कालप्रिय मानते हैं।[4]

प्रो० मिराशी के अनुसार 'कालप्रियनाथ' का काल्पी–स्थित सूर्य मन्दिर से साम्य है।[5] उनके मत मे वराह पुराण (१७७/५५–५७) मे कृष्ण के पुत्र साम्ब द्वारा कालप्रिय अथवा सूर्य देव की स्थापना का प्रसग वर्णित है। कालप्रिय उत्तरभारत के मध्य प्रान्त मे स्थित था। पुराणो के अनुसार सूर्य देव वहाँ अपराह्न मे वर्तमान रहते थे। वराह पुराण से स्पष्ट है कि कालप्रिय यमुना के दक्षिण तट पर स्थित था। यमुना के तट पर कालप्रिय प्रागण का उल्लेख काम्बे प्लेट मे उत्कीर्ण श्लोक मे प्राप्त होता है।[6] भविष्य पुराण (१/१२६/१६) मे उस स्थल का नामकरण कालप्रिय' निर्दिष्ट है –

---

१ डा० अयोध्या प्रसाद सिह भवभूति और उनकी नाटयकला पृ० ८

२ P V Kane Uttarramchant of Bhavabhutı, P 9-12

३ (क) अय च मधुमतीसिन्धुसमेदपावनो भगवान्भवानीपतिरपौरुषेयप्रतिष्ठ सुवर्णबिन्दुरित्याख्यायते।
–मालतीमाधवम् ६/३–४

(ख) Dr Karmarkar - Bhavabhutı, P 6-7

४ महाकवि भवभूति पृ० २१

५ V V Mırashı Bhavabhuti, P 84

६ यन्माद्यद्द्विपदन्तघातविषम कालप्रियप्रागण तीर्णा यत्तुरगैरगाधयमुना सिन्धुप्रतिस्पर्धिनी। येनेद हि महोदयारि–नगर निर्मूलमुन्मूलित नाम्नाद्यापि जनै कुशस्थलमिति ख्याति परा नीयते।। –Ibıd

सान्निध्य मम पूर्वाह्णे सुतीरे द्रक्ष्यते जनै ।
कालप्रिये च मध्याह्नेऽपराह्णे चात्र नित्यश ।।[1]

काव्यमीमासाकार राजशेखर के अनुसार कालप्रिय गाधिपुर अथवा कन्नौज के दक्षिण मे अवस्थित है।[2]

डा० काणे के अनुसार वराह पुराण भवभूति का परवर्ती ग्रन्थ है। पुराणो मे यह वर्णित नहीं है कि कालप्रियनाथ सूर्यमन्दिर था, प्राचीन एव मध्य काल मे सूर्यमन्दिरो के साथ 'नाथ' पद प्रयुक्त नहीं है।[3]

उपर्युक्त सन्दर्भ मे कविकृतियो की अन्तर्समीक्षा अपरिहार्य है। मालतीमाधवम् मे वर्णित सूर्यप्रार्थना कालसकेतार्थ उपनिबद्ध है। मगलाचरण के रूप मे कवि ने भगवान् शिव की महनीय स्तुति की है, भवभूति के इष्टदेव भगवान् शिव ही प्रतीत होते हैं। अन्य देवगण का उल्लेख उनकी धार्मिक उदारनीति का परिपोषक है।

महाकाल मन्दिर मे नाट्याभिनय होने पर कवि ने सगर्व उल्लेख किया होता, उन्होने 'कालप्रियानाथ' निर्दिष्ट किया है। कालिदास, बाण प्रभृति कवि उज्जयिनी के 'महादेव' को ही महाकाल मानते हैं। भवभूति तथा बाण के रचनाकाल मे १०० वर्षों का अन्तराल है। इतने अल्प काल मे महाकाल का नामपरिवर्तन सम्भव नहीं है।

प्रो० मिराशी का यह आक्षेप है कि यदि भवभूति ने अपने जन्मस्थान पर नाट्यप्रस्तुति की होती तो उन्होने वशादिक का विशद वर्णन नहीं किया होता। किन्तु यह मत युक्तिसगत प्रतीत नहीं होता है। भवभूति के अनुसार कालप्रियानाथ के यात्रामहोत्सव मे नाना दिगन्तो से लोग आते थे।[4] कवि ने प्रथम दो कृतियो मे वशादिक का सविस्तर वर्णन किया है, किन्तु अन्तिम कृति उत्तररामचरितम् में अत्यन्त सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है। अतएव स्पष्ट है कि आरम्भ मे लोग उनके वशादिक से पूर्णरूपेण परिचित नहीं रहे होगें।

---

१ V V Mirashi Bhavabhuti, P 82

२ तथा हि यो वामनस्वामिन पूर्व स ब्रह्मशिलाया ।
पश्चिम यो गाधिपुरस्य दक्षिण स कालप्रियस्योत्तर इति।। –अध्याय १७

३ P V Kane Uttarramcharita of Bhavabhuti, P 16

४ मालतीमाधवम् १/३–४

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि कालप्रियानाथ कवि भवभूति के निवासस्थल मे स्थित कोई मन्दिर था जहॉ विभिन्न दिशाओ से लोग उपस्थित होते थे, वहॉ नाटको का अभिनय भी प्रस्तुत किया जाता था। कवि ने तीनो कृतियो मे शैवभावना की अनवरत पुष्टि की है। अतएव 'कालप्रियानाथ' पद ही उचित प्रतीत होता है। कालप्रिया पार्वती के नाथ हुए भगवान् शिव। अन्यत्र टीकाकारो ने 'कालप्रियनाथ' ह्रस्व पाठान्तर प्रयुक्त कर दिया है जिसके कारण यह तथ्य विवादग्रस्त बन गया है। उनकी शिवविषयिणी भक्ति को देखते हुए स्पष्ट है कि कालप्रियानाथ' से 'शिव' अर्थ ही विवक्षित है।

(७) काल–निर्धारण

भवभूति ने अपने काल एव आश्रयदाता का उल्लेख नहीं किया है। काश्मीरी कवि कल्हणप्रणीत राजतरगिणी (११५८–५६ई०) से ज्ञात होता है कि राजा यशोवर्मा की राजसभा मे भवभूति तथा वाक्पतिराज नामक दो विद्वान् थे।[1] यशोवर्मा को ललितादित्य मुक्तापीड ने परास्त किया था।[2]

वाक्पतिराज ने अपने प्राकृत काव्य गउडवहो मे यशोवर्मा के दिग्विजय का वर्णन किया है, अतएव वह नि सन्देह यशोवर्मा के सभापण्डित थे। वाक्पतिराज ने गउडवहो मे 'भवभूति' का नाम सादर निर्दिष्ट किया है।[3] 'अज्जवि' पद से स्पष्ट है कि भवभूति वाक्पतिराज के पूर्ववर्ती कवि थे।

वाक्पतिराज ने 'गउडवहो' मे एक अशुभ सूर्यग्रहण का उल्लेख किया है जिसके कारण यशोवर्मा की राज्य–स्थिति सकटापन्न हो गयी थी। जैकोबी[4] ने ज्योतिषीय गणना के आधार पर निर्धारित किया है कि यह सूर्यग्रहण १४ अगस्त ७३३ई० को कन्नौज मे दिखाई पडा था। प्रो० मिराशी ने चीनदेशीय इतिहास को प्रामाणिक कहा है। चीनी इतिहास के अनुसार केन्द्रीय भारत के एक राजा इ–चा–फोन–मो ने राज्यारूढ होते ही अपने मन्त्री सेङ्ग–पो–ता को चीनी सम्राट के पास सैन्यसहयोग प्राप्त करने के लिये ७३१ई० मे चीन भेजा था। राजा इ–चा–फोन–मो का राजा

---

१ राजतरगिणी ४/१४४

२ वही ४/१३४ १३५

३ भवभूइ जलहि णिग्गय कव्वामय रसकणा इव फुरन्ति।
जस्स विसेसा अज्जवि वियडेसु कहाणिवेसेसु।। –गउडवहो ७८६

४ Gottinger Gelehrte Anzeigen, Vol II (1888), PP. 67-68

यशोवर्मा से साम्य स्थापित किया गया है जो ७२५ई० मे सिहासनारूढ हुये थे अतएव वह ललितादित्य का समकालीन था।[1]

कल्हणप्रणीत राजतरगिणी (११४८–४९ई०) के अनुसार इस काल (११४८–४९ई०) से ४५५ वर्ष, ७ माह, ११ दिन पूर्व ललितादित्य का राज्यारोहण हुआ था।[2] ११४८ई० से उपर्युक्त तिथि घटाने पर ललितादित्य का राज्यारोहण ६९३–७३०ई० निश्चित होता है। किन्तु यह तिथि जैकोबी की गणना से साम्य नहीं रखती है।

चीनी इतिहास के अनुसार ल्वेन्त–ओ–लो–पिलि (चन्द्रापीड) ने ७१३ई० मे चीनी राजा से अरब पर आक्रमण हेतु सहायता मॉगी थी, यह ललितादित्य के समकालीन थे। अतएव कल्हणकृत गणना मे ३१ वर्ष का अन्तराल है। अतएव ललितादित्य का शासनकाल ७२४–७६१ई० प्रतीत होता है यह तिथि ७३३ई० की सूर्यग्रहण–घटना से भी मेल खाती है, जो यशोवर्मा के काल मे पडा था।[3] जैन कवियो ने यशोवर्मा का राज्यकाल ७२५–७५२ई० निर्धारित किया है।[4] डा० काणे गउडवहो का रचनाकाल ७४०ई० मानते हैं।[5] अतएव भवभूति की पर सीमा अष्टम शती का पूर्वार्ध माना जा सकता है।

भवभूति ने अपनी कृतियो मे वाल्मीकि से लेकर दण्डी पर्यन्त कथानक, शैली आदि का सम्यक् अनुकरण किया है जिससे स्पष्ट है कि वह इनसे परवर्ती कवि थे। भवभूति ने रामचरित से सम्बद्ध दो रूपको मे आदिकवि वाल्मीकि का सादर परिचय प्रस्तुत किया है।[6]

भवभूति ने भास (४००–५००ई०) प्रणीत स्वप्नवासवदत्तम् की पात्र वासवदत्ता को उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया है, जहॉ कामन्दकी मालती को गुप्तपरिणय हेतु प्रेरित करती है।[7] भवभूति ने कालिदासप्रणीत अभिज्ञानशकुन्तलम् तथा विक्रमोर्वशीयम् का भी अनुकरण किया है। उन्होने मालतीमाधवम् मे कामन्दकी द्वारा मालती को परिणयार्थ प्रेरित करने हेतु दुष्यन्त–शकुन्तला तथा

---

१ V V Mirashi Bhavabhuti, P 6

२ Gaudvaho (Second Edition), Introduction, P 42

३ History and Culture of the Indian People, Vol II, P 132 (Reference in V V Mirashi Bhavabhuti, P 6)

४ V V Mirashi Bhavabhuti, P 6

५ P V Kane Uttarramcharita of Bhavabhuti, P 29

६ महावीरचरितम् १/७, उत्तररामचरितम् २/३, ५–६, ७–८

७ वासवदत्ता च पिता सजयाय राज्ञे दत्तमात्मानमुदयनाय प्रायच्छदित्यादि । –मालतीमाधवम् २/७–८

उर्वशी–पुरुरवा का उदाहरण दिया है।[1] कालिदास विरचित गीतिकाव्य मेघदूतम् तथा मालतीमाधवम् के कतिपय श्लोको मे साम्य स्पष्टतया परिलक्षित होता है।[2] कालिदास का समय भी पञ्चम शती तक माना जाता है।

भवभूति की शैली बाणभट्ट की गद्य शैली से प्रभावित है। इन्होने दीर्घसमासबहुल ओजोगुणविशिष्ट शैली का अनुकरण किया है। आचार्य दण्डी ने इसी शैली का काव्यादर्श मे शसन किया है।[3] बाण एव दण्डी सप्तम शती मे वर्तमान थे। बाणभट्ट स्थाण्वीश्वर तथा कान्यकुब्ज के नृपति हर्षवर्धन की राज्यसभा मे महाकवि थे। हर्ष का शासनकाल ६०६–६४७ई० था, अतएव बाण का काल सप्तम शती का पूर्वार्ध माना जा सकता है। बाण ने हर्षचरितम् मे भास, कालिदास, हरिचन्द्र प्रभृति कवियो का नाम निर्दिष्ट किया है, किन्तु भवभूति की प्रशस्ति नहीं की है, इससे प्रतीत होता है कि भवभूति सप्तम शती के पूर्वार्ध तक लब्धप्रतिष्ठ नहीं थे। दण्डी का काल ६६०–६८०ई० माना जाता है, उन्होने अवन्तिसुन्दरीकथा मे सस्कृत एव प्राकृत कवियो कालिदास, सर्वसेन, प्रवरसेन आदि का उल्लेख किया है, किन्तु भवभूति का नहीं।[4]

उपर्युक्त कवियो के कालक्रम पर विचार करने के अनन्तर भवभूति के काल की पूर्व सीमा सप्तम शती का उत्तरार्ध माना जा सकता है।

महाकवि भवभूति के परवर्ती कवियो ने अपनी कृतियो मे इनके रूपको से श्लोक उदाहरणार्थ उपन्यस्त किया है। प्रसिद्ध आलकारिक वामन ने काव्यालकारसूत्रवृत्ति मे महावीरचरितम्[5] के श्लोक को गौडी रीति के उदाहरण के रूप मे उद्धृत किया है तथा उत्तररामचरितम्[6] के श्लोक को रूपक अलकार के उदाहरण के रूप मे। कल्हण के अनुसार वामन जयापीड के सभापण्डित थे –

> मनोरथ शखदत्तश्चटक सन्धिमास्तथा।
> बभूवु कवयस्तस्य वामनाद्याश्च मत्रिण ।।

जयापीड का शासनकाल ७७६–८१३ई० था। अतएव वामन का समय अष्टम शती का उत्तरार्ध तथा नवम शती का प्रथमार्ध माना जा सकता है।

कवि राजशेखर (नवम शती का उत्तरार्ध) ने काव्यमीमासा मे मालतीमाधवम्' का श्लोक उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया है। वह स्वय को वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ तथा भवभूति का अवतार मानते हैं –

बभूव वल्मीकभव पुरा कवि तत प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थित पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखर ।।[१]

आनन्दरामबरुआ ने इस सन्दर्भ मे सर्वथा भिन्न मत प्रस्तुत किया है। उनके मत मे माधवाचार्य प्रणीत शकरदिग्विजय मे वर्णित है कि राजशेखर शकराचार्य के समकालीन थे, अतएव राजशेखर सप्तम शती मे वर्तमान थे।[२] आनन्दरामबरुआ के अनुसार भवभूति तथा वाक्पतिराज अभिन्न हैं, एतदर्थ उन्होने राजतरगिणी का पद्य प्रस्तुत किया है –

कविर्वाक्पतिराज श्रीभवभूत्यादि सेवित ।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ।।[३]

उपर्युक्त पद्य के सन्दर्भ मे आनन्दरामबरुआ का मत है कि भवभूति यशोवर्मा के सभापण्डित थे, किन्तु इन्हे तीनो नाटको का प्रणेता भवभूति नहीं माना जा सकता है। वाक्पतिराज तथा श्री भवभूति के क्रमश प्रयोग से स्पष्ट है कि वाक्पतिराज भवभूति की उपाधि थी। भवभूति की कृतियो अथवा अन्य साक्ष्यो से ज्ञात नहीं होता है कि भवभूति का अपर नाम वाक्पतिराज था। दशरूप तथा मृतसञ्जीवनीछन्दोवृत्ति के अनुसार यह धाराधिपति राजा मुञ्ज की उपाधि थी। भवभूति ने अपनी कृतियो मे कन्नौज की स्थिति का सकेत नहीं किया है।[४] भवभूति कालिदास के परवर्ती तथा अमर सिह के पूर्ववर्ती कवि थे।[५]

किन्तु टोडरमल आनन्दरामबरुआ के मत से सहमत नहीं हैं। इनके अनुसार अनेक शोधकार्यों से सिद्ध हो चुका है कि राजशेखर प्रणीत बालरामायण नवम शती की कृति है। अतएव इससे २०० वर्ष पूर्व भी भवभूति का समय सप्तम शती ही निश्चित होता है। राजतरगिणी वाक्पतिराज तथा

---

१ बालरामायण १/१६
२ Anudoram Borooah Bhavabhuti and his Place in Sanskrit Literature, P 14-15
३ राजतरगिणी ४/१४४
४ Anudoram Borooah Bhavabhuti and his Place in Sanskrit Literature, P 21
५ Ibid, P. 22

भवभूति दो भिन्न व्यक्तियो के अस्तित्व का उल्लेख करती है, अत इन्हे अभिन्न नहीं माना जा सकता है। अमर सिह ५५०ई० मे वर्तमान थे, अत भवभूति का काल पञ्चम शती निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

डा० मिराशी के अनुसार राजशेखर प्रतिहारनृपति महेन्द्रपाल (८८५–६१०ई०) तथा महिपाल (६१०–६१७ई०) तथा कालान्तर मे कल्चुरिनृपति त्रिपुरी के युवराजदेव प्रथम (६१५–६४५ई०) के सभापण्डित थे।[१] अतएव राजशेखर का स्थितिकाल नवम शती का उत्तरार्ध निश्चित होता है।

बल्लाल प्रणीत 'भोजप्रबन्ध' के अनुसार भवभूति तथा कालिदास समकालीन थे। इसमे भवभूति के वाराणसी से आगमन का उल्लेख है – 'देव, वाराणसीदेशादागत कोऽपि भवभूतिर्नाम कविर्द्वारि तिष्ठति'।[२] अन्यत्र भवभूति तथा कालिदास का वार्त्तालाप वर्णित है।[३] किन्तु भोजदेव (११वीं शती) मुञ्जदेव के भ्राता थे। मुञ्जदेव की समकालीन कृति दशरूपक मे भवभूति के श्लोक उद्धृत हैं, अतएव स्पष्ट है कि भवभूति मुञ्जदेव से पूर्ववर्ती थे। भोजप्रबन्ध मे कालिदास, माघ तथा मल्लिनाथ को समकालीन माना गया है। यह एक कल्पनाप्रधान कृति है, अतएव इसके आधार पर किसी कवि का काल निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

डा० आनन्दरामबरुआ के अनुसार भोज एक परिवार है, कोई व्यक्तिगत नाम नहीं है। सभवत भवभूति किसी राजा भोज के दरबार मे रहे हो, किन्तु मुञ्ज के भ्राता राजा भोज के सभापण्डित नहीं थे। कालिदास प्रणीत रघुवश मे 'भोजेन दूतो रघवो विसृष्ट', 'भोजकुलप्रदीप', 'भोजपति' मे 'भोज' पद प्रयुक्त है, अन्यत्र इन्दुमती हेतु 'भोजभगिनी (७/१)', 'भोज्या (६/५६)' तथा 'भोजकन्या (७/३५)' पद निर्दिष्ट है। कालिदास ने निसन्देह राजा भोज का उल्लेख किया है, किन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि वे भोज के समकालीन थे। महाभारत मे वर्णन है– 'अश्वत्थामा च भोजश्च सर्वशस्त्रभृता वरौ (१/१८६/६)'। अतएव स्पष्ट है कि यह एक पारिवारिक नाम है।[४]

---

१ (i) V V Mirashi - Inscriptions of the Kalachuri-Chedi era, Introduction, PP Clxxv f (See V V Mirashi Bhavabhuti, P 10)
(ii) History and Culture of the Indian People, Vol IV The Age of Imperial Kannauj, P 90 (Forward by K M Munshi, Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay, 3ed - R C Majumdars and Others)

२ भोजप्रबन्ध पृ० ११३

३ भवभूति कालिदासकवेर्वाणी कदाचिन्मद्गिरा सह। कलयत्यद्य साम्य चेद्भीता भीता पदे पदे।।
कालिदास 'सखे भवभूते महाकविरसि अत्र किमु वक्तव्यम्। –वही पृ० ११५–७

४ Anudoram Borooah . Bhavabhuti and his Place in Sanskrit Literature, P 20-21

भवभूति ने उत्तररामचरितम् मे 'विवर्त' – मत का उल्लेख किया है[1], जिसके आधार पर कतिपय विद्वान् इन्हे शकराचार्य से परवर्ती मानते हैं। किन्तु यह स्पष्ट हो चुका है कि बोधायन ऋषि ने ब्रह्मसूत्र पर विरचित भाष्य मे 'विवर्त' मत को प्रकारान्तर से पहले ही प्रस्तुत कर दिया था। भवभूति ने ईशावास्योपनिषद्[2] के एक पद्य के आधार पर उत्तररामचरितम् मे पद्य लिखा है।[3] उपर्युक्त व्याख्या मे आचार्य शकर तथा भवभूति मे मतवैभिन्न्य है। अतएव स्पष्ट है कि भवभूति के काल तक शाकरभाष्य उपलब्ध नहीं था।

परवर्ती कवियो सोमदेव (६४०ई०), धनिक (६७४–१०००ई०), अभिनवगुप्त (६८०–१०२०ई०), भोज (१०१०–१०५५ई०), सोड्ढल (१०५०ई०) प्रभृति ने भवभूति का उल्लेख किया है। पाश्चात्य विद्वान् ए० मैकडोनल ने भवभूति का काल अष्टम शती का प्रारम्भ स्वीकार किया है।[4]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भवभूति का काल कालिदास से लेकर बाणभट्ट पर्यन्त (सप्तम शती) के अनन्तर तथा वामन, राजशेखर (नवम शती) प्रभृति कवियो के पूर्व अष्टम शती का पूर्वार्ध है।

(८) व्यक्तित्व–समीक्षा

कवि कृति ही उसके व्यक्तित्व के मूल्याकन का आधार है। भवभूति के पूर्वज तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। अतएव कवि पर वेदसम्मत पारिवारिक वातावरण का प्रभाव पडना स्वाभाविक था।[5]

भवभूति नैष्ठिक ब्राह्मण थे। उन्होने ब्राह्मणोचित गर्वोक्ति तथा कोमल प्रवृत्ति का सम्यक् प्रकाशन किया है। कवि को ब्राह्मण के अपरिहार्य गुण–पवित्रता, माहात्म्य, प्रशसनीय आचरण पर गर्व

---

१ उत्तररामचरितम् ६/६

२ असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृत्ता ।
तार्ँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना ।। –वही १/3

३ अन्धतामिश्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकास्तेभ्य प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिन इत्येवमृषयो मन्यन्ते। –वही ४/३–४

४ Arthur A Macdonell A History of Sanskrit Literature, P 307, Motilal Banarasidas, Delhi, 1st edition, London, 1900, reprinted Delhi, 1971

५ (क) तत्र केचित्तैत्तिरीया काश्यपाश्चरणगुरव पक्तिपावना पञ्चाग्नयो धृतव्रता सोमपीथिन उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिन प्रतिवसन्ति। –[illegible] १/४–५

(ख) ते श्रोत्रियास्तत्त्वविनिश्चयाय भूरिश्रुत शाश्वतमाद्रियन्ते।
इष्टाय पूर्ताय च कर्मणेऽर्थान् दारानपत्याय तपोऽर्थमायु ।। –मालतीमाधवम् १/५

है, न कि अहकार। अनन्त दोषसकुल दर्प वशगौरव एव श्लाघ्य आचरण प्रभृति को विनष्ट कर देता है।[1] ब्राह्मण के वचन गाम्भीर्य से परिपूर्ण तथा पवित्र होते हैं – 'एतानि भगवता साक्षात्कृतब्रह्मणामृषीणा प्रसन्नगम्भीरपावनानि वचनानि'।[2] ब्राह्मण त्रिकालदर्शी होते हैं।[3] श्लाघ्य आचरण ब्राह्मण–गृह मे ही विकसित होता है।[4] नृशसता नामक दोष का वर्णन कवि के हृदयगत कारुण्य का अभिव्यञ्जक है – नृशसता हि नाम पुरुषदोष'।[5]

भवभूति के तीनो रूपको मे हास्य रस का उपन्यास नहीं हुआ है, विदूषक पात्र का अभाव उनके गम्भीर स्वभाव का प्रकाशक है।

कवि को सत्यपरक एव मधुर वाणी अभीष्ट थी। यह अनैश्वर्यनाशक, यश प्रद तथा शत्रुओ का विनाश करने मे सक्षम है, कल्याणप्रद है।[6]

भवभूति ने रूपकत्रय के माध्यम से ब्राह्मण धर्म अथवा हिन्दू धर्म को प्रतिष्ठित करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। उन्होने महावीरचरितम् मे वशादिक वर्णन के समय तैत्तिरीयी, काश्यप, चरणगुरु, पक्तिपावन, सोमपीथी, ब्रह्मवादी आदि धर्मशास्त्र के पारिभाषिक पदो का प्रयोग किया है।[7]

भवभूति ने चतुर्वर्णाश्रम धर्म के नियमो का सविस्तर वर्णन किया है, वैदिक नियमानुसार तप, दर्शन, मैत्री, दाम्पत्य–बन्धन आदि से समन्वित समाज की परिकल्पना की है। कवि ने मूर्तिपूजा तथा हिन्दू देवी एव देवगण की ओर जनमानस का ध्यान समाकृष्ट किया है – जहॉ कामन्दकी मालती को सौभाग्यवर्धनार्थ भगवान् शिव की पूजा हेतु पुष्पचयन के लिये उद्यान मे प्रेषित करती है।[8]

भवभूति ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियो, धर्म–साहचर्य, परस्पर आदान–प्रदान का मालतीमाधवम् मे यथार्थ चित्रण किया है। कतिपय जन हिन्दू धर्म से प्रभावित हो अपने स्वभाव मे

---

१ महा[illegible] ४/२२

२ वही ४/२६–२७

३ ज्ञानज्योति परिगतभवद्भूतभव्या प्रभाव यद्ब्रह्माण कमपि शिशुकेऽप्यत्र सवेदयन्ते। –वही ३/४७ का उत्तरार्ध

४ अस्मद्गृहे पुराणस्य पश्याचारस्य विप्लवम्।। –वही ३/३८ का उत्तरार्ध

५ वही २/४८–४९

६ काम दुग्धे, विप्रकर्षत्यलक्ष्मी, कीर्तिसूते दुर्हृदो निष्प्रलान्ति।
शुद्धा शान्ता मातर मगलाना धेनु धीरा सुनृता वाचमाहु ।। –उत्तररामचरितम् ५/३०

७ महावीरचरितम् १/४–५

८ अद्य कृष्णचतुर्दशीति जनन्या सम मालती शकरपुर गमिष्यति। तत एव किल सौभाग्य वर्धत इति देवताऽऽराधननिमित्त [illegible] लवङ्गिका द्वितीया मालती तदेव कुसुमाकरोद्यानमानेष्यति। –मालतीमाधवम् ३/०–१

परिवर्तन कर रहे थे– कामन्दकी नामक भिक्षुणी प्रवज्या–नियम तथा चीर–धीवर–धर्म के विरुद्ध आचरण करती है तथा मालतीमाधवपरिणयार्थ कृतसकल्प है –

तत्सर्वथा सगमनाय यत्न प्राणव्ययेनापि मया विधेय ।[1]

मकरन्द प्रव्रज्या द्वारा 'विवाह करना अथवा कराना' विषयक निषेध का वर्णन करता है, साथ ही प्रशसा भी करता है।[2]

कवि ने हिन्दू एव बौद्ध सम्प्रदाय के परस्पर आचार–व्यवहार, साहचर्य का सुन्दर निरूपण किया है। बौद्ध धर्मानुयायी ईर्ष्या–द्वेष से रहित हो प्राचीन हिन्दू सहिता का अध्ययन करते थे, भूरिवसु तथा देवरात ब्राह्मण थे, तथापि कामन्दकी एव सौदामिनी आदि बौद्ध स्त्रियॉ उनकी सहपाठिनी थीं।[3]

भूरिवसु ने कामन्दकी को मालतीमाधवपरिणयार्थ नियुक्त किया था, कामन्दकी भी मित्र–कार्य के प्रति निष्ठावान् है।[4]

कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी बौद्ध थी, कालान्तर मे उसने तप, तन्त्र, मन्त्र, योग आदि का अनुष्ठान कर अनेक सिद्धियो को प्राप्त किया था।[5] सिद्धिलब्ध सौदामिनी को कामन्दकी लोकस्तुत्य मानती है।[6]

भवभूति ने तत्कालीन तान्त्रिक समाज का यथार्थ चित्रण किया है। अघोरघण्ट, कपालकुण्डला सौदामिनी आदि पात्र इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। मुण्डधारी अघोरघण्ट पद्मावती नगरी के श्मशान मे निर्मित कराला नामक चामुण्डा मन्दिर के प्रधान गुरु के अधीनस्थ सहायक है, तो उसकी शिष्या कपालकुण्डला भयानक वेष–भूषा से सुसज्जित बौद्ध सन्यासिनी है। सौदामिनी अलौकिकसिद्धि प्राप्त करने वाली कामन्दकी की शिष्या है।

---

१ मालतीमाधवम् ४/५
२ वही ४/६
३ वही १/१०–११
४ वही १/६–१०, १०
५ गुरुचर्यातपस्तन्त्रमन्त्रयोगाभियोगजाम्।
इमामाकर्षिणी सिद्धि मातनोमि शिवाय व ।। –वही ६/५३
६ वही १०/२१

उस समय कराला मन्दिर मे प्रचलित बलिअर्पण की प्रथा का पालन करने के लिये अघोरघण्ट एव कपालकुण्डला ने मालती का चयन करके उस पर बलि–चिह्न भी अकित कर दिया। माधव इस स्थल को अनिष्टसकुल मानता है –

> करालायतनाच्च्वायमुच्चरन्करुणध्वनि ।
> विभाव्यते ननु स्थानमनिष्टाना तदीदृशाम्।।[1]

तान्त्रिक वर्ग गुरु–सपर्या, तप, तन्त्र, मन्त्रादिक द्वारा सिद्धि प्राप्त करता था, वे चामुण्डा देवी के भक्त थे। वे नरकपाल धारण कर अनवरत नरहिसा मे सलग्न रहते थे। अन्त मे गुरु अघोरघण्ट का वध निर्दिष्ट है, इससे कवि का इस सम्प्रदाय के प्रति वैरस्य प्रकट होता है। कवि ने तान्त्रिक समाज मे व्याप्त दोषो, विसगतियो, भ्रष्टाचार, हिसक प्रवृत्ति का तो चित्रण किया ही है, उसके दुष्परिणाम को भी दर्शाया है, फलस्वरूप जनमानस स्वयमेव धर्मपरिवर्तन की ओर प्रवृत्त हो जाता है। भवभूति ने वस्तुत बौद्ध धर्म से अपरति तथा ब्राह्मणधर्मस्थापनार्थ ही अपने रूपको का सृजन किया है।

भवभूति के उपास्य देव कौन हैं? कतिपय विद्वान् उन्हे वैष्णव अतएव रामभक्त मानते हैं तो अन्य शैव मतावलम्बी। कवि ने राम, शिव, सूर्य प्रभृति की स्तुति की है। उन्होने नित्य परब्रह्म की उपासना की है।[2] भवभूति ने सामाजिको को रामचरित से आह्लादित होने की कामना की है।

> प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथम कवीना यत्पावन रघुपते प्रणिनाय वृत्तम्।
> भक्तस्य तत्र समरसत मेऽपि वाचस्तत् सुप्रसन्नमनस कृतिनो भजन्ताम्।।[3]

उपर्युक्त पद्य के सन्दर्भ मे डा० शारदारञ्जन रे[4] का मत है कि भवभूति वस्तुत रामभक्त हैं। कवि ने राम को शरणागत–रक्षक[5] तथा पुराण पुरुष[6] कहा है।

---

१ मालतीमाधवम् ५/२१

२ अथ स्वस्थाय देवाय नित्याय हतपाप्मने।
त्यक्तक्रमविभागाय चैतन्यज्योतिषे नम ।। –महावीरचरितम् १/१

३ वही १/७

४ Bhavabhuti's Uttarramchantam, Introduction, P 8-10

५ महावीरचरितम् ५/४६ का पूर्वार्ध

६ वही ७/२

भवभूति के नाटको का अभिनयस्थल 'कालप्रियानाथ' भगवान शिव हैं।[1] शिव भक्त परशुराम रामवधार्थ दृढप्रतिज्ञ हैं।[2]

कवि ने शिव–जटा की भव्य स्तुति की है, शिव षोडश इडा प्रभृति नाडियो के मध्य वर्तमान आत्मस्वरूप, योगसिद्धि के दाता हैं, स्थिरचित्त साधक उनमे लीन रहते हैं।[3]

भवभूति ने अन्यत्र सूर्य–स्तुति भी की है– उदितभूयिष्ठ एव भगवानशेषभुवनद्वीपदीप। तदुपतिष्ठे। (प्रणम्य)।

कल्याणाना त्वमसि महसा भाजन विश्वमूर्ते ।
धुर्यां लक्ष्मीमिह मयि भृश धेहि देव । प्रसीद।
यद्यत्पाप प्रतिजहि जगन्नाथ । नम्रस्य तन्मे
भद्र भद्र वितर भगवन्भूयसे मगलाय।।[4]

शैव एव वैष्णव धर्मों का आदिस्रोत वेद है। कवि ने वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा की है। प्रकारान्तर से उन्हे रामवन्दनावशात् वैष्णव तथा शिवस्तुतिवशात् शैव माना जा सकता है, वस्तुत वे वैदिक धर्म के प्रतिष्ठापक थे।

(६) पाण्डित्य

भवभूति सुधी दार्शनिक, व्यावहारिक तथा बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न कवि थे, उन्होने न केवल शास्त्र सम्मत सिद्धान्तो का विनियोग कर स्ववैदुष्य का परिचय दिया है अपितु दाम्पत्य–प्रेम, मैत्री आदि का उच्चादर्श स्थापित किया है।

'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' गर्वोक्ति से स्पष्ट है कि वे व्याकरण, मीमासा तथा न्यायशास्त्र मे निष्णात दुर्धर्ष विद्वान् थे। वाग्भारती स्वयमेव इनका अनुकरण करती हैं।[5] भवभूति का पाण्डित्य स्वाभिमान से ओत–प्रोत था। पर व्यक्ति के सम्मुख आत्मसमर्पण उन्हे सह्य नहीं।[6] कवि को अपने पाण्डित्य पर पूर्ण

---

१ द्रष्टव्य प्रकृत शोध प्रबन्ध, पृ० १५

२ महावीरचरितम् २/२८, ३/६

३ मालतीमाधवम् १/१ ५/१

४ वही १/३

५ (क) य ब्रह्माणमिय देवी वाग्वश्येवानुवर्तते। –उत्तररामचरितम् १/२
(ख) वश्यवाच कवेर्वाक्य सा च रामाश्रया कथा। –महावीरचरितम् १/४

६ उत्तररामचरितम् ६/१४

विश्वास है, कहीं न कहीं उनके प्रशसक अवश्य विद्यमान होगे।[1] उनके गुण सत्पुरुषो को स्वत प्रकट हो जाते हैं।[2] कवि को वेद, उपनिषद् तथा साख्य एव योग दर्शन का सम्यक् परिज्ञान था।[3]

भवभूति श्रोत्रिय ब्राह्मण थे, समासमधुपर्क वेद एव धर्मसूत्रकारो द्वारा विहित है।[4] राम शम्बूक को आनन्दमय, दिव्य सम्पत्ति सम्पन्न वैराजलोक मे निवास हेतु आशीर्वाद देते हैं –

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च, यत्रपुण्याश्च सम्पद ।
वैराजा नाम ते लोकास्तैजसा सन्तु ते शिवा ।।[5]

उपर्युक्त पद्य ऋग्वेद के मन्त्र पर आधारित है – 'यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुद प्रमुद आसते'।[6] अरुन्धती ब्राह्मणो के कल्याणप्रद कथन की प्रशसा करती है, जो ऋग्वेद–मन्त्र से साम्य रखता है।[7]

कवि ने अथर्ववेद सम्बन्धी ज्ञान का परिचय दिया है, जहॉ विश्वामित्र राम को तीव्र अभिचारविधि के समान शत्रुहन्ता बताते हैं –

ब्रह्मद्विषो ह्येष निहन्ति सर्वानाथर्वणस्तीव्र इवाभिचार ।[8]

राम परशुराम को अथर्ववेदतुल्य अमित शक्ति से सम्पन्न कहते हैं –

पुण्योऽपि भीमकर्मा निधिर्व्रताना चकास्त्यमितशक्ति ।
मूर्तिमभिरामघोरा बिभ्रदिवाथर्वणो निगम ।।[9]

---

१ ये नाम केचिदिह न प्रथयन्त्यवज्ञा जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्न ।
उत्पत्स्यते ही मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्यय निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ।। –मालतीमाधवम् १/६

२ वही १/७

३ वही १/८

४ (क) सज्ञप्यते वत्सतरी सर्पिष्यन्न च पच्यते।
श्रोत्रिय श्रोत्रियगृहानागतोऽसि जुषस्व न ।। –महावीरचरितम् ३/२
(ख) 'समासो मधुपर्क इत्याम्नाय बहुमन्यमाना श्रोत्रियाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्ष वा पचन्ति गृहमेधिन। त हि धर्म धर्मसूत्रकारा' समामनन्ति। –उत्तररामचरितम् ४/१–२

५ उत्तररामचरितम् २/१२

६ ऋग्वेद ६/११३/११

७ उत्तररामचरितम् ४/१८ –तुलना ऋग्वेद १०/७१/२

८ महावीरचरितम् १/६२

६ वही २/२४

जनक–पुरोहित शतानन्द की प्रशसा[1] ऐतरेयब्राह्मण[2] के समकक्ष है। लव तथा वटुगण के अश्वमेधयाग विषयक वार्त्तालाप मे प्रयुक्त 'काण्ड' पद – 'ननु मूर्खा पठितमेव हि युष्माभिरपि तत्काण्डम्'[3] – शतपथ ब्राह्मण (१३वा अध्याय) तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण (३/८/६/४) मे निर्दिष्ट है जिसमे अश्वो तथा सैनिको की सख्या का उल्लेख है।

भवभूति ने पुराणो मे निर्दिष्ट ज्ञान का निर्देश किया है, परशुराम जनक को सूर्यशिष्य याज्ञवल्क्य का शिष्य बताते हैं –

> त्व ब्रह्मण्य किल परिणतश्चासि धर्मेण युक्त–
> स्त्वा वेदान्तेष्वचरममृषि सूर्यशिष्य शशास।[4]

पुराणो[5] मे याज्ञवल्क्य द्वारा वैशम्पायन से अधीत वेद का वमन तथा सूर्य की कृपा से शुक्ल यजुर्वेद की प्राप्ति वर्णित है।

कवि ने महावीरचरितम् के आरम्भिक पद्य[6] मे उपनिषदो के गूढ तत्त्वो का प्रकाशन किया है, यह श्वेताश्वरोपनिषद्[7] तथा बृहदारण्यकोपनिषद्[8] से साम्य रखता है।

आत्रेयी का कथन 'भूयास उद्गीथविदो वसन्ति'[9] – छान्दोग्योपनिषद्[10] मे वर्णित 'उद्गीथ' पर आधारित है। सीता–विरह से दु खाभिभूत हो जनक आत्महन्ता हेतु अन्धतामिस्र का वर्णन करते हैं – 'अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकास्तेभ्य प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिन इत्येवमृषयो मन्यन्ते'[11] – यह वाक्य ईशावास्योपनिषद् के मन्त्र पर आधारित है।[12]

---

१ न तस्य राष्ट्र व्यथते न रिष्यति न जीर्यति।
त्व विद्वान् ब्राह्मणो यस्य राष्ट्रगोप पुरोहित ।। –महावीरचरितम् ३/१८

२ क्षत्रेण क्षत्र जयति बलेन बलमश्नुते।
यस्यैव ब्राह्मणो विद्वान् राष्ट्रगोप पुरोहित ।। –ऐतरेय ब्राह्मण ८/२५

३ उत्तररामचरितम् ४/२६–२७

४ महावीरचरितम् ३/२६

५ विष्णुपुराण ३/५, श्रीमद्भागवत १२/६, ब्रह्माण्डपुराण २/२५, वायुपुराण १/६१

६ महावीरचरितम् १/१

७ नित्यो नित्याना चेतनश्चेतनाना '। –श्वेताश्वतरोपनिषद् ६/१३ का प्रथमार्ध

८ बृहदारण्यकोपनिषद् ४/४/१६

६ उत्तररामचरितम् २/३ का पूर्वार्ध

१० छान्दोग्योपनिषद् १/१/१

११ उत्तररामचरितम् ४/३–४

१२ ईशावास्योपनिषद् ३

भवभूति द्वारा 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' गर्वोक्ति मे प्रयुक्त 'वाक्य' पूर्वमीमासा विषयक ज्ञान का सकेतक है। राम के कथन मे प्रयुक्त 'अर्थवाद'[1] पद मीमासा[2] का पारिभाषिक शब्द है।

भवभूति ने वेदान्त दर्शन मे उल्लिखित 'विवर्त' ज्ञान का सकेत किया है, विद्याधर की उक्ति द्रष्टव्य है –

> विद्याकल्पेन मरुता मेघाना भूयसामपि।
> ब्रह्मणीव विवर्ताना क्वापि प्रविलय कृत ।।[3]

व्याकरण तो शब्दब्रह्म का रूप है– अथ स भगवान् प्राचेतस प्रथम मनुष्येषु शब्दब्रह्मणस्तादृश विवर्तमितिहास रामायण प्रणिनाय[4] तथा 'शब्दब्रह्मविद कवे परिणता प्राज्ञस्या वाणीमिमाम्'।[5] ब्रह्मज्ञान के अनन्तर ब्रह्म ही प्रिय होता है।[6] तप एव स्वाध्याय से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है –

> लक्ष्यन्ते विविधाश्रमा स्थिरतप स्वाध्यायसाक्षात्कृत–
> ब्रह्माणो निवसन्ति यत्र मुनय कल्पस्थिते साक्षिण ।[7]

सृष्टि का यह नियम है कि प्राणी यहाँ लीन हो जाते हैं – 'एव किलेय पाञ्चभौतिकी सृष्टि'।[8] जीवलोक तो निर्जन वन की भाँति है – 'शून्यारण्यसनिभ पुनरपि मन्दभागिनी विभावयामि जीवलोकमिति'।[9]

भवभूति को साख्य तथा योग दर्शन का भी स्पष्ट ज्ञान था। राम तो पुराणपुरुष तथा सत्त्व, रजस् एव तमस् गुणोपेत प्रकृति के साक्षात् अवतार हैं।[10] यहाँ साख्य सम्मत प्रकृति का निरूपण किया गया है।

---

१ अर्थवाद एवैष । दोष तु मे कथचित्कथय, येन प्रतिविधीयते। –उत्तररामचरितम् १/३६–४०
२ प्रा[illegible]न्यतरपर वाक्यमर्थवाद । –अर्थसग्रह, पृ० १६०
३ उत्तररामचरितम् ६/६
४ वही २/५–६
५ वही ७/२१
६ वही ४/१३
७ महा[illegible] ७/१३
८ वही ६/५६–६०
६ मालतीमाधवम् ७/१–२
१० इद हि तत्त्व परमार्थभाजामय हि साक्षात्पुरुष पुराण ।
त्रिधा विभिन्ना प्रकृति किलैषा त्रातु भुवि स्वेन सतोऽवतीर्णा।। –महावीरचरितम् ७/२

चन्द्रकेतु सत्त्व गुण से प्रकाशित अन्त करण वाले सर्वज्ञ मन्त्रद्रष्टा ऋषियो की प्रशसा करता है – 'अपरेऽपि प्रचीयमानसत्त्वप्रकाशा स्वय सर्वं मन्त्रदृश पश्यन्ति'।[1]

कवि ने योगशास्त्र विषयक ज्ञान का निर्देश किया है। वसिष्ठ परशुराम को ब्राह्मणोचित मार्गावलम्बन का उपदेश देते हैं जिसमे योगशास्त्रीय भावना– मैत्री, विशोका, ऋतम्भराप्रज्ञा आदि वर्णित हैं।[2]

मालतीमाधवम् मे आकर्षिणी सिद्धि का क्रियान्वयन वर्णित है।[3] अन्यत्र कवि ने योग तथा तन्त्र ज्ञान का निरूपण किया है।[4]

भवभूति ने न्यायशास्त्र विषयक ज्ञान का परिचय दिया है। दशरथ द्वारा राजाजनोचित कर्त्तव्य के वर्णन के समय न्यायशास्त्रीय पद प्रयुक्त है –

> अज्ञो वा यदि वा विपर्ययगतज्ञानोऽथ सदेहभृद्
> दृष्टादृष्टविरोधि कर्म कुरुते यस्तस्य गोप्तागुरु ।
> नि सदेहविपर्यये सति पुनर्ज्ञाने विरुद्धक्रिय
> राजा चेत्पुरुष न शास्ति तदय प्राप्त प्रजाविप्लव ।।[5]

सौधातकि की उक्ति 'भो निगृहीतोऽसि'[6] मे प्रयुक्त 'निग्रह' पद न्यायशास्त्र का पारिभाषिक शब्द है, वहॉ निग्रहस्थान षोडशपदार्थों मे परिगणित है।[7] माधव मालती का स्मरण करता है, वहॉ सस्कार, स्मृति, प्रत्यय आदि पारिभाषिक पद प्रयुक्त हैं।[8] भवभूति ने तन्त्रशास्त्र विषयक ज्ञान का अप्रत्यक्ष रूप से प्रकाशन किया है। सौदामिनी तन्त्र–मन्त्र के प्रभाव से आकर्षिणी सिद्धि प्राप्त करती है।[9]

---

१ उत्तररामचरितम् ५/१५–१६
२ [illegible] ३/४–५
तुलना योगसूत्र – मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणा सुखदु खपुण्यापुण्यविषयाणा भावन[illegible]म्'। –१/१३
३ मालतीमाधवम् ६/५३
४ वही ५/१–३ ६–१०
५ महावीरचरितम् ३/३५
६ उत्तररामचरितम् ४/१–२
७ प्रमाणप्रमेयसशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानाना तत्त्व–ज्ञानान्नि श्रेयसाधिगम'। –तर्कभाषा पृ० ८
८ मम हि सप्रति सातिशयप्राक्तनोपलम्भसभावितात्मन सस्कारस्यानवरतप्रबोधात्प्रतीयमानस्तद्विसदृशै प्रत्ययान्तरै–रतिरस्कृतप्रवाह प्रियतमास्मृतिप्रत्ययोत्पत्तिसतानस्तन्मयमिव करोति । –मालतीमाधवम् ५/६–१०
९ वही ६/५३

कवि ने राजनीतिक ज्ञान का यथावसर परिचय दिया है। माल्यवान् शूर्पणखा के समक्ष साम, दाम, दण्ड, भेद आदि का निरूपण करता है तथा छद्मदण्ड का औचित्य बताता है –

दण्डोऽप्यभ्यधिके शत्रौ न प्रकाश प्रशस्यते।
तूष्णींदण्डस्तु कर्त्तव्यस्तस्य चायमुपक्रम ।।[1]

दशरथ दुष्टदमन विषयक कर्त्तव्य का स्मरण करते हैं।[2] राजा राम कर्त्तव्यनिर्वाहार्थ पत्नी का परित्याग करते हैं –

स्नेह, दया च, सौख्य च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।[3]

भवभूति कामशास्त्र मे भी निष्णात थे। मालतीमाधवम् की प्रस्तावना मे प्रयुक्त 'आयोजित कामसूत्र'[4] – कवि के तत्सम्बन्धी ज्ञान का प्रकाशक है। बुद्धिरक्षिता कामसूत्रकार–कथन का वर्णन करती है– 'कुसुमधर्माणो हि योषित सुकुमारोपक्रमा। तास्त्वनधिगतविश्वासै प्रसभमुपक्रम्यमाणा सम्प्रयोगविद्वेषिण्यो भवन्ति'। एव किल कामसूत्रकारा मन्त्रयम्ते।[5]

कवि अर्थशास्त्र से पूर्णतया परिचित थे। माल्यवान् का कथन[6] कौटिल्य के अर्थशास्त्र पर आधारित है।

भवभूति ने लोकव्यवहार विषयक ज्ञान का भी सम्यक् परिचय दिया है। राम तथा सीता का दाम्पत्य–जीवन जनसाधारण हेतु उच्चादर्श है।[7]

सन्तान दम्पत्ति के अन्त करण मे रहने वाली आनन्दग्रन्थि है –

अन्त करणतत्त्वस्य, दम्पत्यो स्नेहसश्रयात्।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते।।[8]

---

१ महावीरचरितम् ४/४
२ दुर्दान्ताना दमनविधय क्षत्रियेष्वायतन्ते दुर्दान्तस्त्व वयमपि च ते क्षत्रिया शासितार। –वही ३/३४ का पूर्वार्ध
३ उत्तररामचरितम् १/१२
४ मालतीमाधवम् १/४
५ वही ७/०–१ –तुलना कामसूत्र, पृ० १४४
६ 'लघ्वपि व्यसनपदमभियुक्तस्य कृच्छ्रसाध्य भवति इति। –महावीरचरितम् ४/७–८ –तुलना अर्थशास्त्र ७/५
७ उत्तररामचरितम् १/२७
८ वही ३/१७

भवभूति कर्त्तव्यनिष्ठ हैं, प्रत्येक अवस्था मे इसके पालन पर उन्होने बल दिया है। वानप्रस्थियो द्वारा दैनन्दिक अनुष्ठान का निर्वाह अपरिहार्य है– किन्त्वनुष्ठाननित्यत्व स्वातन्त्र्यमप–कर्षति।[1]

भवभूति उदारचेता तथा सहृदय हैं। अज्ञानी ससार के प्रति उन्होने उदारता प्रदर्शित की है। दुर्मुख पुरवासियो को दुर्जन कहता है तो राम कहते हैं– 'शान्त पाप शान्त पापम्। दुर्जना नाम पौरजानपदा' ?[2] लोक सीता की पवित्रता पर आक्षेप करता है, किन्तु अन्त मे सभी इस लोकापवाद की निन्दा करते हैं। नारी जाति के प्रति कवि के मन मे अगाध श्रद्धा है – गुण की पूजा सर्वोपरि है लिग अथवा आयु की नहीं – 'गुणा पूजास्थान गुणिषु, न च लिग न च वय'।[3]

सकल विषयो मे दक्षता और सुभाषित रत्नो के निवेशन का सस्कार– 'सर्वतोमुख वैदग्ध्य–मक्षय्य सुभाषितरत्नसचारसस्करणम्'[4], मेघातिक्रान्त वाणी – 'वागमृतजलासारो जलदजलासारमतिशेते'[5] आदि कथन कवि की आत्मसवित्ति ज्ञापित करते हैं।

महाकवि भवभूति जहॉ प्रथित कवि, नाटककार तथा सुधी दार्शनिक हैं, वहीं मानवीय गुणो से ओत–प्रोत हैं। उन्होने मनूक्त पद्धति के अनुसार मानव हेतु आचारसहिता निर्धारित की है। उनका व्यक्तित्व ब्राह्मणोचित गाम्भीर्य, गर्व एव विनयशीलता आदि से समन्वित है, साथ ही कविसुलभ कोमलता, विदग्धता एव दार्शनिक की सूक्ष्मेक्षिका से युक्त है।

(१०) रूपक–क्रम–विवेचन

कविकृतियो–महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् तथा उत्तररामचरितम् का पौर्वापर्य–क्रम–सम्बन्ध विवादास्पद है। इस सम्बन्ध मे तीन मत हैं। प्रथम मत के पोषक डा० काले, डा० सुरेन्द्रदेव शास्त्री के अनुसार भवभूति के नाटको का क्रम मालतीमाधवम्, महावीरचरितम् तथा उत्तररामचरितम् है। द्वितीय मत के समर्थक डा० करमरकर, डा० मिराशी, डा० अयोध्या प्रसाद सिह, बेल्वल्कर, टोडरमल, भण्डारकर प्रभृति के अनुसार नाटको का क्रम महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् तथा उत्तररामचरितम् है।

---

१ उत्तररामचरितम् १/८
२ वही १/४३–४४
३ वही ४/११
४ मालतीमाधवम् ८/४–५
५ वही १०/१७

तृतीय क्रम महावीरचरितम्, उत्तररामचरितम् तथा मालतीमाधवम् का निर्देश डा० शारदारञ्जन रे तथा डा० आनन्दरामबरुआ ने किया है।

सर्वप्रथम यह तथ्य विचारणीय है कि महाकवि भवभूति की अन्तिम कृति कौन है? डा० आनन्दरामबरुआ के अनुसार मालतीमाधवम् कवि की अन्तिम कृति है, मालतीमाधवम् के पद्य महावीरचरितम् से प्रभावित हैं। उत्तररामचरितम् मे प्रयुक्त 'उत्तर' पद से स्पष्ट है कि महावीरचरितम् के पश्चात् इसकी रचना हुयी है।[1]

डा० शारदारञ्जन रे के अनुसार मालतीमाधवम् कवि की अन्तिम कृति है। उन्होने उत्तररामचरितम् को नाट्यशास्त्रीय नियमो की दृष्टि से न्यूनतर कर दिया है। उत्तररामचरितम् की प्रस्तावना मे सूत्रधार ने अपने कार्यों का उल्लेख किया है तथा आयोध्यक बन जाने का निर्देश किया है।[2] रे के मत मे रगमच के नियमानुसार 'सवृत्त' के अनन्तर (परिक्रम्य निष्क्रान्त) इति प्रस्तावना निर्दिष्ट कर तदनन्तर 'तत प्रविशति कश्चिदायोध्य (समन्तादवलोक्य) भो भो' आदि वाक्याश उपनिबद्ध करना चाहिये था। भवभूति ने मालतीमाधवम् मे इस दोष का परिहार किया है। महावीरचरितम् के आरम्भ मे 'भक्तस्य तत्र समरसत मेऽपि वाच' पद्याश मे प्रयुक्त 'समरसत भूतकालिक पद है। इससे प्रतीत होता है कि कवि ने वस्तु–विन्यास का पहले निरूपण किया होगा। इस सन्दर्भ मे उन्होने एक अन्य परिकल्पना की है कि भवभूति ने उत्तररामचरितम् की रचना मालतीमाधवम् से पहले की होगी।[3]

डा० सुरेन्द्र देव शास्त्री के अनुसार उत्तररामचरितम् कवि की सर्वोत्तम कृति है।[4]

डा० भण्डारकर के अनुसार उत्तररामचरितम् मे प्रयुक्त 'शब्दब्रह्मविद कवे परिणतप्रज्ञस्य वाणीमिमाम्'[5] से स्पष्ट है कि यह कृति उनके प्रौढ मस्तिष्क की देन है।[6] पराकाष्ठा होने पर कवि रचना आरम्भ करता है, न कि समापन। बौद्धिक क्षमता का उत्कर्ष आयु की अपेक्षा नहीं रखता।

---

१ Anudoram Borooah Bhavabhuti and his Place in Sanskrit Literature, P 26

२ एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्यकस्तदानीतनश्च सवृत्त । –उत्तररामचरितम् १/२–३

३ Dr Sharda Ranjan Ray Uttarramcharitam (6th edition), Introduction, P 12-17

४ डा० सुरेन्द्र देव शास्त्री कालिदास और भवभूति के नाटको का तुलनात्मक अध्ययन पृ० ४४ सस्करण १९६९ साहित्य भण्डार सुभाष बाजार, मेरठ

५ उत्तररामचरितम् ७/२१

६ R G Bhandarkar Malatimadhava (1905), Introduction, P X

उत्तररामचरितम् के आरम्भ मे पद्य है –

> इद कविभ्य पूर्वेभ्यो नमोवाक प्रशास्महे।
> विन्देम देवता वाचममृतामात्मन कथाम्।।[१]

उपर्युक्त पद्य से स्पष्ट है कि कवि ने 'परिणतप्रज्ञ का प्रयोग आदिकवि वाल्मीकि के प्रति आदरप्रकाशनार्थ प्रयुक्त किया है। इस सन्दर्भ मे विद्यासागर का पद्य द्रष्टव्य है –

> वाल्मीके परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपा बुधा ।
> शब्दब्रह्म विद कवे परिणतप्रज्ञस्य वाणीमिमाम्।।

कतिपय पाण्डुलिपियो मे 'वाल्मीकि' के स्थान पर 'तामेताम्' पद प्रयुक्त है, अतएव भण्डारकर प्रभृति विद्वानो ने 'परिणतप्रज्ञ' आदि विशेषण कवि हेतु प्रयुक्त माना है। किन्तु यह तर्क व्याकरण सम्मत नहीं है। कवि ने वस्तुत वाल्मीकि हेतु विशेषण प्रयुक्त किया है, प्रकारान्तर से इनका कवि हेतु आक्षिप्तत्व सिद्ध होता है। एक अन्य विश्लेषण है कि प्राय नाटककार रूपक की प्रस्तावना मे सहृदयो के प्रति आदरप्रकाशनार्थ उक्ति का निर्देश करता है। यथा भवभूति ने महावीरचरितम् मे उल्लेख किया है –

> वश्यवाच कवेर्वाक्य सा च रामाश्रया कथा।
> लब्धश्च वाक्यनिष्यन्दनिष्पेषनिकषो जन ।।[२]

किन्तु उत्तररामचरितम् मे नैराश्य भाव[३] का प्रकाशन किया है –

> सर्वथा व्यवहर्तव्य, कुतोह्यवचनीयता।
> यथा स्त्रीणा तथा वाचा साधुत्वे दुर्जनो जन ।।

मालतीमाधवम् मे कवि ने आक्रोश[४] व्यक्त किया है –

> ये नाम केचिदिह न प्रथयन्त्यवज्ञा जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्न ।
> उत्पत्स्यते हि मम तु कोऽपि समानधर्मा कालो ह्यय निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।।

अतएव अन्तिम कृति मालतीमाधवम् ही सिद्ध होती है।

---

१ उत्तररामचरितम् १/१
२ महावीरचरितम् १/४
३ उत्तररामचरितम् १/५
४ मालतीमाधवम् १/६

किन्तु मालतीमाधवम् को अन्तिम कृति नहीं माना जा सकता है। भाषा–शैली एव भावाभिव्यञ्जन की दृष्टि से मालतीमाधवम् उत्तररामचरितम् से न्यूनतर है। कवि ने मालतीमाधवम् मे आक्रोश तथा अन्तत उत्तररामचरितम् मे निराशा व्यक्त की है। 'उत्तरेरामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते' उक्ति अध्येतावर्ग को मान्य है। 'कारुण्य भवभूतिरेव तनुते उक्ति उनके करुण रस के प्रतिपादन का उचित विश्लेषण है। भवभूति ने उत्तररामचरितम् मे वशादिक का सक्षिप्त परिचय उपन्यस्त किया है। 'परिणतप्रज्ञस्य' से स्पष्ट है कि उत्तररामचरितम् कवि की परिपक्व प्रतिभा का परिपाक है। उत्तररामचरितम् महावीरचरितम् से परवर्ती रचना है। भवभूति ने महावीरचरितम् मे राम के विवाह, वनगमन से लेकर राज्याभिषेक पर्यन्त विस्तृत कथानक का उपनिबन्धन किया है तथा उत्तररामचरितम् मे राम के राज्याभिषेक के पश्चात् घटित घटनाक्रम का समायोजन किया है, दोनो रामनाटको मे राम के जीवन के मुख्य घटनाक्रम उपनिबद्ध हैं, अतएव कथाक्रम की दृष्टि से स्पष्ट है कि महावीरचरितम् उत्तररामचरितम् से पूर्ववर्ती रचना है। कवि ने महावीरचरितम् मे वश, जन्मस्थान प्रभृति का सविस्तर परिचय दिया है तथा उत्तररामचरितम् मे अल्पतम। काव्यकौशल, रस तथा शैली की दृष्टि से उत्तररामचरितम् सर्वोत्कृष्ट कृति है, इसमे कवि ने नाट्यशास्त्रीय परम्परा का उल्लघन कर अगी रस करुण का प्रतिपादन किया है, इसके विपरीत महावीरचरितम् मे नाट्यशास्त्रीय नियमो का पालन किया है।

एम० आर० काले के अनुसार मालतीमाधवम् कवि की प्रथम कृति है।[1] इस सम्बन्ध मे यह विचारणीय है कि कवि ने प्रकरण के आरम्भ मे वश–प्रशस्ति की है तथा श्रोत्रियब्राह्मणोचित कृत्यो का यशकीर्तन किया है।[2] नवागत कवि आरम्भ मे स्वतन्त्र सरणि के प्रयोग का साहस नहीं कर सकता है। कवि ने श्रृगारप्रधान मालविकाग्निमित्रम् से लेकर अभिज्ञानशकुन्तलम् पर्यन्त कृतियो से सम्बन्धित घटनाक्रम का मालतीमाधवम् मे अनुकरण किया है, उन्हे उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया है। कालिदास प्रणीत विक्रमोर्वशीयम् के चतुर्थ अक मे उर्वशी–विरह से उद्विग्न पुरुरवा का विलाप वर्णित है, तो मालतीमाधवम् के नवम अक मे माधव मालती–विरह से आतुर हो विलाप करता है। मालतीमाधवम् मे मकरन्द तथा पहरेदारो का युद्ध वर्णित है, यह मृच्छकटिकम् मे राजमार्ग पर पहरेदारो के कलह–वर्णन से प्रभावित प्रतीत होता है। भासप्रणीत 'अविमारक' मे हाथी वाली घटना

---

१ M R Kale Malatimadhava (1928), Introduction, P 8-10

२ मालतीमाधवम् १/४–५, १/५

मालतीमाधवम् की सिह वाली घटना से साम्य रखती है। मालतीमाधवम् के कतिपय श्लोक गीतिकाव्य मेघदूत[1] से प्रभावित हैं। मालतीमाधवम् को आद्य कृति मानने का एक मनोवैज्ञानिक कारण है कि शैशव तथा यौवन के सन्धिस्थल पर श्रृगारिक भावो का प्रादुर्भाव होता है। तत्कालीन प्रचलित दीर्घ समास तथा अप्रथित पदो से सुशोभित एव वर्णनप्रधान शैली का मालतीमाधवम् मे सुन्दर प्रयोग हुआ है। महावीरचरितम् मे यह शैली वीररसानुकूल कथानक के सौन्दर्यवर्धन मे सहायक है। यह सर्वथा अस्वाभाविक प्रतीत होता है कि कवि रामकथा सम्बन्धी नाटको के मध्य मे प्रणयप्रधान मालतीमाधवम् का सृजन करे।

भवभूति मे स्ववैदुष्य प्रतिपादन की उत्कट अभिलाषा है। उन्होने महावीरचरितम् की अपेक्षा मालतीमाधवम् मे अधिक निजोक्तियो का प्रयोग किया है।

सम्प्रति महावीरचरितम् का विश्लेषण अपरिहार्य है। महावीरचरितम् मे कवि ने वशादिक का सर्वाधिक विस्तृत परिचय दिया है, इसमे भाषा–शैली तथा मानवीय भावनाओ की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत कम है। 'अपूर्वत्वात् प्रबन्धस्य' प्रयोग से स्पष्ट है कि यह कवि की प्रथम कृति है, इसके पूर्व किसी अन्य रचना का सकेत नहीं मिलता है। मालतीमाधवम् मे भी 'अपूर्ववस्तुप्रयोगेण' वाक्य प्रयुक्त है, यहाँ अपूर्व का अर्थ विचित्र कथावस्तु माना जा सकता है। सम्भवत कवि को रामकथा से भिन्न श्रृगारप्रधान इतिवृत्त सहृदयो के समक्ष प्रस्तुत करना अभीप्सित है। मालतीमाधवम् मे 'ये नाम केचिदिह ' द्वारा जो आक्रोश व्यक्त किया गया है, यह स्पष्ट करता है कि मालतीमाधवम् प्रथम कृति नहीं है। कवि ने प्रथम कृति से ख्याति प्राप्त न होने पर ही इसकी रचना की होगी।

उपर्युक्त विवेचन से यह तथ्य सुस्पष्ट है कि भवभूति की रचनाओ का कालक्रम महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् तथा उत्तररामचरितम् है। करमरकर, मिराशी प्रभृति विद्वानो ने भी इसी मत का समर्थन किया है।[2]

■

---

१ मालतीमाधवम् ६/२७ तुलना मेघदूतम् २/४०

२ (i) R D Karmarkar Bhavabhuti, P 20
(ii) V V Mirashi Bhavabhuti, P 72-73
(iii) S K Belvalkar Rama's Later History or Uttarramchant, Introduction
(iv) Todarmall Mahavirchanta, Introduction, P XXXI
(v) Dr R G Bhandarkar Malatimadhava (1905), Introduction, P X
(vi) डा० अयोध्या प्रसाद सिह भवभूति और उनकी नाट्यकला, पृ० २५–३२

द्वितीय अध्याय

नाटक का कथानक

द्वितीय अध्याय

नाटक का कथानक

महावीरचरितम् महाकवि भवभूति की प्रथम कृति है। प्रकृत रूपक का उपजीव्य आदिकवि वाल्मीकि प्रणीत रामायण है।[1] इसके सात अको मे राम के विवाह से लेकर राज्याभिषेक पर्यन्त कथाभाग का उपनिबन्धन किया गया है। महावीरचरितम् मे कवि ने वीर रसानुकूल कथानक का सृजन किया है, कहीं महत्त्वपूर्ण घटनाओ का सफल मञ्चन है, तो कहीं आनुषगिक घटनाक्रम की सूचना मात्र दी गयी है। ये समस्त घटनाक्रम परस्पर आबद्ध हैं। सूच्य घटनाक्रम का यथास्थान स्पष्टीकरण भी किया गया है, अतएव कथानक मे गत्यवरोध उपस्थित नहीं होता है। महावीरचरितम् का कथानक इस प्रकार है –

प्रथम अक

महावीरचरितम् का अभिनय कवि ने कालप्रियानाथ के यात्रावसर पर प्रस्तुत किया है, सूत्रधार कवि के वशादिक का परिचय देता है, तत्पश्चात् बताता है – महर्षि विश्वामित्र महाराज दशरथ के घर से राम एव लक्ष्मण को साथ लेकर तपोवन लौट आये हैं। यज्ञावसर पर रामादिक के आनयन हेतु विश्वामित्र का मूलभूत उद्देश्य है – रावणवधार्थ राम के पराक्रम का विस्तार एव राम–सीता–परिणय। इस अवसर पर मुनि विश्वामित्र द्वारा निमन्त्रित किन्तु स्वय यज्ञप्रवृत्त राजा जनक द्वारा भेजे गये उनके अनुज राजा कुशध्वज सीता एव उर्मिला के साथ आते हैं।

एतदनन्तर सीता एव उर्मिला के साथ रथारूढ राजा कुशध्वज रगमच पर प्रविष्ट होते हैं। सीता एव उर्मिला को मुनि विश्वामित्र के यथोचित अभिवादनार्थ निर्देश देने के अनन्तर कुशध्वज एव सूत महर्षि विश्वामित्र के आश्चर्यजनक कृत्यो तथा उनके ब्राह्म तेज के सम्बन्ध मे परस्पर वार्त्तालाप

---

१ (क) वश्यवाच कवेर्वाक्य सा च रामाश्रयाकथा। –महावीरचरितम् १/४ का पूर्वार्ध
(ख) प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथम कवीना यत्पावन रघुपते प्रणिनाय वृत्तम्। –वही १/७ का पूर्वार्ध

करते हैं। विश्वामित्र का सिद्धाश्रम नामक आश्रम आने पर सभी रथ से उतरते हैं। सूत प्रस्थान करता है।

तत्पश्चात् राम एव लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र प्रविष्ट होते हैं। विश्वामित्र स्वगत भाषण मे सम्प्रति करणीय राम–सीता–परिणय, यज्ञादिक का स्मरण कर आनन्दित होते हैं तथा राम एव लक्ष्मण को जनक–प्रेषित कुशध्वज, सीता एव उर्मिला के आगमन की सूचना देते हैं। दोनो कुमारो के पूछने पर विश्वामित्र जनक के वश, गुरु आदि का सम्यक् परिचय देते हैं। दोनो कुमार एव विश्वामित्र राजा जनक के घर मे विद्यमान माहेश्वर धनुष् तथा अयोनिजा कन्या सीता के विषय मे वार्त्तालाप करते हैं।

राजा कुशध्वज राम एव लक्ष्मण की वेशभूषा देखकर उनके क्षत्रिय कुमार होने का अनुमान करते हैं। सीता एव उर्मिला दोनो कुमारो को देखकर प्रभावित होती हैं। कुशध्वज विश्वामित्र के निकट जाकर उन्हे प्रणाम करते हैं। विश्वामित्र कुशध्वज का कण्ठालिगन करते हैं तथा जनक एव पुरोहित शतानन्द का कुशलक्षेम पूछते हैं। कुशध्वज जनकादिक के सुखपूर्वक निवास विषयक समाचार देते हैं। सीता एव उर्मिला मुनि विश्वामित्र को प्रणाम करती हैं। राजा कुशध्वज विश्वामित्र को यज्ञभूमि से उद्भूत सीता एव जनकदुहिता उर्मिला का परिचय देते हैं। विश्वामित्र उन्हे आशीर्वाद देते हैं। सीतोत्पत्ति–वृत्तान्त ज्ञात होने पर लक्ष्मण आश्चर्यान्वित होते हैं। सीता के वश, उत्पत्ति, पिता आदि का परिचय ज्ञात होने पर राम सीता के प्रति अनुरक्त हो जाते हैं। कुशध्वज द्वारा दोनो कुमारो का परिचय पूछे जाने पर विश्वामित्र उन्हे दशरथ–पुत्र राम एव लक्ष्मण बताते हैं। राम एव लक्ष्मण कुशध्वज को प्रणाम करते हैं। कुशध्वज दोनो कुमारो का कण्ठालिगन कर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हैं एव राजा दशरथ द्वारा पुत्रेष्टियाग से चारो पुत्रो की प्राप्ति तथा रघुवशियो के हितचिन्तक विश्वामित्र की प्रशसा करते हैं और रघुवशियो की प्रशसा करते हुए कहते हैं कि उनके गुरु महर्षि वसिष्ठ हैं, वे मानव–रक्षा मे रत हैं, सावित्र मनु के वशज हैं, उनका माहात्म्य अनिर्वचनीय है। विश्वामित्र कुशध्वज को रघुवशियो का योग्य स्तुतिकर्त्ता बताते हैं। सभी विश्राम कर विश्वामित्र के आश्रम मे प्रविष्ट होते हैं। विश्वामित्र स्रुवावृक्ष की छाया मे कतिपय क्षण तक विश्राम करने के लिये कहते हैं, सभी आसीन होते हैं।

नेपथ्य मे राम विषयक जयोद्घोष सुनकर सभी आश्चर्यचकित रह जाते हैं। राजा कुशध्वज के पूछने पर विश्वामित्र बताते हैं कि यह महर्षि औचथ्य गौतम की पत्नी, आगिरस शतानन्द की माता अहल्या हैं। इन्द्र अहल्या पर आसक्त थे, फलस्वरूप वे प्रस्तर हो गयी थीं, सम्प्रति राम–प्रभाव से शापविनिर्मुक्त हुयी हैं। राजा कुशध्वज राम के सामर्थ्य से प्रभावित होते हैं। सीता राम की शरीराकृति, प्रभाव आदि पर विचार कर अनुरक्त हो जाती हैं। राजा कुशध्वज सोचते हैं कि यदि आर्य जनक ने शिवधनुष् को चढाने की प्रतिज्ञा नहीं की होती तो राम एव सीता का विवाह हो जाता।

एतदनन्तर तपस्वी राजकार्य से आये हुए रावणपुरोहित सर्वमाय के आगमन की सूचना देता है। सीता एव उर्मिला उसे राक्षस कहती हैं। राम एव लक्ष्मण आश्चर्यान्वित होते हैं। राजा कुशध्वज एव विश्वामित्र सर्वमाय को प्रवेशार्थ अनुमति प्रदान करते हैं। तपस्वी प्रस्थान करता है।

तत्पश्चात् दूत सर्वमाय प्रविष्ट होता है। उसके स्वगत भाषण से ज्ञात होता है कि मातामह माल्यवान् ने सीता के बलपूर्वक ग्रहण से रावण को रोका था, अतएव रावण ने सर्वमाय को सीतावरणार्थ याचना करने हेतु मिथिला प्रेषित किया। सर्वमाय यज्ञप्रवृत्त राजा जनक से मिलकर तथा उनसे निर्दिष्ट हो विश्वामित्र एव कुशध्वज के पास आया है। तत्पश्चात् सर्वमाय विश्वामित्र के पास आता है।

राम–सीता तथा लक्ष्मण–उर्मिला परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। सर्वमाय सीता को देखकर रावण के प्रयत्न की प्रशसा करता है। वह विश्वामित्र को प्रणाम कर राजा कुशध्वज का कुशलक्षेम पूछता है। विश्वामित्र एव कुशध्वज सर्वमाय से रावण की कुशलता पूछते हैं। सर्वमाय सीता–परिणय विषयक रावण का प्रस्ताव प्रस्तुत करता है। सीता राक्षसाभ्यर्थना श्रवण कर भयभीत हो जाती हैं। उर्मिला उद्विग्न होती हैं। कुशध्वज एव विश्वामित्र चिन्तित हो जाते हैं। लक्ष्मण रावण–अभ्यर्थना के सम्बन्ध मे राम से कहते हैं। राम लक्ष्मण से कहते हैं कि कन्या की याचना कोई भी कर सकता है, रावण तो ब्रह्मा के प्रपौत्र एव विश्वजित् हैं। लक्ष्मण राम से कहते हैं कि जिस रावण ने वेदो को नष्ट किया, हमारे पूर्वज अनरण्य का वध किया, यदि ऐसे रावण की आप प्रशसा करते हैं तो यह आपका सौजन्यप्रकाशन मात्र है। राजा कुशध्वज कहते हैं कि शत्रु होने के कारण रावण वध करने योग्य है, किन्तु वह अप्रतिम वीर एव तपस्वी है। लक्ष्मण वीरता के प्रतिकूल आचरणकर्त्ता रावण की

निन्दा करते हैं। राम रावण की प्रशसा करते हैं कि 'यद्यपि वह धर्ममार्ग से विमुख है किन्तु विश्वजित् है'। सर्वमाय रावण के पराक्रम की प्रशसा करता है।

नेपथ्य मे कलकल ध्वनि होती है। राजा कुशध्वज ऋषिगण के सपरिवार आगमन का अनुमान करते हैं, सभी खडे हो जाते हैं।

तत्पश्चात् कपालमाला, अस्थिनिर्मित आभूषणादिक से आकाश को शब्दसकुल करती हुयी भीषणाकृति स्त्री को देखकर लक्ष्मण विश्वामित्र से उसका परिचय पूछते हैं। विश्वामित्र कहते हैं कि यह सुन्द की पत्नी एव मारीच की माता ताटका है। सीता एव उर्मिला के भयाक्रान्त होने पर कुशध्वज उन्हे समाश्वसित करते हैं। विश्वामित्र द्वारा ताटकावधार्थ आदेश प्राप्त होने पर राम उसे स्त्री समझकर सर्वप्रथम प्रवृत्त नहीं होते हैं। कुशध्वज राम के इस विचार को इक्ष्वाकु वश के अनुकूल मानते हैं। ताटका को देखकर धैर्यच्युत न होने वाले राम की सर्वमाय प्रशसा करता है। विश्वामित्र द्वारा ब्राह्मणरक्षार्थ पुनरादेश देने पर राम उनकी आज्ञा वेदतुल्य मानकर ताटकावधार्थ प्रवृत्त होते हैं। सीता भयभीत हो जाती हैं, कुशध्वज धनुष् चढाते हैं, उर्मिला कुशध्वज के इस कृत्य से हतप्रभ रह जाती है। लक्ष्मण समस्त जन का ध्यान मरणासन्न ताटका की ओर आकृष्ट करते हैं। सीता एव उर्मिला आश्चर्यचकित रह जाती हैं। कुशध्वज राम–प्रहार की प्रशसा करते हैं। सर्वमाय ताटका–वध से दुःखी होकर विचार करता है कि 'सम्प्रति रावण का प्रताप समाप्त हो गया है, मैं स्वजन की मृत्यु से उद्विग्न हूँ, किन्तु वृद्ध होने के कारण असमर्थ हूँ'। विश्वामित्र स्वगत भाषण मे इसे राक्षस–सहार का आरम्भ मानते हैं।

सर्वमाय द्वारा प्रस्ताव विषयक पुनर्कथन करने पर विश्वामित्र कहते हैं कि इस सम्बन्ध मे जनक ही निर्णय कर सकते हैं क्योकि वे कन्या के पिता हैं तथा वश मे ज्येष्ठ एव स्वामी हैं। सर्वमाय कहता है कि जनक ने इस सम्बन्ध मे कुशध्वज एव विश्वामित्र को उत्तरदायी माना है।

मुनि विश्वामित्र सम्प्रति दिव्यास्त्र–प्रदान का उचित समय विचार कर भगवान् कृशाश्व से प्राप्त जृम्भकास्त्र प्रभृति दिव्यास्त्रो को राम के लिये प्रकाशित करते हैं। कुशध्वज इसे विश्वामित्र का रघुकुल पर अनुग्रह मानते हैं। लक्ष्मण देवगण द्वारा पुष्पवृष्टि एव दुन्दुभि–वादन की सूचना देते हैं। सर्वमाय देवगण के समर्थन को रावण के प्रतिकूल मानता है। लक्ष्मण एव सीतादिक दिव्यास्त्रो के प्रकाश से आकाश को पीतवर्ण देखकर आश्चर्यान्वित होते हैं। सर्वमाय दिव्यास्त्र–तेज का अवलोकन

कर रावण एव इन्द्र के युद्ध का स्मरण करता है। विश्वामित्र राम को दिव्यास्त्र–स्तुति हेतु आदेश देते हैं।

नेपथ्य मे राम प्रार्थना करते हैं कि 'लक्ष्मण तथा मुझे दोनो को यह दिव्यास्त्र एक साथ प्राप्त हो'। विश्वामित्र एतदर्थ स्वीकृति प्रदान करते हैं। लक्ष्मण दिव्यास्त्र–प्रकाश से आलोकित होते हैं। नेपथ्य मे दिव्यास्त्र राम से प्रार्थना करते हैं कि 'विश्वामित्र से आदिष्ट हो हम आपके अधीन हैं, लक्ष्मण एव आप हमे आदेश दे'। सीता एव उर्मिला देव गण के सम्भाषण से आश्चर्यान्वित रह जाती हैं। नेपथ्य मे राम से यथावसर उपस्थित होने का आदेश प्राप्त होने पर दिव्यास्त्र चले जाते हैं। रामाज्ञा से दिव्यास्त्र–प्रस्थान देखकर लक्ष्मण आश्चर्यान्वित होते हैं। राजा कुशध्वज विश्वामित्र की प्रशसा करते हैं।

तत्पश्चात् कुशध्वज को रामसीतापरिणयार्थ उद्विग्न देखकर विश्वामित्र कहते हैं कि शिव के वरदानवशात् ध्यानमात्र से उपस्थित होने वाला यह धनुष् राम के समक्ष आवे'। कुशध्वज ध्यान करके प्रणाम करते हैं। सर्वमाय कुशध्वज से पूछता है कि 'वह कब तक उपेक्षित रहेगा'। कुशध्वज इस सम्बन्ध मे जनक को ही उत्तरदायी कहते हैं।

नेपथ्य मे कलकल ध्वनि होती है। राम के समक्ष शिवधनुष् प्रकट होता है। सीता सन्देहग्रस्त हो जाती हैं। राजा कुशध्वज एव उर्मिला कामना करते हैं कि प्रत्यञ्चाकर्षण हो जाय। धनुर्भंग होने पर सीता एव उर्मिला प्रसन्न होती हैं। राजा कुशध्वज आश्चर्यान्वित होते हैं। सर्वमाय स्वगत भाषण मे राम–प्रभाव का विचार करता है। लक्ष्मण सोचते हैं कि टकार की ध्वनि शान्त क्यो नहीं हो रही है ? कुशध्वज हर्षातिरेक मे राम का परिरम्भण, चरणवन्दना आदि करना चाहते हैं, राम प्रविष्ट होकर इसे अनुचित कहते हैं। विश्वामित्र कुशध्वज से कहते हैं कि राम पुत्रवत् है। कुशध्वज राम–सीता तथा लक्ष्मण–उर्मिला का विवाह निश्चित करते हैं। सीता एव उर्मिला विलाप करती हैं। सर्वमाय दु खी होता है। विश्वामित्र कुशध्वज से भरत–माण्डवी तथा शत्रुघ्न–श्रुतकीर्ति के विवाह का प्रस्ताव रखते हैं। सर्वमाय विश्वामित्र के इस निर्णय से खिन्न हो जाता है। कुशध्वज इस सन्दर्भ मे जनक, शतानन्द एव विश्वामित्र को निर्णयकर्त्ता बताते हैं। विश्वामित्र कहते हैं कि वे जनक एव शतानन्द से कह देगे। कुशध्वज उपर्युक्त निर्णय सम्प्रति विश्वामित्र पर ही छोड़ देते हैं। विश्वामित्र आकाशस्थ शुन शेप से वसिष्ठ हेतु सन्देश प्रेषित करने के लिये अयोध्या जाने को कहते हैं ताकि वसिष्ठ, ऋषि

गण, दशरथ प्रभृति मिथिला आये, राजा जनक के यज्ञ–समापन के अनन्तर कुमारो का गोदान एव परिणय सम्पन्न हो सके। राम एव लक्ष्मण इसे अत्यन्त प्रीतिकारक कहते हैं। सीता एव उर्मिला प्रसन्न होती हैं कि उन्हे पृथक्–पृथक् नहीं रहना पडेगा। सर्वमाय सीता के प्रकारान्तर से लका–गमन की बात कहता है।

एतदनन्तर नेपथ्य मे कलकल ध्वनि सुनकर राम विश्वामित्र से इस सम्बन्ध मे पूछते हैं। विश्वामित्र कहते हैं कि 'ये सुन्दोपसुन्द के पुत्र सुबाहु एव मारीच हैं, ये यज्ञ मे [illegible] उपस्थित हैं, अतएव इनका वध कर दो'। राम एव लक्ष्मण उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर वेगपूर्वक प्रस्थान करते हैं। सीता एव उर्मिला भयभीत हो जाती हैं। कुशध्वज धनुष् चढाते हैं तथा राम एव लक्ष्मण को सावधान करते हैं। विश्वामित्र कुशध्वज का ध्यान राम के पराक्रम की ओर आकृष्ट करते हैं। सभी प्रस्थान करते हैं।

द्वितीय अक

बैठे हुए, चिन्तामग्न माल्यवान् का प्रवेश होता है। दूत सर्वमाय से ताटका एव सुबाहु का वध, मारीच–पराभव, शिवधनुर्भंग, दिव्यास्त्र–प्रदान आदि वृत्तान्त ज्ञात होने के कारण माल्यवान् रावण के प्रतिकूल भाग्य को सम्प्रति प्रभावशाली मानता है।

शूर्पणखा प्रविष्ट होती है तथा माल्यवान् को विवाहकार्य–सम्पादन, राम को महर्षि अगस्त्य से माहेन्द्र धनुष् की उपहारस्वरूप प्राप्ति आदि समाचार देती है। माल्यवान् देव गण द्वारा स्तुत्य राम के असाधारण चरित, धर्म तथा राक्षसो के धर्मविरुद्धाचरण आदि का विचार कर राम को सहज शत्रु मानता है। शूर्पणखा कहती है कि रावण नतमुख से युक्त है, अतएव उसका दु ख समाप्त नहीं होगा। माल्यवान् रावण की सीताभिलाषा, परोत्कर्ष, मान–यश–ह्रास आदि पर विचार करता है।

तत्पश्चात् प्रतीहार नेपथ्य मे अर्धप्रविष्ट होकर माल्यवान् को दूतागमन की सूचना देता है जिसे माल्यवान् ने परशुराम के पास प्रेषित किया था। माल्यवान् परशुराम का पत्र पढता है जिसमे रावण को सम्बोधित कर लिखा रहता है – "मैंने दण्डकारण्य मे तपस्वी जन को अभयदान दिया था, सम्प्रति वे विराध एव दनुकबन्ध से आक्रान्त हैं। अतएव उन्हे इस कृत्य से विरत कर आप हम लोगो के परस्पर स्नेह–सम्बन्ध की रक्षा करे, अन्यथा मैं रुष्ट हो जाऊँगा"। शूर्पणखा कहती है कि

इसमे गूढ आशय अन्तर्निहित है। माल्यवान् परशुराम के विद्या एव पराक्रम आदि की प्रशसा करता है। शूर्पणखा पूछती है कि इस सम्बन्ध मे सम्प्रति क्या करणीय है ? माल्यवान् शिवशिष्य परशुराम को रामविरुद्ध करने की योजना बनाता है, फलस्वरूप परशुराम के जीतने पर समीहित सिद्धि होगी अथवा राम से परास्त होकर परशुराम अस्त्र–परित्याग कर नि श्रेयससिद्धि मे रत हो जायेगे। परशुराम–विजय के प्रति पूर्णतया आश्वस्त माल्यवान् उन्हे प्रेरित करने हेतु महेन्द्र द्वीप की ओर प्रस्थान करते हैं।

नेपथ्य मे परशुराम मिथिला के राजकर्मचारियो को सम्बोधित कर कहते हैं कि वे कन्यान्त पुर मे स्थित राम से कह दे कि 'मैंने रावण को परास्त करने वाले कार्त्तवीर्य पर विजय प्राप्त की है, क्षत्रियो का सहार, क्रौञ्च पर्वत का भेदन कर पृथ्वी पर हसावतरण, स्कन्द–विजय आदि कार्य किया है, सम्प्रति धनुर्भंगवश क्रुद्ध होकर तुम्हारा अन्वेषण कर रहा हूँ।

तत्पश्चात् धैर्य एव क्रोधयुक्त राम तथा सीता एव सखियॉ प्रविष्ट होते हैं। राम कहते हैं कि 'एक ओर परशुराम द्रष्टव्य हैं तो दूसरी ओर सीता अपना प्रेम प्रकट कर रही हैं'। सखियॉ एव सीता उद्विग्न हो जाती हैं तथा राम को रोकने का प्रयत्न करती हैं, किन्तु राम को पर–पराभव स्वीकार नहीं है। सखियॉ परशुराम द्वारा क्षत्रियसहार, विषयविरक्ति आदि का वर्णन करती हैं, किन्तु राम परशुराम द्वारा कार्तिकेय–विजय के अनन्तर कश्यप मुनि को समस्त पृथ्वी का दान, स्वय समुद्र–प्रदत्त भूमि मे निवास कर तपस्या करने आदि की प्रशसा करते हैं।

एतदनन्तर नेपथ्य से शोकातुर परिजन, प्रहरी गण की उपेक्षा करते हुए, रामान्वेषण करते परशुराम के कन्यान्त पुर मे प्रवेश की सूचना दी जाती है। राम इसे शिष्टाचार का अतिक्रमण कह कर परशुराम के पास प्रस्थान करते हैं। सखियॉ कहती हैं कि 'परिजन विलाप करते हुए इधर–उधर पलायन कर रहे हैं। राजकुमारी ! आप राम से निवेदन करें'। सीता एव सखियॉ राम के पास जाती हैं। सखियॉ राम का ध्यान वेगपूर्वक गमन करती हुयी सीता की ओर आकृष्ट करती हैं। राम सखियो से सीता को आश्वस्त करने के लिये कहते हैं। सखियॉ सीता को धैर्य बॅधाती हैं। राम सीता को भयरहित होने का निर्देश देते हैं।

नेपथ्य मे परशुराम परिचारको से राम के विषय मे प्रश्न करते हैं। सीता राम को जनकागमन पर्यन्त रोकने का अनवरत प्रयत्न करती हैं। सीता का प्रेम देखकर राम किकर्त्तव्यविमूढ

हो जाते हैं। सखियॉ कुठार लिये हुए, जटाधारी, क्षत्रियहन्ता परशुराम का आगमन बताती हैं। राम परशुराम के पराक्रम, वेशभूषा आदि का वर्णन करते हैं तथा सीता को अवगुण्ठन करने का निर्देश देते हैं। सीता भयातुर हो रक्षार्थ निवेदन करती हैं। राम उन्हे 'क्षत्रिया' कहकर धैर्य बॅधाते हैं तथा अपने वशानुकूल क्षत्रियोचित पराक्रम का विश्वास दिलाते हैं।

क्रुद्ध परशुराम प्रविष्ट होते हैं तथा विचार करते हैं कि 'शिवधनुर्भंग के समय क्या राम को शिव, स्कन्द अथवा मेरा भय नहीं था' ? एतदर्थ वह स्वय को उत्तरदायी मानते हैं कि यह उनके शान्तिमार्गावलम्बन का ही दोष है, जिसके फलस्वरूप क्षत्रियो ने विरुद्धाचरण आरम्भ कर दिया है। राम धनुर्प्रयोग तथा चरणवन्दना विषयक आकाक्षा रखते हैं, किन्तु सम्प्रति आचार–पालन को अनुपयुक्त मानकर परशुराम के समक्ष धैर्यपूर्वक उपस्थित होते हैं। परशुराम राम के धैर्य की प्रशसा करते हैं। स्त्रियॉ अमगलनाश की कामना करती हैं। परशुराम के स्वगत भाषण से ज्ञात होता है कि वे राम की मनोहर शरीराकृति से प्रभावित हैं, वे वीरव्रत की क्रूरता को धिक्कारते हैं, किन्तु प्रत्यक्ष रूप मे कुठार–प्रयोग की बात कहते हैं। स्त्रियॉ भयभीत हो जाती हैं। राम धैर्यपूर्वक भार्गव के कुठार का उपहास करते हैं। सखियॉ सीता का ध्यान रामकृत उपहास की ओर आकृष्ट करती हैं। सीता विस्मृत–सी होकर अश्रु प्रवाहित करती हैं।

परशुराम स्वगत भाषण मे कहते हैं कि राम गम्भीरता से परिपूर्ण हैं, किन्तु प्रत्यक्ष रूप मे राम से कहते हैं कि 'यही गुरु का कुठार है'। सखियॉ परशुराम के कोपशमन का अनुमान करती हैं। परशुराम राम से कहते हैं कि उन्हे यह कुठार स्कन्द–विजय के उपलक्ष्य मे भगवान् शिव ने प्रदान किया है। राम परशुराम के पृथ्वीदान, लोकोत्तर चरित आदि की प्रशसा करते हैं। सखियॉ राम को प्रियवादी कहती हैं। परशुराम राम का आलिगन करना चाहते हैं। सखियॉ राम के सौभाग्य की ओर सीता का ध्यान आकृष्ट करती हैं, किन्तु सीता विलाप करती हैं। राम परशुराम की परिरम्भणाभिलाषा को प्रकृतविरुद्ध कहते हैं, सीता राम के विनम्र व्यवहार से प्रभावित होती हैं।

परशुराम के स्वगतभाषण से ज्ञात होता है कि वे राम की [illegible], सौजन्यप्रकाशन, अहकारनिगूढता, बुद्धिनैपुण्य से प्रभावित हैं। अहकार के प्रति आस्थारहित होकर वे राम के धैर्य, पराक्रम, गुण आदि का अपने मन मे वर्णन करते हैं तथा वधू एव स्त्रियो को अन्दर रहने का आदेश देते हैं। राम स्वगत भाषण मे इसका समर्थन करते हैं।

एतदनन्तर नेपथ्य से जनक तथा शतानन्द के आगमन की सूचना दी जाती है। सखियाँ प्रसन्न होकर सीता से अन्दर प्रविष्ट होने का आग्रह करती हैं, सीता सग्रामश्री को प्रणाम करती हैं, सभी स्त्रियाँ प्रस्थान करती हैं।

परशुराम को 'क्षत्रिय' जनक के आगमन से शिरोवेदना होती है। जनक तथा शतानन्द वेगपूर्वक प्रविष्ट होते हैं। जनक शतानन्द को निर्दिष्ट करते हैं कि 'ऋषि के रूप मे आने पर परशुराम को आसन, पाद्य, अर्घ्य प्रदान किया जाय, किन्तु शत्रुरूप मे आने पर धनुर्प्रयोग हो'। तत्पश्चात् दोनो जाते हैं।

राम परशुराम पर दयार्द्र होने का आक्षेप करते हैं। परशुराम कहते हैं कि 'तुम अभिनव परिणीत हो, अतएव मुझे दु ख हो रहा है'। राम के पुन आक्षेप करने पर परशुराम क्रोधोद्दीपित हो कुठार–प्रयोग की बात कहते हैं। राम का पुन व्यग्य सुनकर परशुराम माता का शिरश्छेदन, क्षत्रियसहार विषयक अपने क्रोधी स्वभाव से राम को अवगत कराते हैं। राम इसे क्रूरताजन्य पुरुषदोष की सज्ञा देते हैं। परशुराम क्रोधित होकर कुठारप्रयोग के पूर्व राम को धनुर्प्रयोगार्थ प्रेरित करते हैं। जनक एव शतानन्द द्वारा विरत करने पर राम दु खी हो जाते हैं।

परशुराम शतानन्द के अतिथिसत्कार–प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करते हैं। शतानन्द द्वारा कन्यान्त पुरप्रवेश को मर्यादातिक्रमण कहने पर परशुराम कहते हैं कि अरण्यवासवशात् वे गृहव्यवहार से अनभिज्ञ हैं। परशुराम के अहकार का राम मन ही मन उपहास करते हैं। जनक परशुराम से राम–वध का कारण पूछते हैं। कञ्चुकी राम को ककणमोचनार्थ कन्यान्त पुर मे ले जाने के लिये आदेश माँगता है। लोकाचार कर अविलम्ब प्रस्तुत होने के लिये परशुराम से आदिष्ट हो राम जाते हैं।

तत्पश्चात् सुमन्त्र प्रविष्ट होकर जनक, भार्गवादिक को वसिष्ठ, विश्वामित्र एव दशरथ के पास जाने के लिये निवेदन करते हैं। सभी प्रस्थान करते हैं।

तृतीय अक

वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा जामदग्न्य और शतानन्द प्रविष्ट होते हैं। वसिष्ठ तथा विश्वामित्र परशुराम से दशरथ की शान्तिप्रार्थना का निवेदन करते हैं तथा उन्हे युद्ध से विमुख हो वत्सतरी

मास, घीसस्कृत अन्न से परिपूर्ण आतिथ्यसत्कार ग्रहण करने के लिये कहते हैं। किन्तु परशुराम को शिवधनुर्भंगकर्ता बालक रामकृत तिरस्कार का उचित प्रतीकार प्रदर्शित न करना सह्य नहीं है। महर्षि वसिष्ठ परशुराम को श्रोत्रियोचित मार्गावलम्बन का सदुपदेश देते हैं तथा कहते हैं कि 'ऋषिगण, युधाजित्, राजा रोमपाद, जनक प्रभृति आपसे शान्ति–प्रार्थना कर रहे हैं'। किन्तु जामदग्न्य कहते हैं कि शत्रुनाश के बिना वे शिव एव पार्वती के समक्ष उपस्थित नहीं हो सकते हैं। जामदग्न्य की गुरु–निष्ठा देखकर विश्वामित्र ब्रह्मा के तीन पुत्रो अतएव सगोत्र वसिष्ठ, भृगुपुत्र परशुराम तथा आगिरस–प्रपौत्र शतानन्द का उल्लेख करते हैं। जामदग्न्य इन गुरुजनो के प्रति किये गये अनादर हेतु प्रायश्चित्त करने के लिये तैयार हैं, किन्तु मानरक्षा को सर्वोपरि कहकर युद्धार्थ दृढप्रतिज्ञ रहते हैं। मर्माहत विश्वामित्र से जामदग्न्य सम्प्रति करणीय वीरोचित कार्य विषयक प्रश्न करते हैं। वसिष्ठ सोचते हैं कि 'परशुराम गुणशाली होने पर भी आसुरीप्रवृत्तिवशात् गर्वोद्धत हैं'। विश्वामित्र जामदग्न्य के क्षत्रियसहार, वृद्ध च्यवन प्रभृति के वचनो से कोपविरत होने का उल्लेख करते हैं। जामदग्न्य कहते हैं कि वे च्यवन प्रभृति के कहने से क्रोध तथा परशु को नियमित कर तपस्वी जीवन व्यतीत कर रहे थे, किन्तु सम्प्रति राम का वध कर वन हेतु प्रस्थान करेगे।

शतानन्द कहते हैं कि 'मेरे समक्ष कोई राजा जनक तथा राम का अहित नहीं कर सकता है, अन्यथा हमारे तप एव अगिराकुल को धिक्कार है'। विश्वामित्र शतानन्द की प्रशसा करते हैं कि 'तुम्हारे सदृश पुरोहित से जनक कृतकृत्य हैं, ऐसे राष्ट्ररक्षक पुरोहित से ही राष्ट्र आपत्तिविहीन रहता है'। शतानन्द एव परशुराम परस्पर कठोर वचनो का प्रयोग करते हैं, शतानन्द क्रुद्ध हो शापोदक उठाते हैं।

तत्पश्चात् नेपथ्य से दशरथ शतानन्द को गुणशाली, ब्राह्मण विद्वान्, किन्तु मार्गच्युत परशुराम के प्रति उपर्युक्त कार्य से विरत करते हैं। वसिष्ठ दशरथ–कथन का समर्थन कर शतानन्द को जाबालि के शान्तिहोमसम्पादनार्थ प्रेषित करते हैं। शतानन्द प्रस्थान करते हैं।

दशरथ, राम तथा उनके वशधरो को विनष्ट करने की परशुराम–प्रतिज्ञा सुनकर जनक नेपथ्य से उन्हे सन्नद्ध करते हुए प्रविष्ट होते हैं। जनक कहते हैं कि उनका क्षात्रतेज पुन जागृत हो रहा है। जामदग्न्य जनक से कहते हैं कि 'मैंने [illegible] आपके प्रति नम्र व्यवहार किया था, आप क्यो कठोर व्यवहार कर रहे हैं' ? जनक क्रोधित होकर धनुर्प्रयोग को अवश्यभावी मानते हैं।

परशुराम जनक की गर्वोक्तियो को व्यर्थ प्रलाप कहकर उपहास करते हैं, जनक धनुष् चढाते हैं। नेपथ्य से राजा दशरथ जनक को ब्राह्मण–वध से विरत करते हैं। जनक दशरथ से कहते हैं कि उन्हे 'बालक परशुराम का राम के विरुद्ध अमगल सह्य नहीं है। परशुराम 'बालक' शब्द से तिरस्कृत–सा होकर जनक के अग–प्रत्यगो को विदीर्ण करने की घोषणा करते हैं। राजा दशरथ दोनो को वाक्कलह से रोकना चाहते हैं, किन्तु तिरस्कृत होकर दुर्दान्त परशुरामदमनार्थ क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का कथन करते हैं। परशुराम दशरथ का उपहास करते हैं, तो दशरथ कहते हैं कि 'राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह विरुद्धाचरणकर्त्ता को शासित करे अन्यथा प्रजाविप्लव की सम्भावना रहती है'। विश्वामित्र परशुराम को महर्षि वसिष्ठ से ज्ञानप्राप्त्यर्थ परामर्श देते हैं। धर्म, अध्यात्म तथा धनुर्वेद की शिक्षा शिव से प्राप्त होने के कारण परशुराम वसिष्ठ को प्रतिस्पर्धी नहीं मानते हैं। वसिष्ठ सगोत्र परशुराम मे आचार–ह्रास के कारण दु खी हो जाते हैं। वसिष्ठ का अपमान देखकर जनक, दशरथ तथा विश्वामित्र परशुरामदमनार्थ उद्यत होते हैं। परशुराम तिरस्कृत–सा अनुभव कर क्षत्रियसहारप्रलय की घोषणा करते हैं। वसिष्ठ कहते हैं कि 'वे परशुराम को क्रुद्ध दृष्टि से भस्मसात् कर सकते हैं'। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जाति पर आक्षेप एव राम के प्रति शत्रुवत् व्यवहारार्थ विश्वामित्र परशुराम से रुष्ट हो शापोदक तथा धनुर्प्रयोगार्थ उद्यत होते हैं। परशुराम विश्वामित्र पर कुठार–प्रयोग की बात कहते हैं।

एतदनन्तर नेपथ्य से राम गुरुजनो को प्रणाम कर परशुराम–विजय की घोषणा करते हैं। दशरथ रामागमन को सम्प्रति उचित नहीं मानते हैं। जनक दशरथ को राम–विजय का विश्वास दिलाते हैं। दशरथ आज राम का वास्तविक जन्म मानते हैं। परशुराम राम का उपहास करते हैं। समस्त जन प्रस्थान करते हैं।

चतुर्थ अक

नेपथ्य मे मुनि विश्वामित्र तथा परशुरामजित् राम के यशगान का वैमानिक गण को निर्देश दिया जाता है। माल्यवान् तथा शूर्पणखा विमानारूढ हो प्रविष्ट होते हैं। इन्द्रादिक देव गण द्वारा राम का यशकीर्तन देखकर माल्यवान् उद्विग्न हो जाता है, शूर्पणखा भयाक्रान्त हो जाती है। माल्यवान् को चारो से ज्ञात हुआ है कि दशरथ से दो वर प्राप्त करने वाली भरत की माता कैकेयी ने अपनी दासी मन्थरा को सवाद लेकर मिथिला प्रेषित किया है, वह शूर्पणखा को मन्थरा के छद्मवेष मे मिथिला

जाकर लेख प्रस्तुत करने की छल–योजना निर्दिष्ट करता है। माल्यवान् विचार करता है कि इसके पश्चात् राम के दण्डकारण्य मे पहुँचने पर विराध, दनुकबन्ध से युद्ध, माया–प्रयोग सीता–हरण आदि कार्य सुसाध्य हो जायेगा, लक्ष्मण भी रामवत् वीर तथा पराक्रमी हैं, अतएव दोनो पर छलप्रयोग उचित होगा।

शूर्पणखा को दूरस्थ राम से शत्रुभाव उचित प्रतीत नहीं होता है। माल्यवान् ताटका प्रभृति के सहारक, देवगण द्वारा समर्थित राम को सहज शत्रु बताकर उन पर छद्मदण्ड–प्रयोग को उचित मानता है, सीता–हरण से निष्प्रभ होकर राम सन्धि कर सकते हैं, युद्धार्थ प्रवृत्त होने पर रावण–मित्र वाली वध कर देगा। माल्यवान शूर्पणखा से कहता है कि 'वह रावण की प्रीतिपात्र है, अतएव उससे हृदय दु:ख व्यक्त किया जा सकता है'। माल्यवान् राक्षसो मे प्रवृद्ध सहज वैरभाव के प्रति विचार करता है– 'क्षत्रिय राक्षसो के शत्रु हैं, विभीषण से सर्वदा भय बना रहता है, अविनयी कुम्भकर्ण सदैव निद्रामग्न रहता है, आभिगामिकगुणवशात् प्रजा विभीषण मे अनुरक्त रहती है, खरदूषणादिक धनलोभवश रावण मे मिले रहते हैं'। माल्यवान् प्रमुख राक्षस गण के चरित्र पर विचार कर चिन्तित हो जाता है तथा सुग्रीव–विभीषण–मैत्री, वाली–वध के अनन्तर राम–विभीषण–समागम, रावण–नाश आदि भावी घटनाक्रम पर विचार करता है। शूर्पणखा विलाप करती है। माल्यवान् शूर्पणखा को मिथिला–गमनार्थ आदेश देता है कि सम्प्रति जनक एव दशरथ के पास विश्वामित्र तथा वसिष्ठ नहीं हैं, अतएव यह कार्य सुकर होगा। शूर्पणखा उद्विग्न हो जाती है। माल्यवान् खरदू[illegible] की मृत्यु का विचार कर विलाप करता है। दोनो प्रस्थान करते हैं।

तत्पश्चात् वसिष्ठ एव विश्वामित्र के साथ जनक तथा दशरथ प्रवेश करते हैं। जनक एव दशरथ परस्पर क[illegible] करते हैं। जनक तीनो लोको के लिये कल्याणप्रद रामचरित का गुणकीर्तन करते हैं। वसिष्ठ विश्वामित्र को गले लगाते हैं तथा राम के माहात्म्य से तीनो लोको को कृतकृत्य कहते हैं, विश्वामित्र इसे पुण्यपरिपाक बताते हैं। राजा दशरथ कहते हैं कि 'यह दिलीप प्रभृति की आराधना का ही फल है कि मुनि विश्वामित्र की कृपादृष्टि हमे प्राप्त है'। वसिष्ठ ब्रह्मतेज से दीप्त विश्वामित्र से तथा विश्वामित्र सनत्कुमार एव अगिरा के गुरु वसिष्ठ से प्रशसित होकर स्वय को प्रशसनीय मानते हैं। विश्वामित्र राम के पिता, मनूक्त पद्धति से प्रजापालन करने वाले,

असुर–सहार मे इन्द्र के सेनापति राजा दशरथ की प्रशसा करते हैं। दशरथ पृथ्वीप्रकम्पन से सशयग्रस्त होते हैं।

एतदनन्तर विश्वामित्र परशुराम–पराभव से लज्जावनत राम तथा परशुराम के आगमन की सूचना देते हैं। राम एव परशुराम प्रविष्ट होते हैं। ऋषि–स्तुत्य, विद्या एव तपस्या मे श्रेष्ठ परशुराम से राम अविनयव्यवहारार्थ क्षमाप्रार्थना करते हैं। जामदग्न्य अहकार–दमनार्थ राम के अस्त्र–प्रयोग को उचित बताते हैं। वसिष्ठादिक के समक्ष जाने के लिये राम का निवेदन स्वीकार जामदग्न्य स्वय को शासित मानते हैं, राम उन्हे प्रणाम करते हैं।

विश्वामित्र को प्रणाम कर परशुराम उन्हे राम–निग्रह की सूचना देते हैं तथा विश्वामित्र को धर्मद्रष्टा कहते हैं। जामदग्न्य के स्वभाव–परिवर्तन से प्रसन्न होकर वसिष्ठ उन्हे क्षमा करते हैं। विश्वामित्र शुद्धिकारण एव राजदण्ड का औचित्य प्रतिपादित करते हैं। राम ब्रह्मर्षियो के गाम्भीर्यपूर्ण वचनो से प्रभावित होते हैं। राजा दशरथ स्वभावत पवित्र परशुराम की प्रशसा करते हैं। परशुराम पृथ्वी से विवरप्रदानार्थ प्रार्थना करते हैं तथा जनक–प्रदत्त आसन ग्रहण करते हैं। सभी आसीन होते हैं।

तत्पश्चात् दशरथ जामदग्न्य के चिरप्रतीक्षित समागम, पृथ्वी–दान आदि का कथन कर कहते हैं कि 'पुत्रो के सहित मैं आपका दास हूँ। परशुराम दशरथ के वश, गुरु, पराक्रम, यश आदि की प्रशसा करते हैं। वसिष्ठ एव विश्वामित्र परशुराम के स्वभाव परिवर्तन हेतु राम–प्रभाव को उत्तरदायी मानते हैं। जामदग्न्य राम से वनगमनार्थ आदेश मॉगते हैं। विश्वामित्र भी जाने की इच्छा प्रकट करते हैं। दशरथ राम से विश्वामित्र–गमन विषयक बात कहते हैं। विश्वामित्र राम का कण्ठालिगन कर विलाप करते हैं तथा अनुष्ठानसम्पादन विषयक औचित्य बताते हैं, वसिष्ठ को साथ चलने हेतु आग्रह करते हैं। राजागण ब्रह्मर्षियो की प्रशसा करते हैं।

एतदनन्तर नेपथ्य से सीता ऋषि गण को प्रणाम करती हैं, ऋषि गण उसे रामविजयार्थ आशीर्वाद देते हैं, राम इसे राक्षस–वध के अनन्तर ही सभाव्य मानते हैं। ऋषि गण आशीर्वाद देकर प्रस्थान करते हैं। परशुराम द्वारा प्रणाम किये जाने पर वसिष्ठ एव विश्वामित्र उनकी मगलकामना करते हैं, दोनो प्रस्थित होते हैं। जामदग्न्य राम को दण्डकारण्य–स्थित ऋषिगणरक्षार्थ धनुष् प्रदान करते हैं, राम परशुरामाज्ञा शिरोधार्य करते हैं, जामदग्न्य विलाप करते हुए प्रस्थान करते हैं।

परशुराम–गमन से उद्विग्न होकर राम विलाप करते हैं तथा प्रकारान्तर से दण्डकारण्य–गमन, राक्षसो से तपस्वी जन के आक्रान्त होने का विचार कर उद्विग्न हो जाते हैं।

तत्पश्चात् नेपथ्य से लक्ष्मण राम को मन्थरा के आगमन की सूचना देते हैं, राम उसे अन्दर बुलाने का आदेश देते हैं। लक्ष्मण तथा मन्थरा मे प्रविष्ट शूर्पणखा प्रवेश करते हैं। शूर्पणखा वसिष्ठ एव विश्वामित्र के चले जाने से प्रसन्न हो जाती है, वह राम के व्यक्तित्व से प्रभावित होती है। राम द्वारा माताओ का कुशलक्षेम पूछने पर शूर्पणखा कहती है कि 'माताये सकुशल हैं'। वह कैकेयी का वरसम्बन्धी लेख प्रस्तुत करती है। लक्ष्मण पत्र पढते हैं जिसमे दो वर का उल्लेख रहता है कि 'भरत को राज्य एव राम को दण्डकारण्य मे वल्कल वस्त्र पहनकर चौदह वर्ष पर्यन्त वास हो, राम के साथ लक्ष्मण एव सीता जा सकते हैं'। लक्ष्मण के साथ अभीप्सित स्थानगमनार्थ राम प्रसन्न होते हैं, लक्ष्मण स्वय को धन्य समझते हैं। राम कहते हैं कि 'आर्य मन्थरा ! मैं जा रहा हूँ। राम का वनगमन–निश्चय ज्ञात होने पर शूर्पणखा प्रस्थान करती है। लक्ष्मण भरत तथा मामा युधाजित् के दशरथ के पास जाने की राम को सूचना देते हैं। भरत के प्रवासजन्यदु ख की कल्पना कर राम उद्विग्न हो जाते हैं।

तत्पश्चात् भरत एव युधाजित् दशरथ से प्रजाभिलषित राम को राजा बनाने का निवेदन करते हैं। दशरथ जनक से कहते हैं कि सम्प्रति वसिष्ठ एव विश्वामित्र उपस्थित नहीं हैं। जनक प्रत्युत्तर देते हैं कि यह विश्वामित्र एव वसिष्ठ को प्रीतिकर होगा, यहॉ मन्त्रज्ञाता वामदेव विद्यमान हैं, दशरथ राम–राज्याभिषेकार्थ आदेश देते हैं।

एतदनन्तर राम दशरथ के निकट जाकर कैकेयी के वरद्वय को पूर्ण करने हेतु आग्रह करते हैं। दशरथ कहते हैं कि 'रघुवशी तो सत्यपालक हैं, तुम दूतरूप मे आये हो, प्राणो का लोभ नहीं है'। राम से आदिष्ट हो लक्ष्मण पत्र पढते हैं जिसे सुनकर सभी दु खी हो जाते हैं, दशरथ मूर्च्छित होते हैं। राम एव लक्ष्मण पिता को धैर्य बॅधाते हैं, जनक को कैकेयी के इस कृत्य से आश्चर्य होता है। राम दशरथ से वर को पूर्ण करने हेतु निवेदन करते हैं। राम एव लक्ष्मण का बाल्यावस्था मे वनवास विचार कर जनक उद्विग्न हो जाते हैं, वे सीता को पतिसाहचर्य हेतु धन्य समझते हैं। दशरथ सीता के लिये विलाप करते हैं कि 'विवाह के अनन्तर उसे राक्षसो के देश में प्रेषित किया जा रहा है'। दशरथ एव जनक मूर्च्छित हो जाते हैं।

भरत का वश विषयक उपालम्भ सुनकर मामा युधाजित् कैकेयी को धिक्कारते हैं। लक्ष्मण तथा सीता प्रविष्ट होते हैं। वनगमनार्थ राम की स्वीकृति ज्ञात होने पर सीता स्वय को भाग्यशाली समझती हैं। रामादिक पिता को प्रणाम करते हैं। गुरुजनो को आश्वस्त करने का कार्य युधाजित् को सौंपकर राम प्रस्थान करते हैं, युधाजित् अनुगमन करते हैं। भरत युधाजित् से सम्प्रति करणीय कार्य विषयक प्रश्न करते हैं। राम कहते हैं कि भरत को राज्य–सम्भारण सौंपा गया है। भरत कहते हैं कि 'यह कार्य लक्ष्मण अथवा शत्रुघ्न कर सकते हैं'। राम पित्राज्ञा को सर्वोपरि कहते हैं। भरत मूर्च्छित हो जाते हैं, पुन चैतन्य होकर युधाजित् से निवेदन करते हैं। भरत युधाजित् से कहते हैं कि 'राम शरभग मुनि से प्राप्त स्वर्णोपानह मुझे दे दे'। राम द्वारा प्रदान किये जाने पर भरत उसे शिरोधार्य कर रामागमन पर्यन्त नन्दिग्राम मे रहने का निश्चय व्यक्त करते हैं, वह राम एव सीता की प्रदक्षिणा करते हैं। लक्ष्मण भरत को प्रणाम करते हैं, भरत लक्ष्मण को गले लगाकर विलाप करते हैं। राम भरत को दशरथादिक का ध्यान रखने के लिये कहते हैं। जनक एव दशरथ सचेत होकर विलाप करते हैं। भरत एव जनक मूर्च्छित दशरथ को ले जाते हैं। युधाजित् राम से कहते हैं कि पुरवासी शोकाकुल हैं'। राम भरत को युधाजित् को सौंपकर जाना चाहते हैं तथा युधाजित् के अनुगमन का निषेध कर वनगमनार्थ आज्ञा मॉगते हैं। युधाजित् राम को वृद्ध अयोध्यावासी, स्त्रियो एव मिथिलावासियो के अनुगमन की सूचना देते हैं। राम उन्हे लौटाने का आग्रह करते हैं। युधाजित् कहते हैं कि वे पुरवासियो को लौटा देगे तथा रामादिक को वनगमनार्थ आदेश देते हैं। लक्ष्मण राम को निषादराजगुह के प्रान्त मे विराध–उपद्रव का स्मरण कराते हैं। राम एतदर्थ चित्रकूट पर्वत, तत्पश्चात् दण्डकारण्य, जटायु आदि के पास जाने का निश्चय करते हैं। सभी प्रस्थान करते हैं।

पञ्चम अक

मन्दाराचल की कन्दरा मे निवास करता हुआ सम्पाति पँखो के सञ्कुचन–विस्तार, फलस्वरूप शब्दायमान कोलाहल से अनुज जटायु के आगमन का अनुमान करता है। जटायु प्रविष्ट होता है, वह मलयाचल के शिखर पर उतरकर सम्पाति को देखता है तथा भ्रातृप्रेम विषयक पूर्व वृत्तान्त का स्मरण करता है– 'जब सूर्य–स्पर्श–प्रतियोगिता के समय जटायु के पॅख दग्ध होने लगे थे, उस समय सम्पाति ने स्वपॅखो मे उसे निक्षिप्त कर रक्षा की थी'। जटायु निकट जाकर सम्पाति को प्रणाम करता है। सम्पाति जटायु को गले लगाकर राम के पितृशोक के मन्द होने से सम्बन्धित

प्रश्न पूछते हैं। जटायु राम के धैर्य की प्रशसा करते हैं। सम्पाति राम का विराध–वध के अनन्तर चित्रकूट से मुनि शरभग के आश्रम मे गमन, शरभग का अग्नि मे शरीरार्पण, सुतीक्ष्ण प्रभृति ऋषियो से समागम आदि वृत्तान्त बताता है तथा जटायु महर्षि अगस्त्य से आदिष्ट हो रामादिक का सम्प्रति पञ्चवटी मे निवास विषयक सूचना देता है। जटायु सम्पाति को राम पर कामासक्त शूर्पणखा का लक्ष्मण द्वारा अगविदीर्णन, प्रतिक्रियास्वरुप आये खरदूषण तथा चौदह सहस्त्र राक्षसो का राम द्वारा सहार आदि घटनाओ से अवगत कराता है। सम्पाति जटायु को रामादिक–रक्षार्थ सन्नद्ध रहने के लिये कहता है क्योकि 'रावण शूर्पणखा–तिरस्कार का प्रतीकार अवश्य करेगा'। समुद्र मे स्नान कर रामादिक के मगलकामना हेतु दृढसकल्प करके सम्पाति प्रस्थान करता है।

तत्पश्चात् जटायु अपने निवासस्थल पर आकर पञ्चवटी मे देखता है कि 'राम चित्रमृग पर आकर आकृष्ट होकर जा रहे हैं, लक्ष्मण उनका अनुगमन कर रहे हैं'। इधर रावण परिव्राजक वेष मे आकर सीता को रथारूढ कर ले जाता है। जटायु रावण का प्रत्याख्यान करता है तथा रावण के ध्यान न देने पर उसके अगप्रत्यगो को विदीर्ण करने का निश्चय कर प्रस्थान करता है।

लक्ष्मण राम का अन्वेषण करते हैं तथा सोचते हैं कि सम्प्रति राम अन्तर्निगूढ कोपानल से उद्विग्न रहते हैं। राम जटायु–वध तथा सीता–हरण से मर्माहत हैं, लक्ष्मण उन्हे धैर्य बँधाते हैं। राम जटायु–वध तथा सीता–हरण हेतु स्वय को उत्तरदायी मानते हैं तथा जटायु के लिये विलाप करते हैं। लक्ष्मण जटायु–मृत्यु–काल का स्मरण करते हैं कि जटायु ने उन्हे रावण द्वारा सीता–हरण एव जटायु–सहार की सूचना दी थी। राम को इन कथनो से मर्मान्तक पीडा होती है, वह उचित प्रतीकारार्थ विचार करते हैं। राम राक्षससहारार्थ दृढप्रतिज्ञ हैं, उद्विग्न होकर लक्ष्मण से रक्षार्थ निवेदन करते हैं। लक्ष्मण भयावह प्रान्त से अनुमान करते हैं कि यह दण्डकारण्य का पश्चिमवर्ती प्रान्त कुञ्जरवान् है, जहॉ कबन्ध राक्षस रहता है। राम कहते हैं कि कबन्ध तो द्रष्टव्य ही है।

एतदनन्तर कबन्ध राक्षस से आक्रान्त हो शबरतपस्विनी श्रमणा रक्षार्थ पुकारती है तथा कहती है कि वह रामान्वेषण करती हुयी यहॉ आयी है, राम लक्ष्मण को प्रेषित करते हैं। लक्ष्मण तथा श्रमणा प्रविष्ट होते हैं। लक्ष्मण राम को दीर्घबाहु कबन्ध की आकृति बताते हैं तथा श्रमणा का परिचय देते हैं। श्रमणा राम को प्रणाम करती है तथा कहती है कि विभीषण सम्प्रति सुग्रीव के पास निवास कर रहे हैं। श्रमणा विभीषण का आत्मसमर्पण विषयक लेख राम को अर्पित करती है, लक्ष्मण लेख पढते

हैं, राम विभीषण को 'प्रियमित्र कहकर उक्त प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान करते हैं। लक्ष्मण के पूछने पर श्रमणा कहती है कि वानरो को सीता का अनुसूया नामाकित उत्तरीय वस्त्र प्राप्त हुआ है। राम सीता का स्मरण कर मूर्च्छित हो जाते हैं। राम ऋष्यमूक पर्वत गमनार्थ निश्चय करते हैं। सभी प्रस्थान करते हैं।

लक्ष्मण हनूमान् की शक्ति की प्रशसा करते हैं। श्रमणा वाली–सेना मे विद्यमान वानरो के अतुलनीय बल एव पराक्रम का वर्णन करती है। राम दक्षिणभाग मे अस्थिकूट–सा देखकर जिज्ञासा प्रकट करते हैं, श्रमणा उसे कबन्ध का मृत शरीर बताती है। लक्ष्मण कबन्ध–शरीर से दिव्य पुरुष के प्रकट होने की सूचना देते हैं। कबन्ध दिव्य पुरुष के रूप मे समक्ष आकर अपना परिचय देता है कि वह श्री नामक अप्सरा का पुत्र दनु है, शापवशात् राक्षस तथा इन्द्र के वज्र से आहत होकर कबन्धमात्रावशिष्ट था, सम्प्रति रामकृपा से अपना स्वरूप प्राप्त किया है। दनु बताता है कि वह माल्यवान् से प्रेरित होकर रामाक्रमणार्थ दण्डकारण्य मे निवास कर रहा था, वह माल्यवान्–प्रेरित वाली के युद्धार्थ आगमन की सूचना देता है। राम वाली–समागम हेतु उत्कण्ठा व्यक्त करते हैं। अन्य जन राम के प्रियवादिता की प्रशसा करते हैं। राम से आदिष्ट होकर दनु प्रस्थान करता है। लक्ष्मण के वाली–रावण–मैत्री विषयक प्रश्न करने पर श्रमणा बताती है कि त्रिलोकजित् रावण वाली से युद्धार्थ उत्सुक था, वाली ने रावण को कुक्षि मे निक्षिप्त कर सप्त समुद्र मे स्नानकार्य सम्पन्न किया, मुक्त किये जाने पर रावण ने वाली से मैत्री–प्रार्थना की, तत्पश्चात् वाली एव रावण मित्र बन गये। लक्ष्मण रावण की निन्दा करते हैं, राम वीरों के आचरण विषयक विश्लेषण करते हैं। लक्ष्मण सामने अस्थिकूट देखकर श्रमणा से इस सम्बन्ध मे प्रश्न करते हैं। श्रमणा बताती है कि यह वाली द्वारा मारे गये दुन्दुभि का अस्थिसमूह है। राम पादागुष्ठ के स्पर्शमात्र से अस्थिसमूह को विन्ध्य से सुदूरवर्ती प्रान्त मे प्रक्षेपित करते हैं। श्रमणा आश्चर्यान्वित होती है।

एतदनन्तर लक्ष्मण का ध्यान हरित वनप्रान्त की ओर समाकृष्ट देखकर श्रमणा कहती है कि यह ऋष्यमूक का पम्पासरोवर प्रान्त है, इसके आगे मतग मुनि का निर्जन आश्रम प्रान्त है जहाँ यज्ञाग्नि प्रज्वलित हो रही है, सोमपात्र, चमसादिक रखा है, कुश आस्तीर्ण है, आज्य की गन्ध व्याप्त है। राम तपश्चर्या को अचिन्त्य मानते हैं। श्रमणा राम का ध्यान आकृष्ट करती है 'जहाँ झरने प्रवाहित हो रहे हैं तट पर पक्षी गण से आक्रान्त वेत्रवृक्षो से गिरे हुए पुष्पो से जल सुगन्धित है, युवा

भालुओ की गुर्राहट प्रतिध्वनित हो रही है, हाथियो द्वारा भक्षण किये गये सल्लकी की शीतल एव कषाय रस से परिपूर्ण गन्ध नि सृत हो रही है'। लक्ष्मण अश्रुपूर्ण नेत्रो से कदम्ब वन का अवलोकन करते हुए राम की ओर देखते हैं तथा राम की हृदयगत भावना का अनुमान करते हैं।

एतदनन्तर नेपथ्य से वाली रामवधार्थ निर्णय व्यक्त कर माल्यवान् को लौट जाने का निवेदन करता है। लक्ष्मण के उत्सुक होने पर श्रमणा इन्द्रप्रदत्त स्वर्णमाला धारण किये, आकाश मे सीमन्त रेखा–सी खींचते हुए वाली के वेगपूर्वक आगमन की सूचना देती है। लक्ष्मण राम को वाली के युद्धार्थ आगमन विषयक सूचना देते हैं। राम वाली को 'वीर' मानते हैं।

एतदनन्तर वाली प्रविष्ट होता है। वाली विचार करता है कि वह ब्रह्माण्ड को प्रकम्पित कर सकता है, किन्तु उसे रामवधार्थ आने से कष्ट होता है। वह रावणमैत्रीवशात् स्वय को विवश मानता है तथा राम के प्रति शत्रुवत् व्यवहारार्थ स्वय को धिक्कारता है, उसे चारो से राम–विभीषण–मैत्री तथा राम द्वारा विभीषण को लकाराज्यप्रदान विषयक आश्वासन, सम्प्रति राम का मतगाश्रम के पास विद्यमान होना आदि सूचना ज्ञात हुयी थी, अतएव वह मतगाश्रम के निकट उतरकर पूछता है कि 'यहॉ कोई है'। वाली स्व–आगमन का उद्देश्य बताता है कि 'वह परशुरामजित्, सत्यधर्मा राम के दर्शनार्थ यहॉ आया है'। राम से आदिष्ट होकर लक्ष्मण वाली को लेकर आते हैं। राम को देखकर वाली आश्चर्यमिश्रित आनन्द की अनुभूति करता है, किन्तु राम को धनुर्ग्रहणार्थ प्रेरित करता है, राम द्वारा सायुध होने के लिये कहने पर पहाड उठा लेता है, दोनो युद्धभूमि की ओर प्रस्थान करते हैं। लक्ष्मण देखते हैं कि धनुष् चढाते ही वाली क्रुद्ध हो वेगपूर्वक पुच्छ सचालित कर रहा है तथा आकाश को व्याप्त कर रहा है। नेपथ्य से वाली का आर्त्तनाद सुनकर श्रमणा विभीषण, सुग्रीव, वानरो के गमन की सूचना देती है। लक्ष्मण धनुष् चढाने के लिये उद्यत होते हैं, श्रमणा लक्ष्मण को राम द्वारा वाली–वध विषयक सूचना देती है।

नेपथ्य मे वाली विभीषणादिक को समाश्वसित करते हुए इच्छा प्रकट करता है कि 'सुग्रीव को राजा एव अगद को युवराज बनाया जाय।

लक्ष्मण कहते हैं कि 'वाली सम्प्रति वीर की भॉति मर रहा है, उसने विभीषण एव सुग्रीव को शपथ देकर शान्त कर दिया है तथा सुग्रीव के कण्ठ मे अपनी स्वर्णमाला पहना दी है'।

एतदनन्तर सुग्रीव तथा विभीषण, राम एव वाली प्रविष्ट होते हैं। राम काल को सर्वातिशायी कहते हैं। वाली विभीषण से कहता है कि 'सुग्रीव के कण्ठ मे स्वर्णमाला सुशोभित हो रही है'। सुग्रीव तथा विभीषण वाली–शपथवश अपने को असमर्थ मानते हैं। वाली राम से कहता है कि मैंने रावण जैसे अयोग्य व्यक्ति से मित्रता की थी, अतएव प्राण त्याग कर मुक्त हो रहा हूँ'। राम लज्जावनत होकर बैठे रहते हैं। सुग्रीव एव विभीषण राम के इस कृत्य का कारण सोचते हैं, श्रमणा उन्हे माल्यवान्–योजना से अवगत कराती है।

राम एव सुग्रीव से मैत्री–बन्धन हेतु वाली आग्रह करता है, राम एव सुग्रीव अग्नि की प्रदक्षिणा कर परस्पर मित्र बन जाते हैं। वाली श्रमणा के समक्ष राम से कहता है कि 'आपने विभीषण को लका राज्य प्रदान करने की बात कही थी'। श्रमणा एव विभीषण दूत के चातुर्य से आश्चर्यचकित रह जाते हैं, विभीषण राम को प्रणाम करता है, सुग्रीव श्रमणा–वृत्तान्त के प्रति अनभिज्ञता प्रकट करता है। राम लक्ष्मण को सुग्रीव एव विभीषण को सौंपते हैं, लक्ष्मण दोनो को प्रणाम करते हैं। दोनो लक्ष्मण का कण्ठालिंगन करते हैं। श्रमणा इस सौजन्यप्रकाशन से प्रभावित होती है।

वाली विभीषण को समझाता है कि 'यह रावण के कुकृत्यो का परिणाम है, अत लज्जित होने की आवश्यकता नहीं है। माल्यवान् ने पूर्व मे ही कहा था कि 'विभीषण का ही अन्त मे प्रिय होगा'। वाली कहता है कि 'मुझे प्रपातस्थल मे ले चले'। नील प्रभृति विलाप करते हैं। वाली वानरो को निर्देश देता है कि वे सुग्रीव एव अगद के अधीन रहे, राम की सहायता करे। तत्पश्चात् वाली प्राण त्याग देता है। सभी प्रस्थान करते हैं।

षष्ठ अक

माल्यवान् विषण्ण हो प्रविष्ट होता है तथा रावण की सीताविषयिणी दुरभिलाषा, शूर्पणखा का राम एव लक्ष्मण से छल करना, सीता–हरण, अक्षकुमार का वध, विभीषण–मैत्री आदि घटनाओ तथा मन्त्री के कष्टप्रद उत्तरदायित्व, राजा की स्वेच्छाचारिता आदि पर विचार कर उद्विग्न हो जाता है, उसे चारो से ज्ञात हुआ है कि 'वानर सीता का अन्वेषण कर रहे हैं'।

नेपथ्य से स्वर्णगृहो के जलने, वीरो के यत्र–तत्र पलायन विषयक सूचना दी जाती है। त्रिजटा सम्भ्रान्त होकर प्रविष्ट होती है तथा माल्यवान् को रक्षार्थ पुकारती हुई वक्षस्थल–ताडन करती

है। माल्यवान् द्वारा धैर्य बँधाने पर त्रिजटा एक वानर द्वारा लकादहन, अक्षकुमारवध विषयक सूचना देती है। माल्यवान् उक्त सूचना से उद्विग्न हो उसे हनूमान्कृत् मानता है तथा पूछता है कि क्या हनूमान् को सीता का वासस्थान ज्ञात हुआ है ? त्रिजटा माल्यवान् को सीता–वानर–वार्त्ता, सीता का अभिज्ञानार्थ चूडामणि प्रदान करना आदि प्रसग बताती है। माल्यवान् वानर–पराक्रम से भयभीत हो जाता है, त्रिजटा सीता को राक्षसी कहती है, तो माल्यवान् पतिव्रता सीता को दोष न देकर रावण के कुकृत्य को उत्तरदायी ठहराता है। माल्यवान् असुरक्षा अनुभव करती हुयी त्रिजटा को चित्रकूट दुर्ग, सप्त धातु प्राकार से आवेष्टित नगरी, अलघ्य परिखा तथा रावण–पराक्रम का विश्वास दिलाता है किन्तु वामनेत्र के स्पन्दन से दु खी होकर कुम्भकर्ण–जागरण विषयक प्रश्न करता है। कुम्भकर्ण–निद्राभग मे विलम्ब जानकर विभीषण को ही एकमात्र अवशिष्ट वशधर मानता है। त्रिजटा अनिष्ट की आशका कर भयभीत हो जाती है। माल्यवान् रावण के प्रतिकूल भाग्य पर विचार करके त्रिजटा से रावण के विषय मे पूछता है। त्रिजटा उसे बताती है कि रावण सर्वतोभद्र नामक प्रासाद पर चढकर अशोकवाटिकाधिष्ठित सीता के अवलोकन मे सलग्न है, रावण को नगरदुर्दशासूचनार्थ मन्दोदरी वहाँ गयी हैं। माल्यवान् मन्दोदरी की प्रशसा करता है तथा गुप्तचरकार्यविचारार्थ निश्चय कर प्रस्थान करता है।

एतदनन्तर उत्कण्ठित रावण प्रविष्ट होता है तथा सीता को देखकर सोचता है कि 'सम्प्रति मेरी मनअभिलाषा पूर्ण होने वाली है'। रावण इसके लिये भाग्य को अनुकूल मानता है, वह स्व–पराक्रम का वर्णन करता है, किन्तु आलस्य को ही दोष देता है। मन्दोदरी एव चेटी प्रविष्ट होती हैं। चेटी मन्दोदरी को रजतसोपानमार्ग से जाने के लिये कहती है। मन्दोदरी शत्रु–आक्रमण होने पर भी राजकार्य से विमुख एव सीतावलोकन मे लिप्त रावण को देखकर दु खी हो जाती है तथा उसके निकट जाकर जयोद्घोष करती है। मन्दोदरी के शत्रु–आक्रमण–सम्बन्धी सूचना पर रावण विश्वास नहीं करता है। मन्दोदरी उसे राम द्वारा अस्त्र प्रयुक्त कर समुद्र–भेदन, वानरो द्वारा सेतु–निर्माण आदि की सूचना देती है। रावण कहता है कि 'राम को क्यो वीर, साहसिक कह रही हो ? मैंने शिव को अपना मस्तक अर्पित किया है, मेरे साहस के शिव साक्षी हैं'।

नेपथ्य मे कलकल ध्वनि होती है, भयाक्रान्त मन्दोदरी को रावण आश्वस्त करता है। एतदनन्तर नेपथ्य मे कपाटो को अर्गलाओ से सन्निविष्ट करने, अस्त्र–सज्जा, बाल–वृद्ध–स्त्री–सुरक्षा,

खाद्यान्न–सचय पर ध्यान देने तथा सुग्रीव, वानरो–सहित राम एव लक्ष्मण के आगमन की सूचना दी जाती है। प्रतीहारी रावण को सेनापति प्रहस्त का आगमन सूचित करती है। प्रहस्त प्रविष्ट होकर राम का वानरो सहित नगरावरोध सूचित करता है। रावण द्वारा कोलाहल सम्बन्धी प्रश्न पूछने पर वह राक्षसो की रक्षार्थ नियुक्ति, राम द्वारा नगरातिक्रमण, खाद्यान्न–अनापूर्त्ति आदि वृत्तान्त बताता है।

एतदनन्तर प्रतीहारी रामदूत अगद के आगमन की सूचना देती है। अगद सीता को लौटाकर लक्ष्मण के समक्ष स्त्री–पुत्र–मित्र–सहित समर्पण विषयक परामर्श रावण को देता है, विपरीत स्थिति मे युद्ध विषयक धमकी देने पर रावण क्रोधित हो अगद के मुखरञ्जनार्थ आदेश देता है। प्रहस्त रावण को दूत अगद पर क्रुद्ध होने से विरत करना चाहता है। किन्तु रावण द्वारा इसे उचित प्रतीकार कहने पर अगद दूतकर्त्तव्य का स्मरण कर भाग जाता है। प्रहस्त के पूछने पर रावण आदेश देता है कि 'राक्षस अर्गला तोड दे, नगरद्वार आवृत कर दे, अस्त्रो से सुसज्जित हो वानरो को खण्ड–खण्ड कर दे'। प्रहस्त आज्ञा शिरोधार्य कर प्रस्थान करता है।

नेपथ्य मे वानर एव राक्षस सेना मे भयावह युद्ध की सूचना दी जाती है। इन्द्रादिक देवगण का राम–पक्षपात देखकर रावण क्रोधित हो मन्दोदरी को अन्दर जाने का आदेश देकर युद्धार्थ प्रस्थान करता है।

एतदनन्तर देवराज इन्द्र रथारूढ हो परिवार एव सूत मातलि सहित प्रवेश करते हैं। मातलि राक्षसकृत तीव्र निर्घोष से रावणागमन अनुमित करता है। इन्द्र मातलि का ध्यान वानरो को भयाक्रान्त करते हुए पुत्र, सोदर, परिजनो सहित आते हुए रावण की ओर समाकृष्ट करते हैं तथा कौबेर दिशा से किसी के आने का अनुमान करते हैं। सूत मातलि इन्द्र द्वारा गन्धर्व राज्य पर अभिषिक्त चित्ररथ के आगमन की सूचना देता है।

तदनन्तर विमानारूढ चित्ररथ प्रवेश कर के इन्द्र को प्रणाम करते हैं तथा कुबेर से आदिष्ट हो युद्ध–वृत्तान्त ज्ञापनार्थ अपने आगमन का उद्देश्य बताते हैं। इन्द्र के पूछने पर चित्ररथ रावण के दुराचार से आक्रान्त वैमात्रेय भ्राता कुबेर द्वारा राम–विजय की कामना का निवेदन करते हैं। इन्द्र वानर गण के वेगपूर्वक गमन तथा कोलाहल को सुनकर युद्धारम्भ होने की सम्भावना करते हैं। चित्ररथ से रावण के विमानारूढ होने की सूचना मिलने पर इन्द्र सूत मातलि को अपना रथ राम को देने का आदेश देकर स्वय गन्धर्वराज चित्ररथ के रथ पर आसीन होते हैं। सूत राम को रथ प्रदान

करता है। चित्ररथ इन्द्र को युद्ध–वृत्तान्त बताते हैं कि राक्षस एव वानर सेना के परस्पर मुष्टि–प्रयोग, अस्त्र–प्रहार के कारण पृथ्वी मृतको से आच्छादित हो गयी है, योद्धाओ के क्षत–विक्षत अगो से रणागण मे चित्रकूट सदृश पर्वत कल्पित हो गया है, जिसमे शत्रु के आक्रमण से विवश हो योद्धागण छिप रहे हैं। इन्द्र चित्ररथ का ध्यान आकृष्ट करते है जहॉ गृध्र आहत वीरो के मॉसभक्षणार्थ लोभवशात् मॅडरा रहे हैं, ऐसे वीरगण रक्त नि सृत होने पर भी विश्राम कर लेते हैं, विभिन्न अगो के विदीर्ण होने पर भी धैर्यपूर्वक युद्धरत हैं। चित्ररथ इन्द्र को परिजन, मेघनाद, कुम्भकर्ण तथा बन्धुगण से आवृत रावण के आगमन की सूचना देते हैं। शत्रु को देखकर भी निर्भय राम के धैर्य एव गाम्भीर्य की इन्द्र प्रशसा करते है। चित्ररथ इन्द्र को बताते हैं कि लक्ष्मण मेघनादवधार्थ उद्यत हैं तो राम रावण को उद्देश्य कर प्रत्यञ्चा का स्पर्श कर रहे हैं। राक्षसो द्वारा सहस्र बाण प्रहार करने का राम, लक्ष्मण पर कोई प्रभाव नहीं है, वानर सेना युद्धरत है। राम के साथ सुग्रीव, अगद, जाम्बवान्, विभीषण प्रभृति प्रमुख योद्धागण हैं। हनूमान् लक्ष्मण के साथ हैं। चित्ररथ इन प्रमुख वानरो के धैर्य की प्रशसा करते हैं। इन्द्र परस्पर युद्धरत राम एव रावण का ध्यान वात्सल्यवशात् लक्ष्मण तथा मेघनाद पर होने का कथन करते हैं। चित्ररथ राम एव रावण के वात्सल्य–भाव की प्रशसा करते हैं तथा लक्ष्मण के बाणो से राक्षसो को आहत देखकर अनिष्टाशकावश रावण का मेघनाद के पास जाने की सूचना देते हैं। इन्द्र राम तथा रावण के असाधारण रणकौशल की प्रशसा करते हैं, चित्ररथ युद्ध–दृश्य से चमत्कृत होकर देखते हैं कि रावण के वेगपूर्वक गमन से कुम्भकर्ण सम्भ्रान्त हो जाता है, पिता की ऐसी अवस्था देखकर कुम्भ आता है। राम को लक्ष्य करके आते हुए कुम्भ को सुग्रीव भुजाविष्ट कर मार डालता है। यह देखकर कुम्भकर्ण सुग्रीव को पकड लेता है, सुग्रीव स्वय को उन्मुक्त कर कुम्भकर्ण की नासिका पर प्रहार करता है। इन्द्र चित्ररथ का ध्यानाकर्षण करते हैं, जहॉ लक्ष्मण के प्रहार से क्रोधाभिभूत होकर मेघनाद–प्रयुक्त नागपाशास्त्र को लक्ष्मण गारुडास्त्र–प्रयोग से दूर करना चाहते हैं, तभी रावण के शतघ्नी–प्रहार से आहत होकर लक्ष्मण हनूमान् के अक मे गिर जाते हैं। चित्ररथ अद्भुत युद्ध का अवलोकन करते हैं– जहॉ सुग्रीव से लक्ष्मण के मूर्च्छित होने का वृत्तान्त ज्ञात होने पर राम वीर एव करुण रस से परिपूर्ण हो जाते हैं तथा कुम्भकर्ण को बाणावृत तथा सेना को भस्मसात् करते हुये लक्ष्मण के निकट जाते हैं। चित्ररथ लक्ष्मण के मूर्च्छित होने से चिन्तित होते हैं। इन्द्र नक्षत्रमण्डल को प्रकम्पित करते हुये हनूमान् द्वारा सञ्जीवनौषधि लाने का वृत्तान्त बताकर चित्ररथ को आश्वस्त करते हैं। चित्ररथ रावण

का राक्षस सेना सहित युद्धार्थ आगमन, लक्ष्मण के चैतन्य होने, युद्धारम्भ, राक्षस सेना मे ह्रास तथा वानर सेना मे वृद्धि आदि का अवलोकन करते हैं। इन्द्र राम–रावण तथा लक्ष्मण–मेघनाद के दिव्यास्त्र–प्रयोग का वर्णन करते हैं। चित्ररथ रोमाञ्चक युद्ध, राम द्वारा राक्षस–सहार देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। इन्द्र राम तथा लक्ष्मण द्वारा क्रमश रावण एव मेघनाद का शिरश्छेदन पुन पुन शिर प्रकट होने पर भी राम एव लक्ष्मण का अप्रभावित हो युद्धरत रहना आदि दृश्य देखते हैं।

एतदनन्तर नेपथ्य मे दिव्यर्षि गण राम को वधार्थ आदेश देते हैं, चित्ररथ दिव्यर्षि गण द्वारा राम को रावणवधार्थ प्रेरित करते हुये देखकर आश्चर्यान्वित होते हैं तथा राम एव लक्ष्मण द्वारा ब्रह्मास्त्र तथा अच्युतास्त्र प्रयुक्त कर रावण, मेघनाद का शिरश्छेदन, देवगण द्वारा रामादिक पर पुष्पवृष्टि की इन्द्र को सूचना देते हैं। इन्द्र नेपथ्य की ओर देखकर देवगण को प्रतीक्षारत जानकर जाने का निश्चय करते हैं तथा चित्ररथ को भी कुबेर के पास प्रेषित करते हैं। सभी प्रस्थान करते हैं।

सप्तम अक

अधिष्ठातृ देवता लका शोकाकुल हो प्रवेश करती हैं, वह रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद प्रभृति का स्मरण कर विलाप करती हैं, एतदर्थ रावण के दुश्चरित को दोष देती हैं। अलका प्रविष्ट होकर लका को समाश्वसित करती हैं, लका कहती हैं कि एकमात्र अवशिष्ट वशधर विभीषण शत्रुपक्ष मे स्थित हैं, किन्तु अलका राम को परम मित्र बताती हैं तथा पित्राज्ञा से दण्डक वन मे आये रामादिक के साथ रावण के दुर्व्यवहार को ही उत्तरदायी मानती हैं, अलका अपने आने का उद्देश्य बताती हैं कि उसे रावण के वैमात्रेय भ्राता कुबेर ने गन्धर्वराज चित्ररथ से युद्ध–वृत्तान्त ज्ञात कर अवशिष्ट बान्धवगण को समझाने, विभीषण–राज्याभिषेक–दर्शन तथा रावणापहृत पुष्पक विमान राम को प्रदान करने के लिये प्रेषित किया है। लका द्वारा कुबेर की राम विषयक भक्ति पूछे जाने पर अलका राम को पुराण पुरुष बताती हैं तथा रावण–शाप का उल्लेख कर उसे निर्दोष कहती हैं।

नेपथ्य मे कलकल ध्वनि सुनकर दोनो उत्सुक होती हैं, देवगण इन्द्रादिक द्वारा अभिनन्दित अग्निपरिशुद्ध सीता को ग्रहण करने हेतु राम को आदेश देते हैं, अलका देवगण द्वारा अग्निशुद्ध सीताभिनन्दन देख आश्चर्यचकित रह जाती हैं तथा पातिव्रत्य तेजशुद्धि को लोकमर्यादापालन अनुमित

करती हैं। लका मगलवाद्ययुक्त ध्वनि सुनकर इस सम्बन्ध मे प्रश्न करती हैं। अलका नेपथ्य मे देखती हैं कि सीतापरिशुद्धि का अनुमोदन करने हेतु आगत अप्सराये एव दिव्यर्षि गण रामाज्ञा से विभीषण का राज्याभिषेक कर राम के पास जाते हैं। दोनो रामदर्शनार्थ प्रस्थान करती हैं।

एतदनन्तर विभीषण पुष्पकविमान लेकर प्रविष्ट होते हैं। विभीषण मातलि–सत्कार, देवबन्दी स्त्रियो की मुक्ति आदि रामाज्ञा का परिपालन कर राम के समक्ष जाता है तथा उन्हे उक्त कार्य सम्पन्न होने की सूचना देता है एव पुष्पक विमान प्रदान करता है। राम विभीषण की प्रशसा करते हैं। सुग्रीव राम को रावण–वध विभीषण–राज्याभिषेक प्रभृति कार्य पूर्ण होने के कारण हनूमान् को भरत के पास आगमनसूचनार्थ प्रेषित करने का परामर्श देते हैं क्योकि हनूमान् ने भरत को द्रौणाद्रि वृत्तान्त बता दिया था। हनूमान् को प्रेषित कर रामादिक विमानासीन हो अयोध्या–प्रत्यावर्तनार्थ प्रस्थित होते हैं। सीता के पूछने पर लक्ष्मण उन्हे वनवासावधि पूर्ण होने की सूचना देते हैं। सभी विमान की गति का निरीक्षण करते हैं।

मार्ग मे राम एव सीता पूर्वजो द्वारा निर्मित सागर देखते हैं। लक्ष्मण वानरो द्वारा प्रस्तर खण्डो से निर्मित सेतु की ओर ध्यान समाकृष्ट करते हैं। राम सीता को तमाल वृक्षो की शीतल छाया से आच्छादित तथा मलयाचल से प्रवाहित होते झरनो से युक्त स्थल दिखाते हैं, लक्ष्मण बताते हैं कि यहॉ जीर्ण कन्दरा मे राम एव लक्ष्मण ने वर्षा होने पर रात्रि व्यतीत की थी। सीता रामादिक का कष्ट सुनकर दु खी हो जाती हैं। विभीषण राम का ध्यान ताम्बूली लता के पराग से सुगन्धित सुपारी वृक्ष, तपस्वी ब्रह्मर्षियो से सुशोभित कावेरी तट की ओर समाकृष्ट करते हैं, इसके निकट ही महर्षि अगस्त्य का आश्रम है। राम स्मरण करते हैं कि अगस्त्य ने समुद्र को मरुस्थल बना दिया था, विन्ध्य का गर्वदमन किया तथा जठराग्नि मे वातापी दानव के शरीर का निगरण किया था। सभी अगस्त्य मुनि की स्तुति करते हैं। आकाशवाणी राम का अनुजो सहित प्रजापालन, चिरकालव्यापी यश आदि गुणकीर्तन करती है। रामादिक आकाशवाणी का अभिनन्दन करते हैं।

एतदनन्तर विभीषण राम को पम्पासरोवरप्रान्तवृत्तान्त स्मरण कराते हैं जहॉ वाली–वध, दुन्दुभि का अस्थिप्रक्षेपण, हनूमान् के पास उत्तरीयवस्त्रदर्शन आदि घटनाये हुयी थीं। सीता हनूमान् के पास वस्त्रदर्शन सुनकर आश्चर्यान्वित होती हैं, राम सीता को रावण द्वारा हरण के समय अनुसूया नामक उत्तरीय वस्त्र गिरने का वृत्तान्त बताते हैं, जिसे देखकर कालान्तर मे उक्त वस्त्र प्राप्त होने पर राम

को हार्दिक प्रसन्नता हुयी थी, सीता यह सुनकर सलज्ज हो जाती हैं। लक्ष्मण से पिता दशरथ के मित्र जटायु की मृत्यु ज्ञात होने पर सीता दु खी हो जाती हैं। सुग्रीव दण्डकारण्य की सीमा–समाप्ति का सकेत करते हैं, जहाँ शूर्पणखा के अगो का अन्वेषण करते खर, दूषण, त्रिशिरा प्रभृति का सहार हुआ था, सीता राक्षस के नामश्रवण से भयभीत हो जाती हैं, राम उन्हे नाममात्रावशिष्ट बताकर समाश्वसित करते हैं।

राम विमानगति के परिवर्तन का कारण पूछते हैं। विभीषण अतीव उन्नत सह्य पर्वत तथा आर्यावर्त का परिचय देते हैं। लक्ष्मण मध्यमलोकदर्शनार्थ उत्सुक होते हैं। राम सूर्य के निकट विमान पहुंचने पर आश्चर्यचकित रह जाते हैं, सभी कपोताकृतिपूर्वक नमस्कार करते हैं। सीता दिन मे नक्षत्रमण्डल देखकर हर्षित होती हैं। राम सीता को बताते हैं कि सूर्यातपवश दिन मे नक्षत्रमण्डल दृष्टिगत नहीं होता है, अत्यधिक ऊँचाई के कारण दिशाओ का ज्ञान दुष्कर है। सुग्रीव वाली के साथ पूर्वकाल मे भ्रमण किये गये इन स्थलो उदयाचल, अस्ताचल, उन्नत कैलास तथा अञ्जन पर्वत, काञ्चनाचल, आकाशव्यापी गन्धमादन आदि का परिचय देता है। राम पृथ्वी–मार्ग आने पर आश्चर्यचकित होकर देखते हैं। तत्क्षण कुबेरप्रेषित किन्नरयुगल मार्ग मे उपस्थित होते है। सीता उन्हे साश्चर्य देखती हैं। नेपथ्य मे किन्नरयुगल राम का यशकीर्तन करते हैं तथा कहते हैं कि वस्तुत वे कुबेराज्ञा से रामस्तुत्यर्थ अयोध्या जा रहे थे। नेपथ्य मे किन्नर तथा किन्नरी राम का यशगान करते हैं कि आपका यश सहस्त्र वर्ष पर्यन्त विद्यमान रहेगा, त्रिलोक आपका निर्मल यशगान करेगा। दम्पती सानन्द हो नृत्य करते हैं, समस्त जन प्रसन्न हो जाते हैं।

एतदनन्तर राम मध्यमलोक से गमन करने का आदेश देते हैं। विभीषण गगा से प्रक्षालित, ब्रह्मज्ञानियो के तेजविकीर्णन से युक्त हिमालय के पावन शिखरो का परिचय देते हैं। लक्ष्मण इन भूखण्डो का दर्शन कर प्रभावित होते हैं। राम विश्वामित्र का आश्रम प्रान्त देखकर प्रसन्न होते हैं, जहाँ गुरु कुशध्वज के साथ वार्त्तालाप करते थे तथा उन्हे स्नेहपूर्वक रखते थे। सीता कनिष्ठ तात का नाम सुनकर सस्पृह नेत्रो से देखती हैं। राम आश्रम प्रान्त पर विमानारूढ होकर चलना उचित नहीं समझते हैं।

नेपथ्य मे राम एव लक्ष्मण को अयोध्यागमनार्थ विश्वामित्रादेश की सूचना दी जाती है। राम तथा लक्ष्मण विमान रोककर ध्यानपूर्वक सुनते हैं, नेपथ्य में विश्वामित्र उन्हे अविलम्ब अयोध्यागमनार्थ

आदेश देते हैं, जहॉ वसिष्ठ प्रतीक्षारत हैं। विश्वामित्र उन्हे मध्याह्व कालिक कृत्य सम्पादित कर स्वय अयोध्या पहुँचने का समाचार देते हैं। दोनो गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करते हैं सभी अयोध्या हेतु प्रस्थित होते हैं। राम तपस्वाध्यायरत गुरु के प्रेम का वर्णन करते हैं प्रेमभाववश ही विश्वामित्र अयोध्यागमनार्थ तत्पर हैं यहीं रामादिक ने शास्त्र तथा अस्त्रविद्या का ज्ञान प्राप्त किया था।

विभीषण पृथ्वीरज से व्याप्त दिशाओ को देखकर कारण सोचते हैं, सभी आश्चर्यान्वित होते हैं। राम हनूमान् से आगमन का वृत्तान्त ज्ञात होने पर भरत का ससैन्य–आगमन अनुमित करते हैं। हनूमान् प्रवेश कर भरतागमन की सूचना देते हैं, राम भरतसमागमार्थ हर्षित होते हैं, लक्ष्मण हनूमान् से भरत विषयक प्रश्न करते हैं, हनूमान् सेना के मध्य मे वर्तमान भरत को निर्दिष्ट करते हैं। विभीषण पुष्पक विमान को रोकते हैं। भरत, शत्रुघ्न प्रभृति प्रविष्ट होते हैं, राम दौडकर पाद–पतित भरत को उठाकर आलिगन करते हैं। लक्ष्मण भरत के चरणो पर गिरते हैं, शत्रुघ्न राम एव लक्ष्मण को प्रणाम करते हैं, दोनो उसे कुलमर्यादापालनार्थ आदेश देते हैं। भरत, शत्रुघ्न सीता को दण्डवत् प्रणाम करते हैं, सीता उन्हे रामाज्ञा मे रहने का आदेश देती हैं। राम भरत तथा शत्रुघ्न से सुग्रीव एव विभीषण का परिचय कराते हैं, दोनो सुग्रीवादिक का यथोचित अभिवादन करते हैं।

एतदनन्तर भरत राम को राज्याभिषेकार्थ प्रतीक्षारत वसिष्ठ विषयक सूचना देते हैं। राम विश्वामित्र का स्मरण कर प्रस्थान करते हैं। वसिष्ठ तथा दशरथ की पत्नियो से उपचर्यमाण अरुन्धती प्रवेश करते हैं। वसिष्ठ क्षमाशील, शरणागत रक्षक राम का स्मरण कर अपरिमित आनन्दानुभूति करते हैं। वसिष्ठ कौसल्या प्रभृति को रामादिक के आने का समाचार देते हैं। अरुन्धती कैकेयी को उद्विग्न देखकर कारण पूछती हैं। कैकेयी कलकदोषवश राम के समक्ष जाने से हिचकिचाती हैं। अरुन्धती बताती हैं कि वसिष्ठ ने अध्यात्म दृष्टि से जान लिया था कि उक्त कार्य माल्यवान् से प्रेरित हो मन्थरा मे प्रविष्ट शूर्पणखा ने सम्पादित किया था। सभी स्त्रियॉ राक्षसो की दुष्टता से आश्चर्यचकित होती हैं। वसिष्ठ इस मगलकाल मे उन्हे दुःखी होने से विरत करते हैं। राम वसिष्ठ–दर्शन से प्रसन्न होकर लक्ष्मण को बुलाते हैं। राम, लक्ष्मण के प्रणाम करने पर वसिष्ठ उन्हे नीतिधर्म, सदाचरणविषयक उपदेश देते हैं। दोनो अरुन्धती को प्रणाम करते हैं, अरुन्धती उन्हे इष्टसिद्धि का आशीर्वाद देती हैं। राम, लक्ष्मण के प्रणाम करने पर माताये उनका आलिगन कर आशीर्वाद देती हैं। सीता वसिष्ठ को प्रणाम करती हैं। वसिष्ठ उन्हे 'वीर प्रसवा' होने का आशीर्वाद

देते हैं। सीता के प्रणाम करने पर अरुन्धती उन्हे गले लगाकर पतिव्रता' का आशीर्वाद देती हैं। सीता श्वश्रुजन को प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त करती हैं।

नेपथ्य मे पुरवासियो को उत्सव मनाने, कर्मचारीगण के सावधान रहने, राज्याभिषेकार्थ तैयारी आदि का विश्वामित्र द्वारा निर्देश दिया जाता है। वसिष्ठ रामराज्याभिषेकार्थ विश्वामित्र–आगमन हेतु राम को भाग्यशाली समझते हैं। सभी हर्षित होते हैं।

तदनन्तर विश्वामित्र शिष्योसहित प्रवेश करते हैं। विश्वामित्र अपने उद्देश्य को पूर्ण देखकर अभिषेकार्थ प्रसन्न होते हैं। वसिष्ठ विश्वामित्र के लोकोत्तर चरित की प्रशसा करते हैं। वसिष्ठ तथा विश्वामित्र परस्पर सत्कार करते हैं। विश्वामित्र दिव्यर्षि गण को रामराज्याभिषेकार्थ आदेश देते हैं, मुनि गण द्वारा उक्त कार्य सम्पन्न करने पर नेपथ्य मे दुन्दुभि शब्द सुनाई देता है। सभी आश्चर्यचकित हो पुष्पवृष्टि देखते हैं। वसिष्ठ इसे रामाभिषेकार्थ इन्द्र–समर्थन निर्दिष्ट करते हैं। अभिषेक के अनन्तर राम गुरुजनो को प्रणाम करते हैं। वसिष्ठ तथा विश्वामित्र राम को भाइयो सहित राज्यभार–सम्भारणार्थ आदेश देते हैं, अन्य लोग अनुमोदन करते हैं।

तदनन्तर विश्वामित्र राम को सुग्रीव, विभीषण को विदा करने तथा पुष्पक विमान कुबेर के पास भेजने का निर्देश देते हैं, राम उक्त कार्य सम्पादित करते हैं। राम विश्वामित्र की कृपा से राजागण द्वारा पृथ्वी–पालन, राष्ट्रोन्नति की कामना करते हैं, विश्वामित्र उन्हे आशीर्वाद देते हैं, सभी प्रस्थान करते हैं।

तृतीय अध्याय

कथानक का मूल स्रोत,
कथानक में परिवर्तन एवं तत्[illegible]
परिवर्तनों का औचित्य

•तीय अध्याय

कथानक का मूल स्रोत, कथानक मे •रिवतन एवं तत्तद् परिवर्तनो का औचित्य

कथानक का मूल स्रोत

प्रकृत रूपक का इतिवृत्त आदिकवि वाल्मीकि प्रणीत 'रामायण' के बालकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड पर्यन्त के कथानक पर आधारित है। अतएव रूपक से सम्बद्ध कथानक के मूलस्रोत पर प्रकाश डालना अपरिहार्य हो जाता है।

राजा दशरथ महात्मा ऋष्यश्रृग द्वारा सम्पादित पुत्रेष्टि याग के अनन्तर भगवान् विष्णु के अवतार राम तथा लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चार पुत्रो को प्राप्त करते हैं। रामादिक चारो भाई ज्ञानी एव सद्गुण सम्पन्न थे, उन्होने धनुर्वेद आदि की सम्यक् शिक्षा प्राप्त की थी।

महर्षि विश्वामित्र यज्ञप्रतिबन्धक सुबाहु तथा मारीच से आक्रान्त हो राम एव लक्ष्मण को अपने साथ लाते हैं। मुनि सरयू तट पर दोनो कुमारो को बला तथा अतिबला नाम से प्रसिद्ध मन्त्र प्रदान करते हैं। मार्ग मे ताटका–वन में पहुँचकर विश्वामित्र राम को ताटका द्वारा मलद एव करुष जनपदो के आक्रान्त किये जाने तथा उसके जन्म, विवाह, शाप आदि वृत्तान्तो से अवगत कराते हैं तथा जनपदरक्षार्थ राम को ताटका–वध हेतु आदेश देते हैं, वे राम को स्त्री–वध का औचित्य भी निर्दिष्ट करते हैं। महर्षि की आज्ञा शिरोधार्य कर राम तथा लक्ष्मण भीषणाकृति मायावी ताटका के साथ युद्ध करते हैं, अन्त मे राम उसका वध कर देते हैं। महर्षि विश्वामित्र ताटका–वध से सतुष्ट होकर राम को दिव्यास्त्र प्रदान करते हैं। राम के आग्रह करने पर विश्वामित्र उन अस्त्रो की सहार–विधि बताते हैं।

एतदनन्तर सभी सिद्धाश्रम मे प्रविष्ट होते हैं। सुबाहु तथा मारीच यज्ञविघ्नस्वरूप उपस्थित होते हैं। राम–प्रयुक्त मानवास्त्र से आहत मारीच शत योजन दूर समुद्र मे गिर जाता है। राम आग्नेयास्त्र का सन्धान कर सुबाहु का वध करते हैं।

एतदनन्तर विश्वामित्र राम को जनक के यहॉ धर्म–यज्ञ मे सम्मिलित होने तथा शिवधनुर्दर्शनार्थ चलने के लिये कहते हैं। तीनो मिथिला जाने के लिये प्रस्थान करते हैं। मिथिला पहुॅचकर राम एक निर्जन आश्रम प्रान्त देखकर विश्वामित्र से पूछते हैं। विश्वामित्र बताते हैं कि यह अहल्या का आश्रम है। देवराज इन्द्र से समागम करने वाली पत्नी अहल्या को ऋषि गौतम ने प्रस्तरभूत होने तथा इन्द्र को अण्डकोषरहित होने का शाप दिया था। विश्वामित्र से आदिष्ट हो राम आश्रम मे प्रवेश करते हैं। अहल्या राम के दर्शनमात्र से शापमुक्त हो जाती हैं। रामादिक के आतिथ्यग्रहण के अनन्तर महर्षि गौतम अहल्या को स्वीकार कर पुन तप आरम्भ करते हैं।

तदनन्तर मुनि विश्वामित्र, राम तथा लक्ष्मण राजा जनक के यज्ञमण्डप मे पहुॅचते हैं। जनक विश्वामित्र का सत्कार करके राम एव लक्ष्मण का परिचय पूछते हैं। महर्षि विश्वामित्र जनक को दशरथ के पुत्र राम एव लक्ष्मण का परिचय देकर राक्षस–वध, अहल्या–साक्षात्कार, गौतम–समागम आदि वृत्तान्तो से अवगत कराते हैं तथा राम एव लक्ष्मण की माहेश्वरधनुर्दर्शनार्थ इच्छा बताते हैं। विश्वामित्र से माता का उद्धार–वृत्तान्त सुनकर अहल्या के ज्येष्ठ पुत्र शतानन्द राम का अभिनन्दन करते हैं तथा राम को महर्षि विश्वामित्र के पूर्वचरित से परिचित कराते हैं कि गाधि के पुत्र विश्वामित्र ने पृथ्वी पर शासन करते समय महर्षि वसिष्ठ से कामधेनु गौ मॉगा था, गौ के बलपूर्वक ले जाने पर वसिष्ठ ने विश्वामित्र की सेना का सहार किया। विश्वामित्र अपने सौ पुत्रो तथा सेना के नष्ट होने पर तपस्या कर शिव से दिव्यास्त्र प्राप्त करके वसिष्ठ के समक्ष उपस्थित हुए। वसिष्ठ द्वारा ब्रह्मदण्ड से दमन किये जाने पर विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व–प्राप्ति के लिये तपस्या की। राजा त्रिशकु यज्ञसम्पादनार्थ वसिष्ठ एव उनके पुत्रो के पास गये, उनके मना करने तथा शापवश चाण्डाल होकर त्रिशकु विश्वामित्र की शरण मे गये। विश्वामित्र ने ऋषिगण से यज्ञ करा कर त्रिशकु को सशरीर स्वर्ग भेज दिया, इन्द्र द्वारा लौटाने पर त्रिशकु विश्वामित्र द्वारा सृष्ट देवसर्ग मे निवास करने लगे। यज्ञ–पशु बनाये गये शुनशेप की मुनि ने रक्षा की तथा तपस्या मे विघ्नस्वरूप उपस्थित रम्भा को शाप देकर प्रस्तर बना दिया, कठोर तपस्या करके महर्षि वसिष्ठ प्रभृति द्वारा 'ब्रह्मर्षि' सज्ञा देने

पर विश्वामित्र ने वसिष्ठ का सत्कार किया। राजा जनक विश्वामित्र की परिक्रमा कर प्रस्थान करते हैं।

दूसरे दिन विश्वामित्र जनक से रामादिक की धनुर्दर्शनेच्छा प्रकट करते हैं। न्यासभूत शिवधनुष्, अयोनिजा सीता की कृषित भूमि से उत्पत्ति शिवधनुर्भंग विषयक प्रतिज्ञा, उक्त कृत्य मे असफल नृपगण द्वारा मिथिला को एक वर्ष तक आक्रान्त करना, देवगण द्वारा जनक को चतुरगिणी सेना की प्राप्ति, सेना द्वारा पराभूत नृपगण का विभिन्न दिशाओ मे पलायन आदि वृत्तान्तो से जनक विश्वामित्र को अवगत कराते हैं। विश्वामित्र की आज्ञा से राम प्रत्यञ्चाकर्षण कर शिवधुनर्भंग कर देते हैं। राजा जनक रामसीतापरिणयार्थ निश्चय कर मुनि विश्वामित्र से परामर्श करते हैं तथा दशरथ को निमन्त्रित करने के लिये मन्त्री गण को अयोध्या भेजते हैं। ब्रह्मर्षियो एव सेना के साथ राजा दशरथ के मिथिला पहुँचने पर जनक उनका स्वागत करते हैं। साकाश्या नगरी मे निवास करने वाले कुशध्वज ज्येष्ठ भ्राता जनक का सन्देश प्राप्त कर समुपस्थित होते हैं। राजा दशरथ के निवेदन करने पर महर्षि वसिष्ठ राजा जनक को सूर्यवश का परिचय देकर राम, लक्ष्मण के लिये सीता, उर्मिला का क्रमश वरण करते हैं, जनक इसका अनुमोदन करते हैं। भरत–माण्डवी, शत्रुघ्न–श्रुतकीर्ति के परिणय विषयक निर्णय हेतु जनक विश्वामित्र को स्वीकृति प्रदान करते हैं। राजा दशरथ द्वारा पुत्रो का नान्दीश्राद्ध एव गोदान कार्य सम्पन्न किये जाने पर रामादिक चारो भाइयो का विवाह होता है।

एतदनन्तर विश्वामित्र अपने आश्रम मे जाते हैं। जनक कन्याओ को प्रभूत धन देकर विदा करते हैं। दशरथादिक अयोध्यागमनार्थ प्रस्थान करते हैं। शिवधनुर्भंग–वृत्तान्त से क्रुद्ध होकर परशुराम मार्ग मे राम का वैष्णवधनुर्सन्धानार्थ आह्वान करते हैं। राम द्वारा धनुष् चढाकर मानमर्दन करने पर परशुराम राम से कश्यपमुनि को भूमि–दान, रात्रि मे पृथ्वी पर निवास न करने की प्रतिज्ञा आदि पूर्व वृत्तान्त बताकर कहते हैं कि आप साक्षात् विष्णुरूप हैं। परशुराम के निवेदन करने पर राम उत्तम बाण छोड देते हैं। राम से पूजित होकर परशुराम महेन्द्र द्वीप की ओर प्रस्थान करते हैं। राजा दशरथ पुत्र एव वधुओ सहित अयोध्या मे प्रविष्ट होते हैं। भरत एव शत्रुघ्न मामा युधाजित् के साथ जाते हैं।

एतदनन्तर राजा दशरथ राम को युवराज बनाने का विचार कर नृपवर्ग एव प्रमुख व्यक्तियो से परामर्श करते हैं। ब्राह्मण, सेनापति तथा मन्त्री गण अभिषेक–प्रस्ताव का सहर्ष स्वागत करते हैं। राजा दशरथ वसिष्ठ, वामदेव प्रभृति को राज्याभिषेकसम्पादनार्थ आदेश देते हैं तथा राम को अभिषेक विषयक निर्णय बताते हैं। माता कौशल्या को उक्त वृत्तान्त बताकर राम उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते हैं, राज्याभिषेक विषयक निर्णय सुनकर मन्थरा कैकेयी को वरयाचनार्थ प्रेरित करती है। कैकेयी अप्रभावित–सी होकर राम के सद्‌गुणो की प्रशसा कर अभिषेक'–निर्णय का समर्थन करती है। मन्थरा राम–राज्य को भरत के लिये अनिष्टकारी बताकर पुन प्रेरित करती है। अन्त मे कैकेयी 'राम–वनवास तथा भरत को राज्य' विषयक दो वर मॉगने का निश्चय कर कोपभवन मे प्रवेश करती है तथा दशरथ से उसे पूर्ण करने के लिये कहती है, दशरथ–प्रत्याख्यान सुनकर भी वह अपने निर्णय पर दृढ रहती है। सुमन्त्र राजाज्ञा से राम को भेजते हैं। महल मे प्रविष्ट हो दशरथ को चिन्तित देखकर राम कारण पूछते हैं। कैकेयी राम को वर–वृत्तान्त बताकर वनवासार्थ प्रेरित करती है। राम पिता के प्रतिज्ञापालनार्थ वनगमन का निश्चय करते हैं। राम से उक्त वृत्तान्त ज्ञात होने पर कौशल्या चेतनाशून्य होकर गिर जाती हैं। लक्ष्मण क्रोधित होकर राम को बलपूर्वक राज्याधिग्रहणार्थ प्रेरित करते हैं, किन्तु राम पित्राज्ञा–पालन को स्वधर्म बताकर लक्ष्मण को समझाते हैं। कौसल्या का राम के साथ वनगमनार्थ आग्रह का निषेध कर, राम उन्हे पतिधर्मपालनार्थ समझाते हैं तथा वन जाने के लिये अनुमति प्राप्त करते हैं। राम सीता को वनगमन का निश्चय बताकर उन्हे गृहवासार्थ समझाते हैं, किन्तु सीता के अत्यधिक आग्रह एव विलाप करने पर राम उन्हे जाने की स्वीकृति प्रदान करते हैं। सीता, राम तथा लक्ष्मण ब्राह्मणो को अपने आभूषण, रत्न, धन आदि का दान कर दशरथ से वनगमनार्थ आज्ञा मॉगते हैं। दशरथ शोकातुर हो राम को हृदय से लगाकर मूर्च्छित हो जाते हैं। कैकेयी सुमन्त्र के तीखे वचनो को सुनकर प्रभावित नहीं होती है। वसिष्ठ कैकेयी को सीता का वल्कलधारण विषयक अनौचित्य बताते हैं। रामादिक माता एव गुरुजनो को प्रणाम कर रथारूढ हो प्रस्थान करते हैं।

एतदनन्तर राजा दशरथ राम–वियोग से उद्विग्न हो पृथ्वी पर गिर जाते हैं तथा कैकेयी का परित्याग कर कौसल्या के भवन मे प्रविष्ट होते हैं। कौसल्या रामादिक की अवस्था सोचकर विलाप करती हैं, सुमित्रा कौसल्या को समाश्वसित करती हैं। राम पुरवासियो से भरत तथा महाराज दशरथ के प्रति प्रेमभाव रखने का आग्रह करके उन्हे लौट जाने के लिये कहते हैं। पुरवासी राम के साथ

तमसा नदी के तट पर पहुँचते हैं। रामादिक उन्हे तट पर निद्रावस्था मे ही छोडकर प्रस्थान करते हैं। पुरवासी विलाप करते हैं तथा अयोध्या लौट जाते हैं।

एतदनन्तर श्रृगवेरपुर मे निषादराज गुह का आतिथ्य–सत्कार ग्रहण कर राम सुमन्त्र को अयोध्या प्रेषित करते हैं। रामादिक नौका से नदी पारकर वत्सदेश मे पहुँचते हैं। राम राजा दशरथ को मतिभ्रमवश पुत्रत्याग विषयक उपालम्भ देकर तथा कैकेयी से कौसल्या आदि माताओ के अनिष्ट की आशका कर लक्ष्मण को अयोध्या–प्रत्यावर्तनार्थ समझाते हैं, किन्तु लक्ष्मण द्वारा राम के साहचर्य को सर्वोपरि बताने पर राम उन्हे वनवासार्थ अनुमति प्रदान करते हैं।

एतदनन्तर रामादिक प्रयाग मे भरद्वाज मुनि के आश्रम मे जाते हैं। भरद्वाज मुनि अतिथि–सत्कार कर उन्हे चित्रकूट पर्वत पर निवासार्थ आदेश देते हैं। चित्रकूट पहुँचकर वे वाल्मीकि जी का दर्शन करते हैं। रामाज्ञा से लक्ष्मण वहाँ पर्णशाला निर्मित करते हैं। सभी कुटी मे प्रवेश करते हैं।

एतदनन्तर सुमन्त्र अयोध्या लौटकर पुरवासियो को राम–वृत्तान्त बताते हैं। पुरवासी विलाप करते हैं। दशरथ तथा कौसल्या मूर्च्छित हो जाते हैं। कौसल्या पुत्रविरह से उद्विग्न होकर दशरथ को उपालम्भ देती हैं, दशरथ के अनुनय–विनय करने पर वह क्षमाप्रार्थना करती हैं। दशरथ कौसल्या को श्रवण–वध एव शापवृत्तान्त से अवगत कराकर प्राण त्याग देते हैं, रानियाँ पतिविरह से शोकातुर हो विलाप करती हैं। वसिष्ठ भरत को बुलाने के लिये दूत को केकयदेश प्रेषित करते हैं। भरत तथा शत्रुघ्न अयोध्या मे प्रवेश करते हैं। माता कैकेयी से पिता की मृत्यु का समाचार जानकर भरत विलाप करते हैं तथा राम–वनवास–वृत्तान्त बताने पर कैकेयी की निन्दा करते हैं, माता कौसल्या के समक्ष स्वय को निर्दोष बताकर पिता का दाह–सस्कार करते हैं। भरत मन्त्री वर्ग के राज्यग्रहण विषयक प्रस्ताव को अस्वीकार कर राम–प्रत्यावर्तनार्थ निश्चय करते हैं तथा महर्षि वसिष्ठ के राज्याभिषेक–प्रस्ताव को स्वीकार न करके राम के पास ससैन्य प्रस्थान करते हैं।

एतदनन्तर भरत निषादराज गुह एव भरद्वाज मुनि से मिलकर चित्रकूट जाते हैं। भरत का ससैन्य आगमन देखकर क्रुद्ध हुए लक्ष्मण को राम भरत के सद्गुणो का वर्णन कर शान्त करते हैं। राम भरत का राज्यग्रहणसम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार नहीं करते हैं तथा पिता की मृत्यु का वृत्तान्त ज्ञात होने पर विलाप करते हैं, जलाञ्जलि एव पिण्डदान करते हैं। राम, लक्ष्मण तथा सीता वसिष्ठ एव

माताओ की चरणवन्दना करते हैं तथा उन्हे प्रणाम करते हैं। भरत रामप्रदत्त चरणपादुका को ग्रहण कर अयोध्या प्रस्थान करते हैं तथा नन्दिग्राम मे जाकर चरणपादुकाओ को राज्य पर अभिषिक्त करके राज्यकार्य आरम्भ करते हैं।

एतदनन्तर चित्रकूट मे तपस्वी जन रामागमनवश खर प्रभृति राक्षसो से विघ्न की आशका कर आश्रम का परित्याग करते हैं तथा राम को अन्यत्र गमनार्थ परामर्श देते हैं। राम महर्षि अत्रि के आश्रम मे जाकर आतिथ्य ग्रहण करते हैं, तापसी अनुसूया सीता से स्वयवर आदि प्रसग ज्ञात होने पर उन्हे वस्त्राभूषण प्रदान करती हैं।

एतदनन्तर रामादिक दण्डकारण्य मे प्रविष्ट होकर आश्रम प्रान्त मे तपस्वियो का आतिथ्य ग्रहण कर आगे बढते हैं। मार्ग मे विराध राक्षस सीता पर आसक्त हो उन्हे अक मे समाविष्ट कर लेता है। सीता की दुरवस्था देखकर राम एव लक्ष्मण विराध की भुजाये काट देते हैं। राम लक्ष्मण को भूमि–खनन हेतु आदेश देते हैं। रामादिक को पहचान कर विराध अपना पूर्ववृत्तान्त बताता है कि वह तुम्बुरु नामक गन्धर्व था। रम्भा पर आसक्ति होने के कारण विलम्ब से आने पर कुबेरशापवशात् राक्षस हो गया था। वह अपने आहत वपु को भूमि मे निक्षिप्त करने का आग्रह करता है, उन्हे शरभग मुनि के पास जाने का परामर्श देता है। मनोवाञ्छित मृत्यु प्राप्त होने पर विराध शापमुक्त हो अपने लोक को प्रयाण करता है।

एतदनन्तर रामादिक शरभग मुनि के आश्रम मे प्रवेश करते हैं। वहॉ शरभग मुनि से वार्त्तालाप करते हुए देवराज इन्द्र राम को देखकर रावण–वध के अनन्तर रामसमागम विषयक इच्छा प्रकट कर प्रस्थान करते हैं। राम को निवासार्थ सुतीक्ष्ण मुनि से मिलने के लिये कहकर महर्षि शरभग हव्याग्नि मे शरीरार्पण कर ब्रह्मलोक हेतु प्रयाण करते हैं। रामादिक महर्षि सुतीक्ष्ण से आदिष्ट हो अगस्त्य मुनि के पास जाते हैं। अगस्त्य उन्हे दिव्यास्त्र प्रदान कर पञ्चवटी मे निवास करने का आदेश देते हैं। मार्ग मे गृध्रराज जटायु से समागम होता है। जटायु अपना परिचय देकर सीतारक्षार्थ वचन देता है। लक्ष्मणनिर्मित पर्णशाला मे राम सीता एव लक्ष्मण के साथ निवास करते हैं।

एतदनन्तर रावण की भगिनी शूर्पणखा आश्रम मे जाकर राम एव लक्ष्मण से क्रमश प्रणय–निवेदन करती है तथा असफल होने पर सीता पर आक्रमण करती है। लक्ष्मण उसकी नासिका, कर्ण आदि विदीर्ण कर देते हैं। शूर्पणखा से उक्त वृत्तान्त ज्ञात होने पर आये खर, दूषण,

त्रिशिरा तथा चौदह सहस्त्र राक्षसो का राम युद्ध के पश्चात् सहार करते हैं। अकम्पन द्वारा युद्धवृत्तान्त बताकर सीता–हरणार्थ प्रेरित किये जाने पर रावण मारीच के पास जाता है। मारीच उसे राक्षस–अनिष्ट बताकर लौटा देता है। शूर्पणखा रावण को राज्यकार्य से परागमुख रहने, राम का राक्षस–सहार कर दण्डकारण्य एव जनस्थान मे आधिपत्य को राक्षसो के लिये अहितकर बताकर राम एव लक्ष्मण के पराक्रम तथा सीता के सौन्दर्य का परिचय देती है। रावण मारीच को सीताहरणकार्य–सहायतार्थ अन्तत आदेश देता है। स्वर्णमृगरूपी मारीच के पीछे राम के जाने पर रक्षार्थ आह्वान सुनकर सीता लक्ष्मण को प्रेषित करती हैं। रावण परिव्राजक वेष मे आकर सीता का बलात् अपहरण करता है। मार्ग मे जटायु रावण की निन्दा कर आक्रमण करता है, अन्त मे जटायु आहत हो गिर जाता है। सीता रावण के दुराचार की निन्दा करती है तथा मार्ग मे वानरो को देखकर अपना वस्त्र एव आभूषण गिराती हैं। रावण लका पहुँचकर सीता को अन्त पुर मे ले जाता है। सीता द्वारा भार्या–प्रस्ताव अस्वीकार करने पर राक्षसियॉ रावणाज्ञा से सीता को अशोक वाटिका मे ले जाकर डराती हैं।

एतदनन्तर राम तथा लक्ष्मण अनिष्ट की आशका कर आश्रम मे प्रवेश करते हैं, वहॉ सीता को न पाकर व्यथित होते हैं। राम विलाप करते हैं तथा वृक्षो एव पशुओ से सीताविषयक प्रश्न करते हैं। राम तथा लक्ष्मण मृग के सकेत से दक्षिण दिशा की ओर जाते हैं, सीता के आभूषण आदि देखते हैं। शोकातुर राम को लक्ष्मण समाश्वसित करते हैं। मार्ग मे पक्षिराज जटायु रावण द्वारा सीताहरण विषयक समाचार देकर प्राण त्याग देता है। राम जटायु का दाहसस्कार करते हैं।

एतदनन्तर राम, लक्ष्मण क्रौञ्चारण्य नामक गहन वन को पार मतग मुनि के आश्रम मे जाते हैं। वहॉ एक पर्वत की कन्दरा से निर्गत अयोमुखी राक्षसी लक्ष्मण से प्रणय–निवेदन कर परिणय–प्रस्ताव रखती है तथा उन्हे भुजाओ मे समाविष्ट कर लेती है, लक्ष्मण द्वारा नासिका, कर्ण एव स्तन काट देने पर घोरनिनाद करती हुयी भाग जाती है।

एतदनन्तर राक्षस कबन्ध अपनी भुजाओ मे राम एव लक्ष्मण को बलात् समाविष्ट कर लेता है। रामादिक द्वारा भुजा काट दिये जाने पर कबन्ध उन्हे अपना पूर्ववृत्तान्त बताता है कि वह महर्षि स्थूलशिरा के शाप से राक्षस तथा इन्द्र के वज्र–प्रहार से आहत हो कबन्धमात्रावशिष्ट था। रामादिक द्वारा दाहसस्कार के अनन्तर कबन्ध दिव्य पुरुष के रूप मे प्रकट होकर सीताहरण वृत्तान्त ज्ञात होने

पर उन्हे सुग्रीव–मैत्री का परामर्श देता है। वह बताता है कि सुग्रीव के ज्येष्ठ भ्राता वाली ने क्रोधित हो उसे गृह से निकाल दिया है, सम्प्रति सुग्रीव पम्पासरोवर पर्यन्त विस्तीर्ण ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करते हैं। कबन्ध रामादिक को ऋष्यमूक एव पम्पा सरोवर का मार्ग निर्दिष्ट कर तथा मतग मुनि के वन एव आश्रम का परिचय देकर प्रस्थान करता है।

एतदनन्तर राम तथा लक्ष्मण पम्पा सरोवर के निकट सिद्धतपस्विनी वृद्धा शबरी के आश्रम मे प्रविष्ट होते हैं। शबरी उनका आतिथ्य–सत्कार कर प्रज्वलित हव्याग्नि मे शरीरार्पण कर स्वर्गलोक को प्रयाण करती है। राम पम्पा नामक पुष्करिणी के रमणीक स्थल को देखकर सीता का स्मरण कर विलाप करते हैं, लक्ष्मण उन्हे समाश्वसित करते हैं।

सुग्रीव तथा अन्य वानर राम एव लक्ष्मण को ऋष्यमूक पर्वत की ओर आते हुए देखकर उन्हे वाली का पक्षपाती समझकर भयभीत हो जाते हैं। हनूमान् यहॉ मलय पर्वत पर वाली–आगमन का निराकरणकर रामादिक से वन–आगमन का कारण पूछकर अपना एव सुग्रीव का परिचय देते हैं। लक्ष्मण राम–निदेश से हनूमान् को वनागमन, सीताहरण आदि पूर्ववृत्तान्त बताकर सुग्रीवसहायतार्थ आकाक्षा व्यक्त करते हैं। हनूमान् उन्हे समाश्वसित कर सुग्रीव के निकट ले जाकर सुग्रीव को उनका सम्यक् परिचय देते हैं। राम तथा सुग्रीव प्रज्वलित अग्नि की प्रदक्षिणा कर मित्रता करते हैं। राम सुग्रीव से वाली द्वारा राज्य एव पत्नी का ग्रहण सुनकर वालीवधार्थ आश्वस्त करते हैं। सुग्रीव के पास सीता का आभूषण देखकर राम शोकातुर हो जाते हैं। सुग्रीव रामसहायतार्थ वचन देता है तथा वाली द्वारा एक राक्षस–वध के समय सुग्रीव को कन्दरा के बाहर नियुक्त करना, एक वर्ष के अनन्तर रक्तस्राव देख उन्हे मृत समझकर सुग्रीव का वापस आकर राज्यकार्यसम्भारण, वाली का राक्षसवध करके तथा आकर सुग्रीव–कथन पर विश्वास न कर राज्यनिष्कासन, वाली द्वारा दुन्दुभि दैत्य का वध कर उसके मृत शरीर को मतग वन मे प्रक्षेपण, मतगमुनि का इस वन मे प्रविष्ट होने पर वध्य होने का वाली को शाप, सम्प्रति सुग्रीव का ऋष्यमूक पर्वत पर निवास आदि घटनाक्रम से राम को अवगत कराता है। राम–पराक्रम के प्रति सशकित हो सुग्रीव राम को वाली द्वारा सप्ततालवृक्षभेदन प्रसग बताकर वृक्षभेदन तथा दुन्दुभिअस्थिप्रक्षेपण हेतु कहता है। राम दुन्दुभि के अस्थिसमूह का ॲगुष्ठ से स्पर्श कर दस योजन दूर प्रक्षेपित करते हैं तथा सप्तताल वृक्षो का भेदन करते हैं। राम से आदिष्ट हो सुग्रीव किष्किन्धा मे प्रविष्ट हो वाली का युद्धार्थ आह्वान करता है, किन्तु वाली से

परास्त हो मतग वन मे भाग जाता है। राम सुग्रीव के कण्ठ मे अभिज्ञानार्थ गजपुष्पी लता निक्षेपित कर युद्धार्थ पुन प्रेषित करते हैं। वाली तारा का सुग्रीव एव राम से मैत्री विषयक परामर्श अस्वीकार कर सुग्रीव से युद्ध करता है। राम सुग्रीव को युद्ध मे दुर्बल देखकर धनुष् पर बाण का सन्धान करके वाली का वध करते हैं। वाली आहत होकर पृथ्वी पर गिर जाता है तथा राम की अधर्माचरणार्थ निन्दा करता है। राम द्वारा दण्डौचित्य निर्दिष्ट किये जाने पर वाली क्षमा प्रार्थना करता है तथा अगदरक्षार्थ निवेदन करता है। हनूमान् विलाप करती हुई तारा को समझाते हैं, तारा सती होने की इच्छा प्रकट करती है। वाली सुग्रीव को राज्य–भार सौंपकर अगद को सुग्रीव के अधीनस्थ कर प्राण त्याग देता है। तारा विलाप करती है। शोकातुर हो प्राण त्यागने के लिये तत्पर सुग्रीव तथा उद्विग्न तारा को राम समाश्वसित करते हैं। राम से आदिष्ट हो अगद वाली का दाह–सस्कार कर जलाञ्जलि देते हैं। राम–निदेश से सुग्रीव एव अगद का अभिषेक होता है।

एतदनन्तर राम तथा लक्ष्मण प्रस्रवण पर्वत पर स्थित एक कन्दरा मे निवास करते हैं। राज्यप्राप्ति के अनन्तर राम–कार्य से सुग्रीव को विमुख देखकर हनूमान् उन्हे परामर्श देते हैं। सुग्रीव वानर सेना को एकत्रित होने का आदेश देते हैं। सीताविरह से उद्विग्न होकर राम लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजते हैं। लक्ष्मण विलम्ब होने से रुष्ट होकर किष्किन्धा जाते हैं। अगद से लक्ष्मण–रोष का वृत्तान्त ज्ञात होने पर चिन्तामग्न सुग्रीव को हनूमान् समझाते हैं। लक्ष्मण के महल मे प्रविष्ट होने पर सुग्रीव कोपशमनार्थ तारा को प्रेषित करते हैं। तारा लक्ष्मण का कोपशमन कर उन्हे अन्त पुर मे लाती है। सुग्रीव लक्ष्मण से क्षमाप्रार्थना कर हनूमान् को वानर सेना सग्रहार्थ दूत भेजने का आदेश देते हैं। समस्त वानर किष्किन्धा प्रस्थित होते हैं। सुग्रीव से सैन्यसग्रहप्रयत्न सुनकर राम कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। वानर सेना के आने पर सुग्रीव रामाज्ञानुसार वानरो को सीतान्वेषण हेतु चारो दिशाओ मे प्रेषित करते हैं। राम हनूमान् को स्वानामाकित अँगूठी प्रदान करते हैं। दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थित वानर सीता का अन्वेषण करते हैं। मार्ग मे एक कन्दरा मे निवास करती हुई तपस्विनी स्वयप्रभा हनूमान् को अपना परिचय देती है तथा हनूमान् से राम एव लक्ष्मण का परिचय तथा सीता–हरण–वृत्तान्त ज्ञात होने पर अपने प्रभाव से वानरो को कन्दरा से बाहर निकाल देती है। प्रत्यावर्तन–अवधि पूर्ण होने पर सुग्रीव के भय से आक्रान्त हो अगद प्रभृति वानर प्राणपण हेतु तत्पर होते हैं। हनूमान् अगद को राज्यग्रहण विषयक वञ्चना देकर अपने साथ ले जाते हैं। सम्पाति अगद से जटायुवध का वृत्तान्त ज्ञात होने पर अपने पँख के दग्ध होने की घटना बताता है तथा लकाधिपति रावण द्वारा

सीताहरण की सूचना देता है। सम्पाति रावण–पराक्रम का सकेत देकर, अनुज जटायु को जलाञ्जलि अर्पित कर, वानरो को पॅख–दग्ध विषयक आत्मकथा बताता है तथा नूतन पॅख से युक्त हो वानरो को उत्साहित कर प्रस्थित होता है। वानर दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर होते हैं।

समुद्रलघनार्थ अगद एव जाम्बवान् परस्पर विचार–विमर्श कर हनूमान् को भेजने का निर्णय करते हैं। जाम्बवान् हनूमान् को उनकी जन्मकथा बताकर समुद्रलघन हेतु प्रेरित करते हैं। हनूमान् सुरसा–विजय तथा सिहिका–वध के अनन्तर लका मे प्रविष्ट हो सीतान्वेषण करते हुए अशोकवाटिका मे पहुॅचते हैं। वहॉ सीता द्वारा रावण की कामभावना अस्वीकार करने पर रावण उन्हे दो माह का समय देकर लौट जाता है। राक्षसियो द्वारा वधार्थ धमकी देने पर सीता प्राणत्यागार्थ निश्चय करती है, राम–विजय तथा राक्षस–पराभव विषयक स्वप्न का उल्लेख कर त्रिजटा सीता को समाश्वसित करती है। हनूमान् सीता को अभिज्ञानस्वरूप मुद्रिका देकर साथ चलने का प्रस्ताव रखते हैं, सीता उक्त प्रस्ताव अस्वीकार कर हनूमान् को चूडामणि प्रदान करती हैं। हनूमान् वृक्ष, लता एव पर्वत को क्षति पहुॅचाकर प्रमदा वन का विध्वस करते हैं तथा रावण–प्रेषित किकर प्रभृति राक्षस गण तथा अक्षकुमार का वध करते हैं। इन्द्रजित् युद्ध कर हनूमान् को दिव्यास्त्रो से आवेष्टित कर रावण की सभा मे प्रविष्ट होते हैं। विभीषण का दूतवधानौचित्य विषयक परामर्श अस्वीकार कर रावण पूॅछ जलाने का आदेश देते हैं। हनूमान् लका नगरी को भस्मसात् कर तथा सीता से मिलकर प्रस्थित होते हैं।

हनूमान् से सीता की दयनीय अवस्था सुनकर अगद के युद्धार्थ उत्तेजित होने पर जाम्बवान् उन्हे विरत करते हैं। वानरगण किष्किन्धा नगरी पहुॅचते हैं। राम हनूमान् से सीता की चूडामणि प्राप्त होने पर भावविह्वल हो जाते हैं। हनूमान् राम को लका के दुर्ग, सैन्यशक्ति से अवगत कराकर सद्य प्रस्थानार्थ निवेदन करते हैं। मन्त्री वर्ग रावण को रावण, इन्द्रजित्–पराक्रम तथा राम–पराजय का सप्रत्यायन कराते हैं, विभीषण सीता को लौटाने का आग्रह करते हैं, कुम्भकर्ण सर्वप्रथम रावण के दुष्कर्म की निन्दा करता है, किन्तु शत्रुसहारार्थ वचन देता है। रावण महापार्श्व की सीतारमणोपभोग विषयक परामर्श का शापवशात् निराकरण करता है। इन्द्रजित् द्वारा बल, पराक्रम एव धैर्य विषयक उपहास किये जाने पर विभीषण राम के आश्रय मे आते हैं। राम मन्त्रियो से परामर्श कर विभीषण से मित्रता करते हैं तथा रावण की शक्ति ज्ञात होने पर विभीषण को रावण का वध कर लका राज्य को

प्रदान करने का वचन देते हैं। विभीषण से सेतु–निर्माणार्थ परामर्श कर समुद्र के तट पर उपवेशन करते हैं।

एतदनन्तर रावण द्वारा प्रेषित शुक राम के सैन्यसग्रह आदि का अवलोकन करता है, वानरो से सत्रस्त हो राम के समक्ष रक्षार्थ निवेदन करता है, राम उसे लका प्रेषित करते हैं। प्रायोपवेश के तीन दिन के पश्चात् समुद्र का दर्शन न होने पर राम बाणसन्धानार्थ उद्यत होते हैं। समुद्र दिव्य रूप मे प्रकट हो नल द्वारा शत योजन विस्तीर्ण सेतुनिर्माण का परामर्श देते हैं। सेतु निर्मित होने पर राम वानर सेनासहित सागर–सस्तरण कर लका पहुँचते हैं।

राम लका पर आक्रमणार्थ सेना की व्यूहरचना हेतु आदेश देते हैं। शुक से राम की प्रबल सैन्यशक्ति का वर्णन सुनकर रावण अपने बल, पराक्रम विषयक आत्मश्लाघा करता है। विभीषण रावण द्वारा वानर के रूप मे प्रेषित शुक तथा सारण को पहचान लेते हैं, राम की कृपा से लका पहुँचकर शुक एव सारण रावण से राम के पराक्रम की प्रशसा कर स[illegible]ार्थ निवेदन करते हैं, दोनो सुग्रीव एव हनूमान्, राम तथा लक्ष्मण आदि का परिचय देकर वानर सेना के परिमाण का निरूपण करते हैं। रावण क्रुद्ध होकर शुक तथा सारण को सभा से निष्कासित कर देता है। गुप्तचर रामकृपावश छूटकर लका पहुँचते हैं। रावण द्वारा राम का मायारचित कटा मस्तक दिखाने पर सीता सप्रत्यय कर विलाप करती हैं। रावण सभा मे जाकर मन्त्री गण से युद्ध विषयक परामर्श कर उद्यत होता है। सरमा सीता को रावण–माया बताकर राम की विजय के प्रति आश्वस्त करती है। रावण माल्यवान् का राम–सन्धि विषयक प्रस्ताव अस्वीकार कर नगररक्षार्थ प्रबन्ध कर अन्त पुर मे प्रविष्ट होता है।

एतदनन्तर राम विभीषण से लका का रक्षा–प्रबन्ध ज्ञात होने पर द्वारो पर सेनापतियो को आक्रमणार्थ नियुक्त करते हैं। राम प्रमुख वानरो सहित सुवेल पर्वत पर चढकर रात्रि व्यतीत करते हैं तथा लका नगरी का निरीक्षण करते हैं। सुग्रीव सुवेल पर्वत से कूदकर रावण के साथ मल्ल युद्ध आरम्भ करते हैं, राम सुग्रीव को विरत करते हैं। राम ससैन्य लका पहुँचकर आक्रमणार्थ तत्पर होते हैं। राम का दूत अगद रावण की सभा मे प्रविष्ट हो युद्धार्थ आह्वान करता है। दोनो सेना मे भयकर युद्ध आरम्भ हो जाता है। राम राक्षसो का वध करते हैं। अगद द्वारा रथ एव अश्व नष्ट करने पर इन्द्रजित् अदृश्य होकर राम तथा लक्ष्मण को बाणो से आवृत करता है, वानर गण शोकाकुल हो

जाते हैं। राक्षसियॉ रावणाज्ञा से सीता को युद्धभूमि मे ले जाती हैं, सीता विलाप करती हैं। त्रिजटा सीता को राम एव लक्ष्मण के जीवित होने का विश्वास दिलाती हैं। राम चैतन्य हो लक्ष्मण के लिये उद्विग्न होते हैं। गरूड दोनो को नागपाशास्त्र से मुक्त करते हैं।

एतदनन्तर धूम्राक्ष, वज्रदष्ट्र, अकम्पन, प्रहस्त प्रभृति योद्धाओ के वीर गति को प्राप्त होने पर रावण स्वय युद्धार्थ प्रस्थित होता है, रावण सुग्रीव को अचेत कर देता है, हनूमान् से युद्ध करता है, नील को मूर्च्छित कर देता है तथा लक्ष्मण पर शक्ति प्रहार कर मूर्च्छित कर देता है, किन्तु राम से पराभूत हो लका मे प्रविष्ट होता है तथा पराजय से उद्विग्न हो कुम्भकर्ण को जगाता है। कुम्भकर्ण रावण को कुकृत्य विषयक उपालम्भ देता है, अन्तत युद्धभूमि मे आकर वानर सेना का सहार करता है, अगद वानरो को समाश्वसित कर लौटाते हैं। राम युद्ध कर कुम्भकर्ण का वध करते हैं। अगद एव हनूमान्, नील, ऋषभ क्रमश नरान्तक, देवान्तक और त्रिशिरा, महोदर तथा महापार्श्व का वध करते हैं। इन्द्रजित् ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर वानरसेना सहित राम तथा लक्ष्मण को मूर्च्छित कर देता है। जाम्बवान् से आदिष्ट हो कर हनूमान् हिमालय पर्वत से दिव्यौषधियो का पर्वत लाते हैं, औषधि के गन्ध से सभी पुन स्वस्थ होते हैं। इन्द्रजित् हनूमान् तथा अन्य वानरो के समक्ष माया–रचित सीता का वध करता है, हनूमान् उसे उपालम्भ देते हैं। हनूमान् तथा अन्य वानर राक्षसो से युद्ध करते हैं। हनूमान् राम के पास जाते हैं, इन्द्रजित् निकुम्भिला मन्दिर मे जाकर होम करता है। राम सीता के वध का वृत्तान्त ज्ञात होने पर मूर्च्छित हो जाते हैं। लक्ष्मण उन्हे धैर्य बॅधाकर युद्धार्थ उद्यत करते हैं। विभीषण इन्द्रजित्कृत मायारहस्य का प्रकाशन कर सीता के जीवित होने का सप्रत्यय कराते हैं तथा लक्ष्मण को ससैन्य निकुम्भिला मन्दिरगमनार्थ निवेदन करते हैं। लक्ष्मण इन्द्रजित् से द्वन्द्व–युद्ध कर उसके सारथि का वध करते हैं तथा इन्द्रजित् को बाण के प्रहार से विदीर्ण कर सहार करते हैं। इन्द्रजित्–वध–वृत्तान्त ज्ञात होने पर राम लक्ष्मण का कण्ठालिगन करते हैं। रावण पुत्रशोक से उद्विग्न हो सीतावधार्थ उद्यत होता है, सुपार्श्व रावण को उक्त कार्य से विरत करता है।

एतदनन्तर राम तथा रावण मे भयकर युद्ध आरम्भ हो जाता है। रावण शक्ति–प्रहार से लक्ष्मण को मूर्च्छित कर पलायित हो जाता है। राम विलाप करते हैं। सुषेण द्वारा हनूमान्–आनीत औषधि–प्रयोग से लक्ष्मण चेतनावस्था मे आते हैं। राम इन्द्र–प्रेषित रथ पर आरूढ हो रावण से युद्ध करते हैं। सारथि द्वारा आहत रावण को युद्धभूमि से बाहर ले जाने पर रावण सारथि को फटकारता

है। सारथि पुन रावण को रणभूमि मे ले जाता है, अगस्त्य मुनि राम को विजय प्राप्ति के लिये आदित्यहृदय पाठ विषयक सम्मति देते हैं। सारथि मातलि से प्रेरित होकर राम ब्रह्मास्त्र का सन्धान कर रावण का सहार करते हैं तथा शोकातुर विभीषण को समाश्वसित कर रावण के अन्त्येष्टि–सस्कारार्थ आदेश देते हैं। मन्दोदरी तथा अन्य स्त्रियॉ विलाप करती हैं।

राम–निदेश से लक्ष्मण विभीषण का राज्याभिषेक करते हैं। हनूमान् अशोकवाटिका मे जाकर सीता को राम का रावण–वध विषयक सन्देश निवेदन करते हैं। रामाज्ञा से विभीषण सीता को राम के समक्ष लाते हैं। राम परपुरुषगृह मे निवास करने के कारण सीता का तिरस्कार करते हैं। सीता राम को उपालम्भ देकर सतीत्त्वपरिशुद्ध्यर्थ अग्नि मे प्रविष्ट होती हैं। राम अग्निदेव से प्रमाणित सीता को सहर्ष स्वीकार करते हैं। राम के आग्रह करने पर इन्द्र मृत वानरो को जीवित कर देते हैं।

राम विभीषण तथा सुग्रीव वानरगण, सीता एव लक्ष्मण के साथ पुष्पक विमान पर पर आरूढ हो अयोध्या प्रस्थान करते हैं। मार्ग मे राम सीता को युद्धभूमि, प्रमुख राक्षसो का वधस्थल, सेतु–निर्माण, विभीषण–समागम, वाली–वध आदि पूर्व वृत्तान्तो से अवगत कराते हैं। किष्किन्धा आने पर राम से आदिष्ट हो सुग्रीव तारा एव प्रमुख वानर स्त्रियो को विमान पर आरूढ करते हैं। राम सीता को सुग्रीव–मैत्री, सीता–हेतु विलाप, शबरी–दर्शन, कबन्ध–वध, जटायु–मृत्यु, खर प्रभृति का सहार, पर्णशाला–निर्माण, महर्षि अगस्त्य, सुतीक्ष्ण तथा शरभग मुनि का आश्रम, विराध–वध, अत्रि मुनि का आश्रम तथा अनुसूया–सीता–समागम, चित्रकूट पर भरत आगमन, श्रृगवेरपुर मे निषा[illegible]गुह से समागम, अयोध्या आदि वृत्तान्तो से अवगत कराते हैं। राम भरद्वाज आश्रम पर उतरकर महर्षि से मिलते हैं। हनूमान् निषादराज गुह तथा भरत को रामागमन की सूचना देते हैं। हनूमान् भरत को वनवास के वृत्तान्त से परिचित कराते हैं। भरत रामस्वागतार्थ अयोध्या को सुसज्जित करने का आदेश देकर नन्दिग्राम मे पहुँचते हैं। भरत राम को साष्टाग प्रणाम करते हैं, राम उन्हे हृदय से लगाते हैं। लक्ष्मण भरत को तथा भरत सीता को प्रणाम करते हैं। भरत अगद, नील प्रभृति वानरो का आलिगन करते हैं। भरत सुग्रीव एव विभीषण का अभिवादन कर उनकी प्रशसा करते हैं। शत्रुघ्न राम एव लक्ष्मण तथा सीता को प्रणाम करते हैं। राम माताओ का अभिवादन कर राजपुरोहित वसिष्ठ के पास जाते हैं। अयोध्यावासी राम का स्वागत करते हैं। भरत राम को राज्य लौटाते हैं। समस्त वानर तथा विभीषण भरत का प्रेम देखकर अश्रु प्रवाहित करते हैं। राम

भरतादिक के साथ भरत के आश्रम मे पहुँचते हैं, तत्पश्चात् पुष्पक विमान को कुबेर के पास जाने का आदेश देते हैं। भरत राम से निवेदन कर आदिष्ट हो राज्याभिषेक–सम्पादनार्थ आदेश देते हैं। सभी अयोध्या मे प्रविष्ट होते हैं। राम पिता के भवन मे पहुँचकर माताओ का अभिवादन करते हैं तथा सुग्रीव को भवन प्रदान करने के लिये भरत को आदेश देते हैं। वसिष्ठ प्रभृति ऋषिगण राम का अभिषेक करते हैं। राम से हनूमान् एव सुग्रीव, विभीषण तथा वानर गण सत्कृत हो यथास्थान प्रस्थित होते हैं। राम सर्वप्रथम लक्ष्मण को युवराज पद पर अभिषिक्त करना चाहते हैं, किन्तु लक्ष्मण के मना करने पर भरत को युवराज बनाते हैं। राम भाइयो सहित एकादश सहस्र वर्ष पर्यन्त पृथ्वी पर शासन करते हैं।

कथानक में परिवर्तन एव तत्तद् परिवर्तनों का औचित्य

इतिवृत्त के सम्बन्ध मे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष का विवेचन अपरिहार्य है– कथानक का औचित्य। जो जिसके अनुरूप हो, वह उचित कहा जाता है तथा उचित का भाव ही 'औचित्य' कहलाता है।[1] वस्तुत काव्य जगत् मे आचार्यों ने काव्य की एक सरणि निश्चित की है, उसका यथावत् अनुकरण उचित है, उससे इतर अनुचित है, सदोष है। काव्य मे रस, अलकार गुणादिक का उचित सन्निवेश न होना अनौचित्य है यथा – मेखला कण्ठ मे धारण करने पर हास्यास्पद प्रतीत होती है।[2]

आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार 'औचित्य' रससिद्ध काव्य की आत्मा है।[3] आचार्य आनन्दवर्धन के मत मे अनौचित्य रसभग का कारण है। प्रसिद्ध औचित्य का उपनिबन्धन रस की सबसे बडी परा विद्या है।[4] कवि जब काव्य का प्रणयन करता है, तो उसे 'रस' का अनवरत ध्यान रहना चाहिए। ऐतिहासिक घटना के वर्णन मात्र से सहृदय आकृष्ट नही होता है, कथानक सरस होना चाहिए, एतदर्थ कवि को अपने काव्य मे रसापकर्षक तत्त्वो का परिहार करना चाहिए तथा रसपोषक तत्त्वो

---

१ उचित प्राहुराचार्या सदृश किल यस्य तत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्य प्रचक्षते।। –औचित्यविचारचर्चा कारिका ७

२ (क) औचित्येन विना रुचि प्रतनुते नालकृतिर्नोगुणा ।। –वही कारिका ६ का उदाहरण
(ख) अदेशजो हि वेषस्तु न शोभा जनयिष्यति।
मेखलोरसि बन्धे च हास्यायेवोपजायते।। –नाटयशास्त्र २२/७१

३ औचित्य रससिद्धस्य स्थिर काव्यस्य जीवितम्।। –औचित्यविचारचर्चा कारिका ५

४ अनौचित्यादृते नान्यद्रसभगस्य कारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा।। –ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, पृ० १००

का सन्निवेश करना चाहिए। काव्य का परम प्रयोजन है – 'रत्यादिक भावो के आस्वादन से समुद्भूत विगलित वेद्यान्तर आनन्द की अनुभूति'। यह प्रयोजन इतिवृत्त के प्रणयन मात्र से सिद्ध नहीं हो सकता है क्योकि वह प्रयोजन तो इतिहास से भी सिद्ध हो सकता है।[1] कवि रससिद्ध्यर्थ कतिपय घटनाक्रमो का सक्षेप करता है तो कहीं विस्तार तथा अन्यत्र मौलिक कल्पना। किन्तु तथ्यो को नये रूप मे प्रस्तुत करते समय कवि को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह कल्पना रस के अनुकूल हो तथा इतिहासगत वस्तुतत्त्व से भिन्न न हो।[2] आचार्य विश्वनाथ के अनुसार जो घटनाक्रम नायक अथवा रस के प्रतिकूल हो उसे या तो छोड देना चाहिए अथवा परिवर्तित कर देना चाहिए।[3]

महावीरचरितम् की कथावस्तु का सम्बन्ध राम के विवाह से लेकर राज्याभिषेक पर्यन्त वृत्तान्त से है। महाकवि भवभूति ने रामायण मे रामचरित से सम्बद्ध यत्र–तत्र विस्तीर्ण घटनाक्रमो को परस्पर तर्कसगत रूप से सुसम्बद्ध करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। कवि ने अन्वितित्रय तथा रगमच पर नाट्यप्रस्तुति के परिप्रेक्ष्य मे मूलकथा के घटनास्थल तथा घटनाक्रम मे आमूलचूल परिवर्तन कर अपने नाटक को सर्वथा मौलिकता प्रदान की है। नाटक की प्रस्तावना से ही स्पष्ट है कि कवि का उद्देश्य वीर तथा अद्भुत रस से परिपूर्ण कथानक द्वारा सहृदयो का मनोरञ्जन करना है –

अप्राकृतेषु पात्रेषु यत्र वीर स्थितो रस ।
भेदै सूक्ष्मैरभिव्यक्तै प्रत्याधार विभज्यते।।[4]

अपि च

तेनेदमुदधृयजगत्त्रयमन्युमूलमस्तोकवीरगुरुसाहसमद्भुत च।
वीराद्भुतप्रियतया रघुनन्दनस्य धर्मद्रुहो दमयितुश्चरित निबद्धम्।।[5]

---

१ कविना काव्यमुपनिबध्नता सर्वात्मना रसपरतन्त्रेण भवितव्यम्। तत्रेतिवृत्ते यदि रसाननुगुणा स्थिति पश्येत्तदेमा भडक्त्वापि स्वतन्त्रतया रसानुगुण कथान्तरमुत्पादयेत्। नहि कवेरितिवृत्तमात्रनिर्वाहेण किञ्चित्प्रयोजनम्, इतिहासादेव तत्सिद्धे। –ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत पृ० ११४

२ सन्ति सिद्धरसप्रख्या ये च रामायणादय।
कथाश्रया न तैर्योज्या स्वेच्छा रसविरोधिनी।।
तेषुहि कथाश्रयेषु तावत्स्वेच्छैव न योज्या। यदुक्तम्– कथामार्गे न चाल्पोऽप्यतिक्रम। स्वेच्छापि यदि योज्या तद्रसविरोधिनी न योज्या। –वही तृतीय उद्योत पृ० १११

३ यत्स्यादनुचित वस्तु नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्ध तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत्।। –साहित्यदर्पण ६/५०

४ महावीरचरितम् १/३

५ वही १/६

अपि च

विजयिसहजमस्त्रैर्वीर्यमुच्छ्राययिष्यञ्जगदुपकृतिबीज मैथिलीं प्रापयिष्यन्।
दशमुखकुलघातश्लाघ्यकल्याणपात्र धनुरनुजसहाय रामदेव निनाय।।[1]

इस मन्तव्य की पुष्टि प्रकृत रूपक के शीर्षक 'महावीरचरितम्' से भी होती है। नाटक मे 'रामचरित' उपनिबद्ध है, अतएव इसका नामकरण 'रामचरितम्' किया जा सकता था अथवा अन्य कृति 'उत्तररामचरितम्' को ध्यान मे रखते हुए 'पूर्वरामचरितम्' किया जा सकता था। राम के स्थान पर महावीर' पद के प्रयोग से स्पष्ट है कि कवि को नायक राम के चरित के 'महासत्त्व सम्पन्न पक्ष का उद्घाटन ही अभीष्ट है। भवभूति ने अन्य पात्रो परशुराम, हनूमान् लक्ष्मण, वसिष्ठ वाली प्रभृति के लिये भी यथास्थान महावीर' अथवा 'वीर' पद प्रयुक्त किया है, अतएव नाटक का नामकरण सामान्य अर्थ मे हुआ है, फिर भी ये समस्त पात्र प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से राम का अधिकाधिक चारित्र्योत्कर्ष करते हैं। स्वाभाविक है कि ऐसे नाटक का अगी रस वीर होगा तथा वीर के आनुषगिक रस के रूप मे अद्भुत रस की सृष्टि होगी।[2]

महावीरचरितम् के कथानक मे उपस्थापित परिवर्तन एव तत्तद् परिवर्तनो के औचित्य का सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है –

अहल्योद्धार

मूल आख्यान मे मुनि विश्वामित्र यज्ञ सम्पन्न कर राम तथा लक्ष्मण के साथ मिथिला प्रस्थित होते हैं। मार्ग मे 'अहल्याश्रम' आने पर राम अहल्या का शाप–वृत्तान्त ज्ञात होने पर आश्रम मे प्रविष्ट होते हैं। अहल्या राम के दर्शन से शापमुक्त हो जाती हैं तथा ऋषि गौतम पत्नी अहल्या को स्वीकार कर पुन तप करने जाते हैं।

प्रकृत रूपक मे उपर्युक्त प्रसग विश्वामित्र के सिद्धाश्रम पर उपनिबद्ध है। यज्ञावसर पर राम, लक्ष्मण को महर्षि विश्वामित्र लाते हैं, यहीं निमन्त्रित किन्तु स्वय यज्ञप्रवृत्त राजा जनक द्वारा प्रेषित अनुज कुशध्वज सीता तथा उर्मिला के साथ समुपस्थित होते हैं। एतदनन्तर नेपथ्य से राम के तेज

---

१ महावीरचरितम् १/८

२ श्रृगाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रस।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानक।। –नाट्यशास्त्र ६/३९

प्रभाव से अहल्या की शापमुक्ति की सूचना दी जाती है। इस घटना से प्रभावित होकर कुशध्वज रामसीतापरिणयार्थ विचार करते हैं, सीता राम के व्यक्तित्व से प्रभावित होती हैं।

कवि ने अहल्योद्धार–प्रसग के सन्दर्भ मे स्थान–परिवर्तन किया है। मूल आख्यान मे मिथिला जाते समय रामादिक अहल्याश्रम मे प्रविष्ट होते हैं, जहाँ अहल्या का उद्धार होता है।

महावीरचरितम् मे कवि ने यह प्रसग विश्वामित्र के सिद्धाश्रम मे उपन्यस्त किया है। उपर्युक्त परिवर्तन का मूलभूत उद्देश्य है– राम एव सीता के पूर्वानुराग की पृष्ठभूमि तैयार करना। अहल्योद्धार के पूर्व ही राम सीता के वश, पिता, उत्पत्ति आदि ज्ञात होने पर उनके प्रति आकृष्ट हो जाते हैं। अहल्योद्धार के अनन्तर सीता भी राम के प्रति अनुरक्त हो जाती हैं। कुशध्वज राम एव सीता परिणयार्थ विचार करते हैं। मूल आख्यान मे राम एव सीता का पूर्वानुराग उपनिबद्ध नहीं है। वस्तुत यह महर्षि विश्वामित्र की स्व–योजना का परिणाम है। उन्होने यज्ञावसर पर राम–सीता तथा लक्ष्मण–उर्मिला प्रभृति को समुपस्थित किया है।

कवि ने नाट्यसक्षेप की दृष्टि से स्थान–परिवर्तन किया है। अद्भुत रस की सृष्टि करने के लिये अहल्योद्धार की नेपथ्य से सूचना मात्र दी गयी है।

सर्वमाय का आगमन

मूल आख्यान मे लक्ष्मण द्वारा अगविदीर्णन करने पर शूर्पणखा तिरस्कृत होकर खर, दूषण को राम के विरुद्ध प्रेरित करती है। खर,दूषण के वध के पश्चात् वह रावण को राम, लक्ष्मण के पराक्रम का सम्यक् परिज्ञान कराती है, साथ ही सीता के सौन्दर्य का वर्णन कर उसे भार्या बनाने का आग्रह करती है। इस घटना के अनन्तर ही रावण सीता–हरण की योजना बनाता है।

महावीरचरितम् मे विश्वामित्र के सिद्धाश्रम मे राक्षसराज रावण का दूत सर्वमाय रावण का सीता–परिणय विषयक प्रस्ताव लेकर समुपस्थित होता है। इसके पूर्व वह जनक के पास गया था। उक्त प्रस्ताव सुनकर सीता दु खी होती हैं, लक्ष्मण निन्दा करते हैं, किन्तु राम रावण के पराक्रम की प्रशसा कर इसे अभ्यर्थना विषयक लोकाचार बताते हैं।

भवभूति ने उपर्युक्त परिवर्तन कर राम–रावण के वर्तिष्यमाण युद्ध विषयक बीज का निक्षेप किया है। अमात्य माल्यवान् द्वारा सीता के बलपूर्वक ग्रहण से विरत किये जाने पर रावण दूत

सर्वमाय को प्रस्ताव लेकर प्रेषित करता हें। कवि ने परिणय–प्रस्ताव हेतु दूत की कल्पना की है जो उनके नाट्य–कौशल का द्योतक है। सहृदय आरम्भ से ही रामरावणयुद्ध विषयक कथानक की ओर उन्मुख हो जाते हैं।

ताटका–वध

मूल आख्यान मे विश्वामित्र राम तथा लक्ष्मण को यज्ञरक्षार्थ अयोध्या से लाते हैं। मार्ग मे ताटका–वन आने पर विश्वामित्र राम को ताटका का सम्यक् परिचय देते हुए मलद एव करुष नामक जनपद–रक्षार्थ वध करने के लिये कहते हैं तथा स्त्री–वध विषयक औचित्य बताते हैं। राम तथा लक्ष्मण ताटका से युद्ध करते हैं, अन्त मे राम ताटका का सहार करते हैं।

प्रकृत रुपक मे विश्वामित्र के सिद्धाश्रम मे रामादिक तथा दूत सर्वमाय के समक्ष भीषणाकृति ताटका समुपस्थित होती है। विश्वामित्र ब्राह्मणरक्षार्थ राम को ताटकासहारार्थ आदेश देते हैं। राम उसे स्त्री समझकर हिचकते हैं, किन्तु मुनि की आज्ञा शिरोधार्य कर ताटका का वध करते हैं।

कवि ने ताटका–वध के माध्यम से राम के महासत्त्वादिक गुणोपेत धीरोदात्त चरित को प्रस्तुत किया है। ताटकावध के समय राम की स्त्रीवधार्थ विचिकित्सा द्वारा नायक का 'शोभा' नामक गुण प्रदर्शित किया है।[1] सीता का अनुरागाकुर और परिपुष्ट होता है। राम द्वारा स्त्री कहने पर सीता सोचती हैं – '(सविस्मयानुरागम्) अन्यतोमुख एवास्य चित्तभेद'।[2] सर्वमाय को राम के धैर्य, पराक्रम आदि का परिज्ञान होता है।[3] वस्तुत यह राक्षस–सहार का सकेतक है।[4]

शिवधनुर्भंग

मूल आख्यान मे विश्वामित्र राम एव लक्ष्मण के साथ मिथिला जाते हैं। विश्वामित्र जनक की शिवधनुर्भंग–प्रतिज्ञा तथा अनेक नृपगण की उक्त कार्य विषयक असफलता सुनकर राम को धनुर्भंग का आदेश देते हैं। राम प्रत्यञ्चाकर्षण मात्र से शिवधनुष् तोड देते हैं। जनक रामसीतापरिणयार्थ विचार कर राजा दशरथ को निमन्त्रित करने हेतु मन्त्री गण को अयोध्या प्रेषित करते हैं। दशरथ के

---

१ नीचे घृणाधिके स्पर्धा शोभाया शौर्यदक्षते। –दशरूपक २/११ का पूर्वार्ध

२ [illegible]म् १/३६–३७

३ वही १/३७

४ एष तादवदोङ्कार सकलराक्षससहारनिगमाध्ययनस्य। –वही १/४०–४१

आग्रह करने पर महर्षि वसिष्ठ राम–सीता, लक्ष्मण–उर्मिला का विवाह निश्चित करते हैं तथा विश्वामित्र भरत–माण्डवी, शत्रुघ्न–श्रुतकीर्ति के परिणय का निर्णय करते हैं।

महावीरचरितम् मे विश्वामित्र से आदिष्ट हो कुशध्वज ध्यानावस्थित हो शिवधनुष् उपस्थित करते हैं, राम द्वारा धनुर्भंग किये जाने पर विश्वामित्र तथा कुशध्वज परस्पर विचार–विमर्श कर रामादिक चारो भाइयो का सीतादिक के साथ विवाह का निर्णय करते हैं। विश्वामित्र आकाशस्थ शुन शेप को दशरथादिक को मिथिला पहुँचने तथा रामादिक के विवाह सम्पन्न कराने हेतु आमन्त्रणार्थ अयोध्या प्रेषित करते हैं। सर्वमाय सीता के प्रकारान्तर से लका–गमन की बात कहता है।

यद्यपि पिता जनक द्वारा कन्या–परिणय–निर्णय का प्रसग उपनिबद्ध न करना अस्वाभाविक प्रतीत होता है, जनक की अनुपस्थिति अनुचित है। सम्भवत कवि का मूल उद्देश्य है– सहृदयो को राम–रावण–युद्ध विषयक कथानक की ओर उत्तरोत्तर प्रवृत्त करना। उपर्युक्त प्रसग के पश्चात् सीता–हरण की सम्भावना प्रबल हो जाती है। आश्रम मे ही विवाह–निश्चय द्वारा भवभूति ने सीता स्वयवर मे सम्मिलित होने वाले नृपवर्ग प्रभृति अनेक पात्रो की उपस्थिति से मुक्ति ली है, जो मञ्चनसौकर्य की दृष्टि से उचित प्रतीत होता है। ध्यानमात्र द्वारा शिवधनुष् की उपस्थिति से अद्भुत रस का परिपोष होता है, किन्तु यह अभिनय एव नाट्यप्रस्तुति की दृष्टि से अस्वाभाविक प्रतीत होता है।

एतदनन्तर राम तथा लक्ष्मण द्वारा सुबाहु एव मारीच वधार्थ अग्रसर होने का प्रसग उपनिबद्ध है, सर्वमाय समस्त घटनाक्रम से माल्यवान् को अवगत कराने हेतु प्रस्थित होता है।

उपर्युक्त समस्त घटनाये प्रथम अक मे उपनिबद्ध हैं। भवभूति ने कथानक को गतिशील बनाने के लिये इन प्रमुख घटनाक्रमो के स्थान मे परिवर्तन कर दिया है। राक्षसराज रावण के दूत सर्वमाय की सृष्टि कविकल्पनाप्रसूत है, जो वस्तुत आगामी अको मे उपनिबद्ध घटनाक्रमो के पौर्वापर्य–सम्बन्ध का सयोजक है।

राम द्वारा परशुराम का मान–मर्दन

मूल आख्यान मे परशुराम शिवधनुर्भंग–वृत्तान्त ज्ञात होने पर रामादिक के परिणयोपरान्त अयोध्या–समावर्तन के समय मार्ग मे समुपस्थित होते हैं तथा राम को वैष्णवधनुर्सन्धानार्थ प्रेरित करते

हैं। राम उक्त कृत्य सम्पन्न कर परशुराम पर बाणप्रहारार्थ उद्यत होते हैं, किन्तु परशुराम द्वारा साक्षात् विष्णुरूप राम से निवेदन करने पर राम बाण छोड देते हैं। परशुराम राम से सत्कृत हो महेन्द्रद्वीप हेतु प्रस्थित होते हैं।

प्रकृत रूपक मे रावण–अमात्य माल्यवान् शूर्पणखा के साथ परशुराम को रामविरुद्ध प्रेरित करने की योजना बनाता है। फलस्वरूप परशुराम शिवधनुर्भंग–वृत्तान्त से क्रुद्ध हो मिथिला जाकर राम का आह्वान करते हुए कन्यान्तःपुर मे प्रविष्ट होते हैं। सीता के मना करने पर भी राम परशुराम के समक्ष धैर्यपूर्वक उपस्थित होते हैं। परशुराम अभिनव परिणीत राम के व्यक्तित्व से प्रभावित होते हैं, किन्तु रामवधार्थ दृढप्रतिज्ञ हैं। जनक, शतानन्द वसिष्ठ, विश्वामित्र, दशरथ प्रभृति परशुराम का ध्यान अन्यत्र समाकृष्ट करने का अनवरत प्रयत्न करते हैं, किन्तु परशुराम से उपेक्षित एव अनादृत होकर युद्धार्थ उद्यत होते हैं। परशुराम क्षत्रियसहार विषयक घोषणा करते हैं। अन्तत राम परशुराम का मान–मर्दन कर सभी को विरत करते हैं।

भवभूति ने परशुराम को प्रतिपक्षी पात्र के रूप मे चित्रित किया है। प्रकृत रूपक मे वस्तुत परशुराम का ही 'महावीरत्व' पक्ष सम्यक् उद्घाटित हुआ है। वह वसिष्ठ प्रभृति के सदुपदेशो का पालन करने की अपेक्षा मानरक्षार्थ राम–वध हेतु दृढप्रतिज्ञ हैं। कवि ने जामदग्न्य का द्विविध चित्रण किया है। सर्वप्रथम वह धीरोद्धत पात्र के रूप मे समुपस्थित हो आत्मप्रशसा करते हैं। कवि ने राम द्वारा परशुराम को शिष्ट परिहास से युद्धार्थ उत्तेजित कर अहकारदमनार्थ मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि तैयार की है। क्रोध की चरम स्थिति विनाश एव दमन की पूर्वावस्था है। नवपरिणीता सीता द्वारा राम को परशुराम के समक्ष प्रस्तुत होने से रोकना, बलात् धनुष् पकडना, राम का स्नेहवश किकर्त्तव्यविमूढ होना दोनो के प्रगाढ दाम्पत्य–प्रेम का ससूचक है। परशुराम के तप, पराक्रम आदि की प्रशस्ति राम की परगुणग्राहिता का द्योतक है, भयाक्रान्त सीता को राम अपने वशानुकूल पराक्रम का परिज्ञान कराते हैं। परशुराम के पूर्वकृत कार्यों का सस्मरण कराते हुए उनके अस्त्र का उपहास तथा दोषान्वेषण राम के गाम्भीर्य एव धैर्य का परिचायक है। उत्कट कोप की स्थिति मे पहुँचाकर, राम तथा परशुराम के युद्धार्थ उद्यत होने पर ककणमोचन का प्रसग उपस्थित करना वीर रस की निष्पत्ति मे बाधक प्रतीत होता है, तथापि उपर्युक्त परिवर्तन द्वारा अनिष्ट का निवारण किया गया है।

एतदनन्तर तृतीय अक पर्यन्त परशुराम का दशरथ प्रभृति के साथ वार्त्तालाप वर्णित है। यद्यपि इस दीर्घ सवाद से कथानक मे गत्यवरोध उपस्थित होता है, किन्तु कवि ने अन्य पात्रो के 'वीरत्व–पक्ष के प्रकाशनार्थ ही इस प्रसग की कल्पना की है। सर्वप्रथम वसिष्ठ, विश्वामित्र, शतानन्द, दशरथ तथा जनक परशुराम को समझाने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु असफल हो परशुराम को विनष्ट करना चाहते हैं। शतानन्द शापोदक उठा लेते हैं, तो वसिष्ठ मे तेज–प्रभाव से नष्ट करने की सामर्थ्य है। दशरथ तथा जनक वृद्धावस्था मे भी धनुर्प्रयोगार्थ तत्पर होते हैं। किन्तु राम द्वारा परशुराम–दमन से सभी पाप से निवृत्त होते हैं। अहकार–दमन के अनन्तर परशुराम का 'धीरशान्त' स्वभाव चित्रित है, वह गुरुजनो से क्षमा प्रार्थना करते हैं। राम द्वारा परशुराम का मानमर्दन माल्यवान् की कूटनीतिक असफलता का द्योतक है, जिसके फलस्वरूप वह अन्य योजनाओ पर विचार करने हेतु बाध्य होता है। सहृदय पुन राम–रावण–युद्ध विषयक कथानक की ओर प्रवृत्त होते हैं।

राम–वनवास

मूल आख्यान मे कैकेयी एव मन्थरा की कुमन्त्रणा के फलस्वरूप राम का वनवास होता है, उस समय भरत एव शत्रुघ्न ननिहाल मे रहते हैं। एतदनन्तर राम का चित्रकूट मे निवास, सुमन्त्र से रामादिक का वृत्तान्त ज्ञात होने पर दशरथ का विलाप तथा कौशल्या का उपालम्भ श्रवण कर दशरथ का प्राणोत्सर्ग, भरत द्वारा कैकेयी की तीव्र भर्त्सना तथा राज्यग्रहण का प्रस्ताव अस्वीकार कर वनगमन तथा राम से समावर्तनार्थ निवेदन, चरणपादुकाहरण एव उसे अभिषिक्त कर नन्दिग्राम मे निवास आदि प्रसग उपनिबद्ध हैं।

महावीरचरितम् मे माल्यवान् शूर्पणखा से कहता है कि उसे गुप्तचरो ने सूचना दी है कि 'राजा दशरथ ने कैकेयी को दो वर देने का वचन दिया था। मन्थरा कैकेयी का सन्देश लेकर मिथिला जा रही है, अतएव तुम मन्थरा के शरीर मे प्रविष्ट होकर पत्र प्रस्तुत कर दो'। मन्थरा मे प्रविष्ट शूर्पणखा राम को 'भरत को राज्य तथा राम को चौदह वर्ष तक वनवास'–विषयक लेख अर्पित करती है। भरत तथा युधाजित् दशरथ से रामराज्याभिषेक विषयक आग्रह करते हैं। दशरथ जनक से मन्त्रणा कर अनुमति देते हैं। एतदनन्तर राम दशरथ से कैकेयी–वर को पूर्ण करने का आग्रह करते हैं। पत्र का मन्तव्य जानकर दशरथ, जनक प्रभृति विलाप करते हैं। राम भरत का लक्ष्मण अथवा शत्रुघ्न को राज्य प्रदान करने सम्बन्धी निवेदन अस्वीकार कर, आग्रह करने पर उन्हे चरणपादुका

प्रदान करते हैं तथा सीता एव लक्ष्मण सहित प्रस्थित होते हैं। युधाजित्, अयोध्यावासी एव मिथिलावासी भावविह्वल होकर राम का अनुगमन करते हैं। राम युधाजित् को उन्हे लौटाने का निवेदन कर प्रस्थान करते हैं।

भवभूति ने राम–वनवास के समग्र प्रसग को ही सर्वथा भिन्न रूप मे प्रस्तुत किया है। उन्होने इसे मिथिला मे ही उपस्थित कर जहॉ अनेक विसगतियो को जन्म दिया है, वहॉ नाट्यकौशल का भी सम्यक् परिचय दिया है। कवि ने माल्यवान् को अप्रत्यक्ष रूप से कैकेयी के दुरुपयोग से सम्बद्ध कर दिया है। वरद्वय से कैकेयी तथा मन्थरा को अनभिज्ञ रखकर कवि ने दोनो का चारित्र्योत्कर्ष किया है। एक ओर कैकेयी विमाताकृत कुकृत्यजन्य कलक दोष से बच जाती है, फलस्वरूप विमाता के प्रति लोकप्रचलित अनिष्टसकुल धारणा का निराकरण हो जाता है। दूसरी ओर मन्थरा द्वारा राज्यविषयक कर्त्तव्यपरायणता का ह्रास नहीं होता है। मिथिला मे रामराज्याभिषेक निर्णय अस्वाभाविक प्रतीत होता है। भवभूति ने नाट्यकौशल का परिचय देते हुए कुलगुरु एव पुरोहित वसिष्ठ को पहले ही हटा दिया है। कवि ने मञ्चनसौकर्य की दृष्टि से कतिपय पात्रो को एकत्र उपस्थित किया है तो यथावसर कतिपय पात्रो को हटा दिया है। राम–राज्याभिषेक–प्रस्ताव दशरथ के समक्ष भरत तथा युधाजित् रखते हैं। भरत का यह कार्य उनके भ्रातृस्नेह तथा कर्त्तव्यपरायणता का ससूचक है। भरत मिथिला मे ही राम से चरणपादुका ग्रहण करते हैं। यहॉ कवि ने राम–वनवास के अनन्तर भरत का माताओ एव ससैन्य वनगमन आदि प्रसग का उपनिबन्धन न करके अनावश्यक अवधिविस्तार तथा अनेक पात्रो की रगमच पर उपस्थिति का परिहार किया है, जो मञ्चनसौकर्य की दृष्टि से तो उचित प्रतीत होता है, किन्तु कवि कथानक को नाटकीय रूप देते समय स्वाभाविकता का निर्वाह करने मे सर्वथा असमर्थ रहे हैं। राम का वनगमन से पूर्व कौशल्या प्रभृति माताओ से न मिलना लोकाचार की दृष्टि से अनुपयुक्त है। कार्यान्विति दोष भी उपस्थित होता है – राम–वनवास की सूचना अयोध्या अतिशीघ्र कैसे पहुॅच सकती है ? साकेतवासी स्त्रियो सहित यज्ञादिक पूरी तैयारी के साथ मिथिला आकर रामादिक की विदाई करते हैं। उपर्युक्त परिवर्तनो से कवि की कलात्मक अनिपुणता परिलक्षित होती है, तथापि यह ध्यातव्य है कि कवि को वीर रसानुकूल कथानक प्रस्तुत करना ही अभिप्रेत है।

अवधिविस्तारनिवारणार्थ ही उन्होने समस्त प्रसग का कार्यस्थल मिथिला चयन किया है। भवभूति ने मिथिला से ही राम–वनगमन–प्रसग का उपनिबन्धन कर माल्यवान् के षड्यत्र–साफल्य तथा राम–रावण के सन्निकट युद्ध का मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

शबरी–समागम तथा कबन्ध–वध

मूल आख्यान मे राम तथा लक्ष्मण कबन्ध के भुजपाश मे बॅध जाते हैं तथा स्वरक्षार्थ उसकी भुजाये काट देते हैं। कबन्ध दिव्यपुरुष के रूप मे प्रकट हो अपना पूर्व वृत्तान्त बताकर उन्हे वाली द्वारा सुग्रीव का निष्कासन–वृत्तान्त ज्ञापित करता है तथा सुग्रीव–मैत्री का परामर्श देकर ऋष्यमूक एव पम्पासरोवर का मार्ग निर्दिष्ट करता है। एतदनन्तर राम तथा लक्ष्मण पम्पा सरोवर के निकट शबरी–आश्रम मे प्रविष्ट होते हैं। शबरी रामादिक का आतिथ्यसत्कार कर हव्याग्नि मे शरीरार्पण कर दिव्यलोक हेतु प्रस्थित होती है।

प्रकृत रूपक मे शबरतपस्विनी श्रमणा कबन्ध राक्षस से आक्रान्त हो रक्षार्थ पुकारती है। लक्ष्मण कबन्ध का वध कर श्रमणा के साथ राम के समक्ष उपस्थित होते हैं। श्रमणा राम को विभीषण का आत्मसमर्पण विषयक लेख अर्पित करती है तथा विभीषण का सम्प्रति सुग्रीव के साथ निवास, सुग्रीवादिक को सीता की अनुसूया नामाकित उत्तरीय वस्त्र की प्राप्ति आदि घटनाक्रमो से राम को अवगत कराती है। कबन्ध दिव्य पुरुष के रूप मे प्रकट होकर बताता है कि वह माल्यवान् से प्रेरित हो रामवधार्थ दण्डकारण्य मे विद्यमान था, कबन्ध माल्यवान्प्रेरित वाली के रामवधार्थ आने की सूचना देकर प्रस्थित होता है।

भवभूति ने कबन्ध राक्षस तथा श्रमणा के प्रसगो को परस्पर सम्बद्ध कर सर्वथा भिन्न कथानक प्रस्तुत किया है। लक्ष्मण स्त्रीरक्षार्थ कबन्ध का वध करते हैं, यहॉ लक्ष्मण के पराक्रम का सम्यक् प्रकाशन किया गया है, कवि ने शबरतपस्विनी श्रमणा को दूत रूप मे प्रस्तुत किया है, खर, दूषण प्रभृति के वध के अनन्तर ही विभीषण का राम की शरण मे आना उसके बुद्धिचातुर्य एव दूरदर्शिता को प्रदर्शित करता है। श्रमणा को सहायक के रूप मे प्रस्तुत कर कवि ने राम–सुग्रीव–मैत्री को अत्यन्त सुकर बना दिया है। कबन्ध को माल्यवान्–योजनान्तर्गत प्रतिपक्षी के रूप मे प्रस्तुत किया है, किन्तु अन्त मे वह राम की प्रत्यक्षरूप से सहायता करता है, अतएव माल्यवान् की एक अन्य योजना पर तुषारापात होता है।

राम–सुग्रीव–मैत्री तथा वाली–वध

मूल आख्यान मे राम एव लक्ष्मण को वाली का पक्षपाती समझकर भयाक्रान्त सुग्रीव को समाश्वसित कर हनूमान् राम तथा लक्ष्मण का वनागमन, सीता–हरण आदि वृत्तान्त ज्ञात होने पर रामादिक को सुग्रीव के समक्ष ले जाते हैं। राम एव सुग्रीव मित्रता करते हैं, राम सुग्रीव से वाली द्वारा भार्या एव राज्य–ग्रहण का प्रसग ज्ञात होने पर वालीवधार्थ समाश्वसित करते हैं। सुग्रीव रामसहायतार्थ प्रतिज्ञा करता है। राम सुग्रीव के समक्ष दुन्दुभिअस्थिप्रक्षेपण तथा सप्ततालवृक्षभेदन कर पराक्रम विषयक शका का निवारण करते हैं। राम से आदिष्ट हो सुग्रीव वाली का युद्धार्थ आह्वान करता है, किन्तु पराजित होकर मतग वन मे पलायन करता है। राम सुग्रीव के कण्ठ मे अभिज्ञानार्थ गजपुष्पी लता डालकर युद्धार्थ पुन प्रेषित करते हैं। युद्ध के समय सुग्रीव को असमर्थ देखकर राम बाण–सन्धान कर वाली का वध करते हैं। वाली छलपूर्वक वध करने के कारण राम की निन्दा करता है, किन्तु राम द्वारा अनुचित आचरण का उल्लेख करने पर वाली राम से क्षमा प्रार्थना कर अगदरक्षार्थ निवेदन करता है। वाली सुग्रीव को राज्यभार सौंपकर अगद को उसके अधीन कर प्राणोत्सर्ग करता है। राम उद्विग्न सुग्रीव तथा तारा को समझाते हैं, अगद राम से आदिष्ट हो वाली का दाह–सस्कार करता है।

प्रकृत रूपक मे श्रमणा के मुख से रावण एव वाली की मित्रता तथा वाली द्वारा दुन्दुभि–वध सुनकर राम मार्ग मे स्थित दुन्दुभि के अस्थिसमूह को सुदूर प्रान्त मे प्रक्षेपित करते हैं। एतदनन्तर वाली गुरुतुल्य माल्यवान् को लौटाकर राम का युद्धार्थ आह्वान करता है। वाली रावणसदृश अयोग्य व्यक्ति से मैत्री हेतु स्वय को धिक्कारता है। राम साक्षात् युद्ध करते समय वाली का वध करते हैं। सुग्रीव तथा विभीषण राम के इस कृत्य से उद्विग्न होते हैं। वाली उनकी शका का निवारण कर रावण को दोषी बताता है तथा राम एव सुग्रीव की मित्रता कराता है। वाली सुग्रीव को राजा तथा अगद को युवराज नियुक्त कर तथा वानरो को राम–सहायतार्थ आदेश देकर वीरगति को प्राप्त होता है।

यहाँ कवि ने वाली–प्रसग को सर्वथा भिन्न रूप मे प्रस्तुत किया है। वाली रावण के मित्र के रूप मे आकर राम से युद्ध करता है। राम युद्ध करते हुये प्रत्यक्ष रूप से उसका वध करते हैं। यहाँ राम द्वारा छल से वालीवधजन्य चारित्रिक दौर्बल्य का निवारण कर कवि ने रामचरित को नैतिकता

प्रदान की है तथा महासत्त्वादिक गुणो का सम्यक् प्रकाशन किया है। कवि ने वाली द्वारा अनुज भार्याग्रहण विषयक दुश्चरित्र का परिहार किया है। वाली–सुग्रीव के वैर–भाव के प्रसग का निराकरण कर कवि ने भाइयो के परस्पर प्रेम व्यवहार का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। वाली राम–सुग्रीव की मित्रता कराता है। वाली दूरदर्शी एव असाधारण वीर है। वह उचित–अनुचित विश्लेषण की असाधारण क्षमता रखता है। कवि ने राम–सुग्रीव–मैत्री तथा वाली–सुग्रीव–वैरभाव विषयक विस्तृत कथानक का उपनिबन्धन न कर नाट्यसक्षेप किया है। दुन्दुभिअस्थिप्रक्षेपण प्रसग राम के वीरत्व–वर्धनार्थ उपनिबद्ध है। वालीवध से माल्यवान् की योजना पूर्णरूपेण असफल हो जाती है, यह रावण के सन्निकट विनाश का ससूचक है।

राम–रावण–युद्ध

मूल आख्यान मे रावण–प्रेषित शुक एव सारण राम के सैन्यसग्रह विषयक समाचार देकर रावण से राम की प्रशसा करते हैं, रावण उन्हे निष्कासित कर देता है। वह सीता को राम का माया निर्मित कटा मस्तक दिखाकर उद्विग्न कर देता है। सरमा सीता को वस्तुतथ्य का परिज्ञान कराकर समाश्वसित करती है। रावण माल्यवान् का रामसन्धि विषयक परामर्श अस्वीकार कर मन्त्री वर्ग से युद्ध विषयक परामर्श करता है। सुग्रीव उत्तेजित हो रावण से मल्लयुद्ध करता है, तो राम दुःखी हो जाते हैं। मेघनाद द्वारा राम, लक्ष्मण को बाणो से आवृत करने पर वानर गण विलाप करते हैं। राक्षसियॉ सीता को युद्धदृश्य दिखाती हैं। मेघनाद द्वारा मायारचित सीता का वध दिखाने पर राम विलाप करते हैं। विभीषण राम को मेघनाद–रहस्य से अवगत कराकर लक्ष्मण को निकुम्भिला मन्दिर मे यज्ञरत मेघनाद से युद्ध करने का आदेश देते हैं। लक्ष्मण वहॉ द्वन्द्व–युद्ध कर मेघनाद का वध करते हैं। रावण पुत्र–शोक से उँद्विग्न हो सीतावधार्थ उद्यत होते हैं, सुपार्श्व उन्हे विरत करते हैं। अगस्त्य राम को आदित्य हृदय के पाठ की सम्मति देते हैं। इन्द्र राम को रथ देते हैं। सारथि मातलि से प्रेरित हो राम ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर रावण का वध करते हैं।

प्रकृत रूपक मे रावण राजकार्य से सर्वथा विमुख हो सीता के सौन्दर्यावलोकन मे तल्लीन रहता है। मन्दोदरी रावण को सेतु–निर्माण, राम–सेना के लका–आगमन की सूचना देती है, किन्तु रावण इन घटनाओ पर विश्वास नहीं करता है तथा अपने पराक्रम का वर्णन करता है। सेनापति

प्रहस्त आकर राम–आक्रमण, नगरातिक्रमण, राक्षसो की रक्षार्थ नियुक्ति आदि की रावण को सूचना देता है, तत्पश्चात् रावण कुम्भकर्ण, मेघनाद, सोदर, परिजनो सहित युद्धभूमि मे प्रविष्ट होता है। इन्द्र, सारथि मातलि तथा चित्ररथ युद्धदृश्य का अवलोकन करते हैं। इन्द्र रामसहायतार्थ रथ प्रदान करते हैं। रावण के शतघ्नी–प्रहार से आहत लक्ष्मण को हनूमान् दिव्यौषधि लाकर चैतन्य करते हैं। सुग्रीव कुम्भ का तथा राम कुम्भकर्ण का वध करते हैं। दिव्यर्षिगण से प्रेरित होकर राम एव लक्ष्मण ब्रह्मास्त्र तथा अच्युतास्त्र प्रयुक्त कर रावण एव मेघनाद का सहार करते हैं।

भवभूति ने नाट्यशास्त्रीय नियमो का निर्वाह करते हुए युद्ध–प्रसगो की मातलि, इन्द्र तथा चित्ररथ के परस्पर सवादो के माध्यम से सूचना मात्र दी है तथा अत्यन्त सँक्षिप्त रूप मे युद्ध का उपनिबन्धन किया है। रावण का राज्यकार्य से विमुख रहना उसकी अदूरदर्शिता एव विलासी प्रवृत्ति का ससूचक है। वह प्रतिनायक की दृष्टि से उचित पात्र प्रतीत नहीं होता है। रावण प्रत्यक्ष रूप से षष्ठ अक मे ही समुपस्थित होता है। इसके पूर्व वह प्रथम अक मे सीता–परिणय प्रस्ताव लेकर सर्वमाय को प्रेषित करता है। रावण को सर्वथा गौण बनाकर कवि ने राम का अप्रत्यक्ष रूप से अधिकाधिक चारित्र्योत्कर्ष किया है। माल्यवान् सूत्रधारवत् समस्त अको मे विद्यमान है। मुख्य घटनाक्रम उसकी योजनानुसार विन्यस्त हैं।

भवभूति ने त्रिजटा को भी सर्वथा भिन्न रूप मे प्रस्तुत किया है। मूल आख्यान मे वह सीता को रावण के छल से अवगत कराकर राम–विजय का प्रत्यायन कराती है। किन्तु प्रकृत रूपक मे वह माल्यवान् को हनूमान् द्वारा लका–दहन आदि वृत्तान्तो की सूचना देती है तथा सीता को राक्षसी कहती है, वह पूर्णरूपेण प्रतिपक्षी पात्र है। यह परिवर्तन वीर रस के अनुकूल है।

कवि ने मेघनादकृत् माया, लक्ष्मण द्वारा यज्ञ मे विघ्न डालकर मेघनाद–वध आदि प्रसगो का उपनिबन्धन न कर अवधिविस्तार का परिहार किया है। उन्होने मञ्चनसौकर्य की दृष्टि से रणभूमि मे ही समस्त योद्धाओ को उपस्थित कर दिया है। लक्ष्मण द्वारा युद्धभमि मे मेघनाद–वध उनके वीरता, पराक्रम, नैतिकता का प्रकाशक है। विभीषण को मेघनाद–वधार्थ षड्यन्त्र से विरत कर कवि ने चारित्र्योत्कर्ष किया है।

सीता की अग्नि–परिशुद्धि

मूल आख्यान मे राम परपुरुष के गृह मे निवास करने के कारण लोकमर्यादानिर्वाहार्थ सीता को स्वीकार नहीं करते हैं। सीता राम को उपालम्भ देकर अग्नि मे प्रविष्ट हो सतीत्त्वशुद्धि का प्रमाण देती हैं, अन्त मे राम सीता को सहर्ष स्वीकार करते हैं।

प्रकृत रूपक मे इन्द्रादिक देवगण अग्निपरिशुद्ध सीता का अभिनन्दन करते हैं। देवगण से आदिष्ट हो राम सीता को स्वीकार करते हैं।

भवभूति ने राम द्वारा सीता–चरित्र पर सन्देह करने तथा सीतोपालम्भ आदि प्रसग का परिहार कर राम एव सीता के परस्पर विश्वसनीय दाम्पत्य–जीवन का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त प्रमुख परिवर्तनो के अतिरिक्त भवभूति ने विस्तृत घटनाक्रमो की सूचना देने के लिये विष्कम्भक की योजना की है। यथा माल्यवान्–शूर्पणखा–सवाद तथा सम्पाति–जटायु–सवाद। माल्यवान् शूर्पणखा से राम एव लक्ष्मण के पराक्रम आदि का विचार कर राक्षस परिवार मे व्याप्त विग्रह आदि का विश्लेषण करता है तथा रामादिक पर छद्मदण्ड का औचित्य सिद्ध करता है। सम्पाति एव जटायु के वार्त्तालाप के माध्यम से अनेक घटनाक्रमो यथा दशरथ–मृत्यु, शूर्पणखा का अग–विदीर्णन, शरभग मुनि का शरीरार्पण आदि की सूचना दी गयी है। अधिष्ठातृ देवता लका का विलाप तथा अलका का उन्हे समाश्वसित कर राम को पुराण पुरुष बताना एव रावण को दोषी ठहराना आदि प्रसग अद्भुत रस के परिपोषक हैं। अरुंधती माल्यवान्–योजना निर्दिष्ट कर कैकेयी के कलक दोष का निराकरण करती है।

उपरिवर्णित विवेचन से स्पष्ट है कि कवि को राम का सर्वातिशायी, त्रैलोक्यव्यापी, असाधारण चरित का प्रतिपादन ही अभीष्ट है। उन्होने रगमच पर सफलतापूर्वक ना[illegible] के परिप्रेक्ष्य मे अनेक परिवर्तन किये हैं। माल्यवान् द्वारा अपनी योजनाओ का प्रकाशन तथा उचित–अनुचित, सफलता–असफलता का विश्लेषण यद्यपि कथानक का दुर्बल पक्ष है, इससे रोचकता, रहस्य आदि का ह्रास होता है। किन्तु विस्तृत कथानक को प्रस्तुत करते समय समस्त घटनाक्रम की सूचना देना अपरिहार्य है, अतएव कवि ने सवादो के माध्यम से उक्त समस्या का समाधान किया है। यह कवि

की नैसर्गिक प्रतिभा का ही चमत्कार है कि उन्होने सुसम्बद्ध कथानक का सृजन कर नाटक को जीवन्त बना दिया है। उन्हे राम तथा अन्य पात्रो के दुर्बल पक्षो को उद्‌घाटित करना सह्य नही था, अतएव भवभूति ने यथास्थान पात्रो की चारित्रिक विसगतियो का परिहार कर वीररसानुकूल नाटक का सृजन किया है। कतिपय त्रुटियो के विद्यमान होने पर भी 'महावीरचरितम् अपने नामकरण के अनुरूप एक सफल नाटक कहा जा सकता है।

■

चतुर्थ अध्याय

नाट्यशास्त्रीय विवेचन

चतुर्थ अध्याय

नाट्यशास्त्रीय विवेचन

सस्कृत साहित्य मे काव्य की दो विधाये हैं– श्रव्यकाव्य तथा दृश्यकाव्य।[1] श्रव्य काव्य एव दृश्यकाव्य मे तत्त्वत अन्तर नहीं है। दोनो मे शब्द तथा अर्थ का सहभाव, रसात्मकता गुणोत्कर्ष, अलकार प्रभृति का प्राधान्य रहता है। दोनो मे अभिनेयता तथा अनभिनेयता का अन्तर है।[2] दृश्यकाव्यो मे अभिनय की प्रधानता रहती है।[3] दृश्यकाव्य को ही नाट्य, रूप अथवा रूपक कहा जाता है।[4] 'नाट्य' शब्द धर्म अथवा आम्नाय अर्थ मे विनिर्दिष्ट है जो 'नट' शब्दपूर्वक 'ञ्य' प्रत्यय से निष्पन्न होता है,[5] अतएव इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ है– नट का धर्म अथवा कर्म। नाट्य शब्द का मुख्य अर्थ रस है जिसकी पुष्टि आचार्य भरत करते हैं।[6] रसाभाव मे आनन्द की प्रतीति सभव नहीं है, अतएव नाट्य ही रस है। नट का कर्म या नाट्य का लक्षण उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट नहीं हो पाता है, इस सन्दर्भ मे आचार्य भरत प्रभृति के मत पर प्रकाश डालना अपरिहार्य हो जाता है। आचार्य भरत के अनुसार लोकस्वभाव, जो नाना अवस्थाओ से युक्त है, अगादिक अभिनयो के माध्यम से उसकी नाट्य सज्ञा होती है।[7] नाट्य मे अनुकरणवृत्ति अन्तर्निहित है, यह तथ्य दशरूपककार की उक्ति मे द्रष्टव्य है। उनके अनुसार अवस्थाओ का अनुकरण नाट्य है।[8] दशरूपक के व्याख्याकार धनिक के मत मे नट का आगिकादिक चतुर्विध अभिनय के द्वारा अनुकार्य के साथ एकरूपता प्राप्त

---

१ दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुन काव्य द्विधा मतम्। –साहित्यदर्पण ६/१

२ तच्चाभिनेयानभिनेयार्थत्वेन द्विविधम्। –हिन्दीव्यक्तिविवेक, पृ० १४६

३ दृश्य तत्राभिनेयम्। –साहित्यदर्पण ६/१

४ अवस्थानुकृतिर्नाटय रूप दृश्यतयोच्यते।
रूपक तत्समारोपात् दशधैव रसाश्रयम्।। –दशरूपक १/७

५ छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकवह्वृचनटाञ्य। –अष्टाध्यायी ४/३/१२६

६ न हि रसादृते कश्चिदर्थ प्रवर्तते।

७ योऽय स्वभावो लोकस्य नानावस्थान्तरात्मक।
सोऽङ्गाद्याभिनयैर्युक्तो नाट्यमित्यभिधीयते।। –नाट्यशास्त्र १६/१४४

८ अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् । दशरूपक १/७ का प्रथमार्ध

कर लेना नाट्य कहलाता है।[1] अभिनयदर्पणकार आचार्य नन्दिकेश्वर का यह अभिमत है कि ऐसी कथा अभिनय के माध्यम से नाट्य की श्रेणी मे आती है, जो पौराणिक एव प्राचीन हो तथा लोकविश्रुत या सम्पूज्य हो।[2] महिमभट्ट के अनुसार अनुभाव, विभावादिक से आनन्दनिसृत कृति काव्य है, गीतादि से अनुप्राणित तथा नटो द्वारा प्रयुक्त होने पर नाट्य कहलाती है।[3]

नाट्य की अपर सज्ञा

आचार्य धनञ्जय के अनुसार दृश्य अर्थात् चाक्षुषप्रत्यक्षीभूत होने के कारण नाट्य को रूप कहते हैं, सामाजिक की दृष्टि से यह अर्थ अभिप्रेत है।[4] कवि की दृष्टि से इसकी 'रूपक' सज्ञा होती है। कवि मुख पर चन्द्र का आरोप करता है, उसी प्रकार नट मे रामादिक की अवस्था का अभेदारोप किया जाता है।[5] रूपित अथवा अभिनय द्वारा प्रदर्शित किये जाने के कारण नाटकादिक रूपक कहलाते हैं।[6] आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार नाट्य शब्द नमनार्थक 'नट्' धातु से व्युत्पन्न होता है, इसमे पात्र स्व–रूप का परित्याग कर परभाव ग्रहण करता है, अतएव उसे नाट्य या रूपक कहते हैं।[7]

नाट्य के प्रकार

दशरूपककार ने रसाश्रित नाट्य अथवा रूपक के दस प्रभेदो की परिगणना की है– नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अक तथा ईहामृग।[8] रूपक के दो प्रकार हैं– शुद्ध तथा सङ्कीर्ण। रसाश्रित तथा परस्पर भिन्न दस प्रकार के रूपक शुद्ध रूपक की श्रेणी मे आते

---

१ चतुर्विधाभिनयेन तादात्म्यापत्तिर्नाट्यम्। –दशरूपक १/७ का वृत्तिभाग

२ नाट्य तन्नाटक चैव पूज्य पूर्वकथायुतम्। –अभिनयदर्पण कारिका ५

३ अनुभावविभावाना वर्णना काव्यमुच्यते।
तेषामेव प्रयोगस्तु नाटय गीतादिरञ्जितम्।। –व्यक्तिविवेक, प्रथम विमर्श पृ० १५२

४ रूप दृश्यतयोच्यते। –दशरूपक १/७ का पूर्वार्ध

५ (क) रूपक तत्समारोपात् । –वही
(ख) तदीदृशरसाधार नाट्य रूपकमित्यपि।
नटस्यातिप्रवीणस्य कर्मत्वान्नाट्यमुच्यते।।
यथा मुखादौ पद्मादेरारोपे रूपकप्रथा।
तथैव नायकारोपो नटे रूपकमुच्यते।। –रसार्णवसुधाकर, तृतीय विलास

६ रूप्यन्ते अभिनीयन्ते इति रूपाणि नाटकादीनि। –नाट्यदर्पण पृ० १७१

७ नट् नताविति नमन स्वभावत्यागेन प्रह्वीभावलक्षणम्।–नाट्यशास्त्र भाग–३ पृ० ८०

८ (क) दशधैव रसाश्रयम्। –दशरूपक १/७
(ख) नाटक सप्रकरण भाण प्रहसन डिम।
[illegible] वीथ्यङ्केहामृगा इति।। –वही १/८

हैं। दो अथवा तीन रूपको का मिश्रण होने पर उसे सड्कीर्ण रूपक कहते हैं।[1] नाटिका भी सड्कीर्ण रूपक का ही एक भेद है।[2] आचार्य धनिक के अनुसार प्रकरणिका एव प्रकरण के समान लक्षण हैं, अतएव दोनो अभिन्न हैं।[3] आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र नाटिका एव प्रकरणिका का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार कर रूपक के द्वादश भेद मानते हैं। नाटिका नाटक के लक्षणो से सगृहीत होती है, इसका नायक प्रख्यात राजा होता है तथा स्त्रीलाभयुक्त राज्यप्राप्ति इसका फल होता है।[4] प्रकरणिका का नायक प्रकरण के समान विप्र, वणिक् प्रभृति होते हैं, इसका फल स्त्रीलाभसहित द्रव्यलाभादि रहता है।[5] साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार नाट्य वस्तु, नेता तथा रस की दृष्टि से दश रूपक तथा अट्ठारह उपरूपक मे विभक्त हो जाते हैं। नाटिका तथा प्रकरणी उपरूपक के ही भेद हैं।[6]

नाट्य का मुख्य अथवा उत्कृष्ट रूप नाटक माना जाता है।[7] नाटक को 'ख्यातवृत्त' अर्थात् रा[illegible] के राम प्रभृति प्रसिद्ध महापुरुषो के जीवनचरितोपेत कथानक से सम्बद्ध होना चाहिये। इसमे मुख प्रतिमुख प्रभृति पॉच सन्धियो की योजना की जाती है, इसमे विलास, समृद्धि आदि उदात्त गुणो, नाना भावो तथा रसो का समायोजन[8] आवश्यक है, सुख–दु ख आदि की उत्पत्ति प्रदर्शित करनी चाहिये। नाटक में कम से कम पॉच तथा अधिक से अधिक दस अक होना चाहिये।[9] इसका नायक किसी राजवश से सम्बद्ध, धीरोदात्त, प्रतापी, दिव्य अथवा दिव्यादिव्य पुरुष होता है।[10] श्रृगार अथवा वीर अगी रस होता है, अन्य रस अग रूप मे अभिव्यक्त रहते हैं। अन्त मे निर्वहण सन्धि मे आश्चर्यसकुल घटनाक्रम का उपनिबन्धन होना चाहिये। इसमे चार अथवा पॉच प्रमुख पात्रो का चरित

---

१ रसानाश्रित्य वर्तमान दशप्रकारकम् एवेत्यवधारण शुद्धाभिप्रायेण नाटिकाया सङ्कीर्णत्वेन वक्ष्यमाणत्वात्।
–दशरूपक १/७ का वृत्तिभाग

२ लक्ष्यते नाटिकाप्यत्र सड्कीर्णान्यनिवृत्तये। –वही ३/४३ का पूर्वार्ध

३ वही वृत्तिभाग

४ चतुरड्का बहुस्त्रीका नृपेशा स्त्री–महीफला। –नाट्यदर्पण २/५ का पूर्वार्ध

५ एव प्रकरणी किन्तु, नेता प्रकरणोदित ।। –वही २/८ का उत्तरार्ध

६ साहित्यदर्पण ६/३४५,६

७ अनुसेवध्वमृषयस्तस्योत्थानन्तु नाटकम्।। –नाटकलक्षणरत्नकोश कारिका ३ का उत्तरार्ध

८ विलासद्धर्यादिगुणवद्युक्त नानाविभूतिभि ।।
नानारसनिरन्तरम्। –साहित्यदर्पण ६/७–८

९ सुखदु खसमुद्भूति ।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राका परिकीर्तिता ।। –वही ६/८

१० प्रख्यातवशो राजर्षिर्धीरोदात्त प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मत ।। –वही ६/९

वर्णित होना चाहिये।[1] नाटक के अन्तर्विभाग अक मे नायक का चरित प्रत्यक्ष रहना चाहिये। इसमे नायक के कतिपय कार्यो की योजना होती है, बीज की इतिश्री नहीं होती है तथा अवान्तर कार्यों के मध्य मे बिन्दु का प्रयोग होता है।[2] इसमे दूर से आह्वान, वध, युद्ध मृत्यु, अधरपानादिक लज्जाजनक कार्य आदि अरञ्जक प्रसगो का वर्णन नहीं करना चाहिए।[3]

उपर्युक्त तत्त्वो के परिप्रेक्ष्य मे महावीरचरितम् एक सफल नाटक कहा जा सकता है। इसका इतिवृत्त वाल्मीकि–प्रणीत रामायण पर आधृत होने के कारण प्रख्यात है। नायक एव नायिकागत विलास समृद्धि आदि गुणो का सुन्दर समायोजन है। इसमे धनुर्भंग के अनन्तर राम–सीता–परिणय माल्यवान्–योजनान्तर्गत शूर्पणखा द्वारा मन्थरा के छद्मवेष मे पत्र–प्रस्तुति, फलस्वरूप रामादिक का वनगमन, रावण द्वारा सीता–हरण, राम द्वारा वानरो की सहायता से राक्षसगण तथा रावण का सहार, सीता–समागम, रामादिक का अयोध्या–प्रत्यावर्तन, राम–राज्याभिषेक आदि घटनाक्रम उपनिबद्ध हैं। इसकी कथावस्तु सात अको मे विन्यस्त है। नाटक के नायक प्रख्यात, इक्ष्वाकुवश मे समुत्पन्न महाराज दशरथ के पुत्र राम हैं जो दिव्यादिव्य पुरुष की श्रेणी मे आते हैं तथा उनकी प्रकृति धीरोदात्त है। प्रकृत नाटक मे 'वीर' अगी रस है तथा रौद्र, श्रृगार, बीभत्स, अद्भुत एव करुण रस अगरूपेण विन्यस्त हैं। निर्वहण सन्धि मे अधिष्ठातृ देवता लका तथा अलका का सवाद, रामादिक का पुष्पक विमान से अयोध्या–प्रत्यावर्तन–काल मे नक्षत्रमण्डल, सूर्य, पर्वत आदि का वर्णन, किन्नरयुगल द्वारा राम का यशकीर्तन आदि अद्भुत घटनाक्रमो का सन्निवेश किया गया है। राम का चरित सात अको मे चित्रित है। नाटक मे राम–सीता–परिणय, रावण–वध, राम–राज्याभिषेक आधिकारिक कथा है। अवान्तरकार्य से कथाप्रवाह मे अवरोधनिवारणार्थ माल्यवान्–शूर्पणखा–सवाद के अनन्तर परशुराम को उपस्थित किया गया है, कतिपय स्थलो मे 'बिन्दु' का सम्यक् प्रयोग कथानक को सुसम्बद्ध करने हेतु प्रयुक्त है। वध, युद्ध आदि अप्रदर्श्य वस्तुओ की पात्रो के परस्पर वार्त्तालाप के माध्यम से सूचना

---

१ एक एव भवेदगी श्रृगारो वीर एव वा।
अगमन्ये रसा सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुत ।।
चत्वार पञ्च वा मुख्या कार्यव्यापृतपुरुषा ।
गोपुच्छाग्रसमाग्र तु बन्धन तस्य कीर्तितम्।। –साहित्यदर्पण ६/१० ११

२ प्रत्यक्षनेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वल ।
भवेदगूढशब्दार्थ क्षुद्रचूर्णकसयुत ।।
विच्छिन्नावान्तरैकार्थ [illegible] ।
युक्तो न बहुभि कार्यैर्बीजसह्रतिमान्न च।। –वही ६/१२ १३

३ वही ६/१६–१८

दी गयी है। इस प्रकार कतिपय स्थलो को छोडकर प्रकृत रूपक मे नाट्यशास्त्रीय नियमो का सम्यक् परिपालन किया गया है। सम्प्रति वस्तुतत्त्व की दृष्टि से उसका विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है –

नान्दी

नाट्यप्रस्तुति के पूर्व विघ्ननिवारणार्थ गीत, वाद्यादिक द्वारा सामाजिको के रञ्जनार्थ सगीत का आयोजन पूर्वरग है।[1] पूर्वरग के प्रत्याहारादिक अनेकविध क्रियाकलापो से परिपूर्ण बाइस अग होते हैं, उसका एक भेद नान्दी ही मुख्य है। इसमे देव, द्विज, नृपवर्ग की स्तुति की जाती है, सामाजिको की शुभाशसा ही इसका मुख्य उद्देश्य है, अतएव इसे नान्दी कहते हैं।[2] नान्दी से काव्यार्थ की सूचना मिलती है।[3] इसमे आठ अथवा बारह पद होते हैं, सूत्रधार को मध्यम स्वर का आश्रय लेकर पढना चाहिये।[4]

महावीरचरितम् मे अष्टपदा नान्दी प्रथम पद्य मे प्रयुक्त है जिसके अन्तर्गत ब्रह्मस्तुति के माध्यम से इतिवृत्त की सूचना दी गयी है– परब्रह्म ज्ञानस्वरूप हैं, वे स्वाधार मे स्थित, उत्पत्ति आदि क्रमशून्य हैं –

> अथ स्वस्थाय देवाय नित्याय हतपाप्मने।
> त्यक्तक्रमविभागाय चैतन्यज्योतिषे नम ।।[5]

उपर्युक्त पद्य मे प्रयुक्त 'देवाय' पद से भगवान राम के पुरुषोत्तम चरित का सकेत मिलता है। सात अको मे नायक राम का चारित्र्योत्कर्ष अनेक स्थलो पर स्पष्टतया परिलक्षित होता है। समस्त पात्र राम का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गुणकीर्तन करते हैं। रावण का अमात्य माल्यवान् राम को अद्भुत प्राणी मानता है –

---

१ प्रत्याहारादिकान्यङ्गान्यस्य भूयासि यद्यपि।
तथाऽप्यवश्य कर्त्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये।। –साहित्यदर्पण ६/२३

२ आशीर्वचनसयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीना तस्मान्नान्दीति सज्ञिता।। –वही ६/२४

३ अर्थत शब्दतो वाऽपि मनाक् काव्यार्थसूचक ।। –नाट्यशास्त्र

४ सूत्रधार पठेन्नान्दी मध्यम स्वरमाश्रित ।
नान्दी पदैर्द्वादभिरष्टाभिर्वाऽप्यलङ्कृताम्।। –वही १५/१०४

५ महावीरचरितम् १/१

उत्पत्त्यैव हि राघव किमपि तद्भूत जगत्यद्भुत
मर्त्यत्वेन किमस्य यस्य चरित देवासुरैर्गीयते।।[1]

परशुराम–आगमन से भयातुर सीता को राम समाश्वसित करते हैं –

आतकश्रमसाध्वसव्यतिकरोत्कम्प कथ सह्यता–
मड्गैर्मुग्धमधूकपुष्परुचिभिर्लावण्यसारैरयम्।
उन्नद्धस्तनयुग्मकुड्मलगुरुश्वासावभुग्नस्य ते
मध्यस्य त्रिवलीतरड्गकजुषो भड्ग प्रिये मा च भूत्।।[2]

'हतपाप्मने' पद से वाली, रावण आदि का वध सूचित होता है। राम प्रत्यक्ष युद्ध करते हुए वाली का वध करते हैं। रावण अत्यन्त विलासी प्रवृत्ति का पात्र है, वह सीता के सौन्दर्यावलोकन मे ही लीन रहता है, युद्ध करते समय मायाशक्ति का प्रयोग करता है। देवगण से आदिष्ट हो राम रावण का वध करते हैं। 'चैतन्यज्योतिषे' पद से नायक का प्रख्यातत्व तथा उदात्तता द्योतित होती है। परशुराम राम की प्रशसा करते हैं–

त्रातु लोकानिव परिणत कायवानस्त्रवेद
क्षात्त्रो धर्म श्रित इव तनु ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै।
सामर्थ्यानामिव समुदय सञ्चयो वा गुणाना
प्रादुर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माण राशि ।।[3]

अलका राम को पुराणपुरुष बताती हैं–

इद हि तत्त्व परमार्थभाजामय हि साक्षात्पुरुष पुराण ।
त्रिधा विभिन्ना प्रकृति किलैषा त्रातु भुवि स्वेन सतोऽवतीर्णा।।[4]

'त्यक्तक्रमविभागाय' पद से जामदग्न्य प्रभृति का अनुवर्तनीयत्व प्रकट होता है। परशुराम अहकार–दमन के अनन्तर अत्यन्त विनम्र हो जाते हैं तथा कहते हैं– 'इदमिदानीमशक्यम्। अनतिक्रमणीयो रामनिदेश'।[5]

अतएव प्रथम पद्य से समस्त घटनाक्रम अभिव्यञ्जित होता है।

---

१ महावीरचरितम् २/६ का पूर्वार्ध
२ वही २/२१
३ वही २/४१
४ वही ७/२
५ वही ४/२३–२४

प्रस्तावना

भारतीवृत्ति सस्कृतनिष्ठ होती है, इसमे नियत पुरुष या नट–प्रयुक्त वाचिक व्यापार का प्राधान्य रहता है। इसके चार अग होते हैं– प्ररोचना, वीथी प्रहसन तथा आमुख।[1] आमुख या प्रस्तावना मे नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ अपने–अपने कार्यों के विषय मे चित्र–विचित्र वाक्यो मे वार्त्तालाप करते हैं, इससे कथा की सूचना भी मिलती है।[2] आचार्य भरत तथा विश्वनाथ के अनुसार प्रस्तावना के पॉच अग होते हैं – १ उद्घातक, २ कथोद्घातक, ३ प्रयोगातिशय, ४ प्रवर्त्तक, ५ अवगलित।[3] प्रस्तावना के किसी एक भेद का विन्यास करना चाहिए। आचार्य धनञ्जय के अनुसार आमुख या प्रस्तावना के तीन अग होते हैं– कथोद्घात, प्रवृत्तक तथा प्रयोगातिशय।[4] महावीरचरितम् मे भारतीवृत्ति का प्ररोचना नामक भेद प्रयुक्त है। दशरूपककार के अनुसार जहॉ प्रस्तुत काव्य की प्रशसा करके श्रोतागण को उसकी ओर प्रवृत्त करा दिया जाता है, उसे प्ररोचना कहते हैं।[5] सूत्रधार नान्दी पाठ के अनन्तर कहता है– भगवत कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रा समादिशन्ति–

महापुरुषसरम्भो यत्र गम्भीरभीषण ।
प्रसन्नकर्कशा यत्र विपुलार्था च भारती।।[6]

अपि च

वश्यवाच कवेर्वाक्य सा च रामाश्रया कथा।
लब्धश्च वाक्यनिष्यन्दनिष्पेषनिकषो जन ।।[7]

---

१ भारती सस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रय ।
भेदै प्ररोचनायुक्तैर्वीथीप्रहसनामुखै ।। –दशरूपक ३/५

२ नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिता सलाप यत्र कुर्वते।।
चित्रैर्वाक्यै स्वकार्योत्थै प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथ ।
आमुख तत्तु विज्ञेय नाम्ना प्रस्तावनापि सा।। –साहित्यदर्पण ६/३१–३२

३ (क) नाट्यशास्त्र २०/३३
(ख) साहित्यदर्पण ६/३३

४ प्रस्तावना वा तत्र कथोद्घात प्रवृत्तकम्।।
प्रयोगातिशयश्च । –दशरूपक ३/७–८

५ उन्मुखीकरण तत्र प्रशसात प्ररोचना। –वही ३/६ का पूर्वार्ध

६ महावीरचरितम् १/२

७ वही १/४

उपर्युक्त स्थल मे 'कालप्रियानाथस्य' पद से देश तथा 'यात्रायाम्' पद से काल निर्दिष्ट है। 'महापुरुषसरम्भ ' आदि से इतिवृत्त का सकेत मिलता है। 'वश्यवाच ' पद्य मे कवि, उपजीव्य काव्य तथा सामाजिको की प्रशसा सक्षिप्त रूप मे वर्णित है। इस प्रकार सूत्रधार का कथन सामाजिको का ध्यान काव्य के प्रति समाकृष्ट करने मे समर्थ है, अतएव प्ररोचना नामक भारतीवृत्ति का भेद सम्यक् प्रयुक्त है।

महावीरचरितम् मे प्रस्तावना नट तथा सूत्रधार के सवाद मे प्रयुक्त है। नट द्वारा जिज्ञासा प्रकट करने पर सूत्रधार बताता है कि मुनि विश्वामित्र राम एव लक्ष्मण के साथ सिद्धाश्रम आये हैं उनका उद्देश्य राम–सीता–परिणय तथा रावण–वध है–

विजयिसहजमस्त्रैर्वीर्यमुच्छ्राययिष्यञ्जगदुपकृतिबीज मैथिलीं प्रापयिष्यन्।
दशमुखकुलघातश्लाघ्यकल्याणपात्र धनुरनुजसहाय रामदेव निनाय।।[1]

एतदनन्तर सूत्रधार सीता तथा उर्मिला के साथ राजा कुशध्वज के यज्ञावसर पर आगमन की सूचना देता है।[2] इन पात्रो के प्रवेश करते ही अक आरम्भ हो जाता है, अतएव प्रस्तावना का प्रयोगातिशय नामक भेद प्रयुक्त है। आचार्य धनञ्जय के अनुसार जहाँ सूत्रधार यह वह है' इस प्रकार कहकर पात्र का प्रवेश कराता है, उसे प्रयोगातिशय कहते हैं–

एषोऽयमित्युपक्षेपात्सूत्रधारप्रयोगत ।
पात्रप्रवेशो यत्रैष प्रयोगातिशयो मत ।।[3]

अत स्पष्ट है कि प्रस्तावना का प्रयोगातिशय नामक भेद है।

आधिकारिक तथा प्रासगिक इतिवृत्त

कवि नाट्यसम्बन्धी इतिवृत्त मे वैचित्र्य का आधान करने हेतु घटनाक्रम को अनेक प्रसगो मे उपनिबद्ध करता है, तथापि समस्त कथानक मुख्य इतिवृत्त से सम्बद्ध होते हैं। इनमे प्रधान कथावस्तु को आधिकारिक तथा अग रूप वस्तु को प्रासगिक कहा जाता है।[4] आचार्य धनञ्जय ने आधिकारिक

---

१ महावीरचरितम् १/८

२ निमन्त्रितस्तेन विदेहनाथ स प्राहिणोद् भ्रातरमात्तदीक्ष ।
कुशध्वजो नाम स एष राजा सीतोर्मिलाभ्या सहितोऽभ्युपैति।। –वही १/६

३ दशरूपक ३/११

४ तत्राधिकारिक मुख्यमङ्ग प्रासगिक विदु ।। –वही १/११ का उत्तरार्ध

वस्तु की व्याख्या की है– अधिकार का अर्थ है 'फल पर स्वामित्व प्राप्त करना' तथा अधिकारी का अर्थ है 'उस फल का स्वामी'।[1] उस अधिकार अथवा अधिकारी द्वारा किया हुआ तथा नाट्य मे फलप्राप्तिपर्यन्त व्याप्त वृत्त आधिकारिक कहलाता है।[2] आचार्य भरत तथा रामचन्द्र गुणचन्द्र फलप्राप्ति को ही आधिकारिक वस्तु का प्रयोजक मानते हैं।[3] आचार्य धनञ्जय के अनुसार प्रासगिक इतिवृत्त आधिकारिक कथा के प्रयोजननिष्पादनार्थ निबद्ध होता है, किन्तु प्रसगत उसके स्व–प्रयोजन की भी सिद्धि हो जाती है। इसकी सिद्धि प्रसग से होती है, अतएव इसे प्रासगिक इतिवृत्त कहते हैं।[4] प्रासगिक शब्द की व्युत्पत्ति है– 'प्रसगत निर्वृत्त प्रासगिकम्'। प्रासगिक इतिवृत्त दो प्रकार का होता है – १ पताका तथा २ प्रकरी। इनमे दूर तक चलने वाला प्रासगिक वृत्त पताका' तथा एक प्रदेशस्थ वृत्त प्रकरी कहलाता है।[5]

प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु राम के वीरोचित कार्यों से सम्बद्ध है, अतएव राम से सम्बन्धित घटनाक्रम यथा- विश्वामित्र के सिद्धाश्रम मे गमन, अहल्योद्धार, ताटका–सहार, जृम्भकास्त्र–प्राप्ति, शिवधनुर्भंग, सुबाहु–वध, मारीच का आहत होना, परशुराम–पराभव, सीता तथा लक्ष्मण के साथ वनगमन, सीता के वियोग मे विलाप, वाली–वध, रावण–वध, राम–राज्याभिषेक आदि प्रकृत नाटक के आधिकारिक इतिवृत्त के अन्तर्गत हैं। सुग्रीव तथा विभीषण के प्रासगिक कथावस्तु को 'पताका' तथा जटायु एव श्रमणा के वृत्तान्त को 'प्रकरी' कहा जा सकता है।

अर्थप्रकृतियॉ

इतिवृत्त के मुख्य घटक 'अर्थप्रकृति' मे दो पद हैं अर्थ तथा प्रकृति। इनमे अर्थ से तात्पर्य है– फल अथवा प्रयोजन तथा प्रकृति का अर्थ है– हेतु अथवा कारण। अतएव फलसिद्धि के उपाय को अर्थप्रकृतियॉ कहते हैं– 'अर्थ फल तस्य प्रकृतय उपाया फलहेतव इत्यर्थ'।[6] अवलोककार

---

१ फलेन स्वस्वामिसम्बन्धोऽधिकार फल स्वामी चाधिकारी । –दशरूपक १/१२ अवलोक

२ अधिकार फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभु ।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्त स्यादाधिकारिकम्।। –दशरूपक १/१२

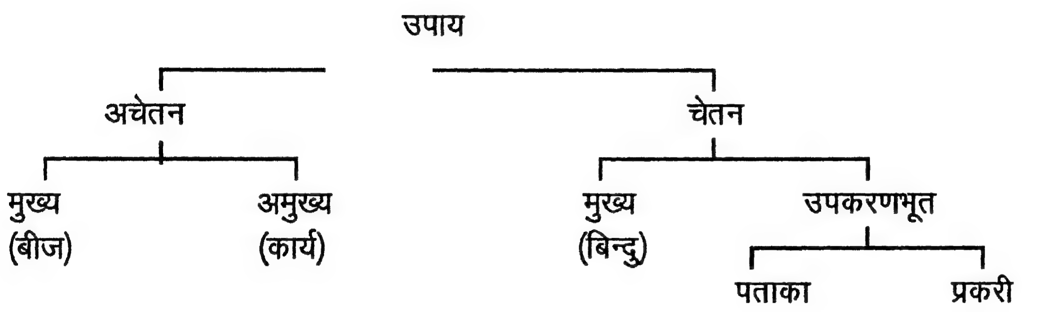
३ (क) कारणात् फलयोगस्य वृत्त स्यादाधिकारिकम् । –नाट्यशास्त्र १९/४
(ख) यद् फलवद् वृत्त तदिह मुख्यम्। – नाट्यदर्पण १/१० का वृत्तिभाग

४ प्रासगिक परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसगत । –दशरूपक १/१३ का पूर्वार्ध

५ सानुबन्ध पताकाख्य प्रकरी च प्रदेशभाक्। –वही १/१३ का उत्तरार्ध

६ नाटयशास्त्र १९/२१ अभिनवभारती

धनिक के अनुसार अर्थप्रकृतियाँ प्रयोजनसिद्धि मे हेतुभूत हैं[1] अर्थात् नाट्य के प्रयोजन अथवा फलप्राप्ति के साधन। भरतादिक[2] आचार्यों के अनुसार अर्थप्रकृतियाँ पाँच प्रकार की होती हैं– बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। नाट्यदर्पणकार इन्हे उपाय कहते हैं तथा पञ्चभेदो को फल का हेतु निर्दिष्ट करते हैं।[3] इनके मत मे उपाय के दो प्रकार हैं– १ अचेतन तथा २ चेतन।[4] अचेतन हेतु मुख्य तथा अमुख्य भेद से पुन दो प्रकार के हो जाते हैं। इनमे बीज मुख्य अचेतन हेतु है क्योकि तन्मूलक ही अन्य उपाय हैं। दूसरा अमुख्य अचेतन हेतु 'कार्य' है। चेतन हेतु के दो भेद हैं– १ मुख्य तथा २ उपकरणभूत। इसमे मुख्य 'बिन्दु है जो कार्य फलानुसन्धान का अविच्छेदक कारण है। उपकरणभूत उपाय भी दो प्रकार का होता है– स्वार्थसिद्धियुक्त होने पर भी परार्थसिद्धिभूत तथा २ परार्थसिद्धिपरक। इनमे प्रथम भेद 'पताका' तथा द्वितीय भेद 'प्रकरी' है। उपर्युक्त विभाजन निम्नलिखित सारणी से सुस्पष्ट हो जाता है –



इन पञ्चविध उपायो मे से अचेतन उपाय बीज तथा चेतन उपाय बिन्दु दोनो नाटक मे सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। पताका, प्रकरी तथा कार्य की मुख्य फलोपयोगिता की दृष्टि से अवस्थिति होती है, अतएव कहीं एक, कहीं दो अथवा कहीं तीनो अवस्थित रहते हैं।

आचार्य भरत तथा धनञ्जय द्वारा निर्धारित अर्थप्रकृतियो का क्रम इतिवृत्त की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं है। केवल 'बीज' का क्रम ही निश्चित है, इसे आमुख के अनन्तर उपनिबद्ध करना

---

१ अर्थप्रकृतय प्रयोजनसिद्धि हेतव। –दशरूपक १/१८ अवलोक

२ (क) बीज बिन्दु पताका च प्रकरी कार्यमेव च। अर्थप्रकृतय पञ्च ।। –नाट्यशास्त्र १९/२१

(ख) बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणा। अर्थप्रकृतय पञ्च ।। –दशरूपक १/१८

३ बीज पताका प्रकरी बिन्दु कार्यं यथारुचि।
फलस्य हेतव पञ्च ।। –नाट्यदर्पण १/२८

४ चेतनाचेतनात्मका ।। –वही

चाहिये।[1] बिन्दु सम्पूर्ण नाट्य मे व्याप्त रहता है, अतएव उसका क्रमनिर्धारण युक्तिसगत नहीं है। पताका तथा प्रकरी की नायक के सहायक पात्र की आवश्यकता होने पर ही योजना होती है।[2] उद्दिष्ट क्रम को स्वीकार करने पर पताका की योजना प्रकरी के पूर्व होनी चाहिये जबकि रामायण मे प्रकरी के अनन्तर पताका की योजना की गयी है। अतएव न इनका उद्दिष्ट क्रम युक्तिसगत है और न अवश्यम्भावित्व।[3]

बीज

प्रधान फल का मुख्य उपाय 'बीज कहलाता है। रूपकप्रबन्ध के आरम्भ मे यह सक्षिप्त रूप मे उपन्यस्त रहता है तथा क्रमश विस्तार को प्राप्त होता है यह फलसिद्धि का प्रथम कारण है।[4]

यह बीज के समान विकसित होता है। जिस प्रकार वृक्ष आरम्भ मे अत्यन्त सूक्ष्म बीजरूप रहता है, क्रमश अकुरित, पल्लवित तथा विकसित होकर विशाल वृक्ष का रूप धारण करता है, उसी प्रकार नाट्य मे आरम्भ मे सूक्ष्म रूप मे निक्षिप्त 'बीज' हेतु मुख्य फल पर्यन्त विकसित होकर इतिवृत्त बन जाता है।[5]

प्रकृत रूपक मे सूत्रधार नट से वार्त्तालाप करता है। सूत्रधार की उक्ति मे 'बीज' का सकेत किया गया है जहॉ वह राम को दिव्यास्त्र–प्राप्ति, राम–सीता–परिणय, रावण–वध आदि सम्पूर्ण घटनाक्रम की सूचना देता है–

> विजयिसहज रस्त्रैर्वीर्य शुल्कावधिप्रज्–
> जगदुपकृतिबीज मैथिलीं प्रापयिष्यन्।
> दशमुखकुलघातश्लाघ्यकल्याणपात्र
> धनुरनुजसहाय रामदेव निनाय।।[6]

---

१ इद च आमुखानन्तर निबध्यते। –नाटयदर्पण १/२६ की वृत्ति

२ सहायानपेक्षाणा नायकाना वृत्ते बीजबिन्दुकार्याणि त्रय एवोपाया। सहायापेक्षाणा तु पताकाप्रकरीभ्यामन्यतरया वा सह पञ्च चत्वारो वेति। –वही १/३३ वृत्तिभाग

३ नैषामौद्देशिको निबन्धक्रम सर्वेषामवश्यम्भावित्व वा। –वही १/२८ वृत्तिभाग

४ (क) स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीज विस्तार्यनेकधा। –दशरूपक १/१७ का पूर्वार्ध
(ख) अल्पमात्र समुद्दिष्ट बहुधा यद्विसर्पति।।
फलस्य प्रथमो हेतुर्बीज तदभिधीयते। –साहित्यदर्पण ६/६५–६६

५ आदौ गम्भीरत्वादल्पनिक्षिप्तो मुख्यफलावसानश्च यो हेतुर्मुख्यसाध्योपाय स धान्यबीजवद्बीजम्। प्ररोहणात् उत्तरत्र शाखोपशाखादिभिर्विस्तरणात्। –नाट्यदर्पण १/२६ वृत्तिभाग

६ महावीरचरितम् १/८

बिन्दु

अवान्तर प्रसग के द्वारा मुख्य कथावस्तु मे अवरोध हो जाने पर जो उसके सातत्य का कारण होता है, उसे बिन्दु कहते हैं।[1] जल मे तैलबिन्दुवत् यह हेतु सम्पूर्ण इतिवृत्त मे व्याप्त रहता है।[2] आचार्य भरत का यह मत युक्तिसगत प्रतीत होता है कि बिन्दु कथावस्तु मे समाप्तिपर्यन्त स्थित रहता है।[3] द्वितीय अक के आरम्भ मे माल्यवान् तथा शूर्पणखा के वार्त्तालाप से मुख्य कथा विच्छिन्न प्रतीत होती है। तदनन्तर नेपथ्य से परशुराम विदेहनगरी के कर्मचारियो से कहते हैं – भो भो विदेहनगरीगता राजकुलचारिण ! कथयन्तु भवन्त कन्यान्त पुरगताय रामाय –

कैलासोद्धारसारत्रिभुवनविजयौर्जित्यनिष्णातदोष्ण
पौलस्त्यस्यापि हेलापहृतरणमदो दुर्दम कार्तवीर्य ।
यस्य क्रोधात्कुठारप्रविघटितमहास्कन्धबन्धस्थवीयो
दो शाखादण्डषण्डस्तरुरिव विहित कुल्यकन्द पुराभूत्।।[4]

'बिन्दु' के अन्य स्थल भी विचारणीय हैं। परशुराम तथा वसिष्ठादिक के विस्तृत वार्त्तालाप से मुख्य कथा मे बाधा उपस्थित होती है। राम की उपस्थिति से कथा पुन आगे बढती है– अयमह भो कौशिकान्तेवासी राम प्रणम्य विज्ञापयामि।

पौलस्त्यविजयोद्दामकार्तवीर्यार्जुनद्विषम्।
जेतार क्षत्त्रवीर्यस्य विजयेय नमोस्तु व ।।[5]

सप्तम अक मे रामादिक पुष्पकविमान पर आरूढ हो अयोध्या प्रस्थित होते हैं। मार्ग मे अत्यन्त विस्तृत वर्णन से कथाप्रवाह बाधित होता है। नेपथ्य से रामादिक को अविलम्ब अयोध्या पहुॅचने का निर्देश दिया जाता है –

पुरीं यथा स्थितौ यात विलम्बेथा च मान्तरा।
अरुन्धतीसहचर ज्योतिर्वां सप्रतीक्षते।।[6]

---

१ अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्। –दशरूपक १/१७
२ बिन्दु जले तैलबिन्दुवत्प्रसारित्वात्। –वही अवलोक
३ यावत्समाप्तिर्बन्धस्य स बिन्दु परिकीर्तित ।। –नाटयशास्त्र १९/२२–२३
४ महावीरचरितम् २/१६
५ वही ३/४५
६ वही ७/२८

पताका

पताका प्रासगिक इतिवृत्त का एक प्रकार है, यह व्यापक तथा प्रधान फल का सहायक होता है।[1] यह आधिकारिक इतिवृत्त का दूर तक अनुवर्तन करता है।[2] आचार्य धनिक के अनुसार जिस प्रकार 'पताका' नायक का असाधारण चिह्न होता है तथा उसकी सहायता करता है, उसी प्रकार पताका वृत्तान्त आधिकारिक इतिवृत्त का उपकारक होता है।[3] पताकानायक नायक की सहायता करता है, साथ ही उसके स्व–प्रयोजन की भी सिद्धि हो जाती है।[4]

पञ्चम अक मे प्रयुक्त सुग्रीव तथा विभीषण वृत्तान्त पताका है। कवि ने वाली–सुग्रीव वृत्तान्त सर्वथा भिन्न रूप मे प्रस्तुत किया है। वाली माल्यवान् से प्रेरित हो राम से युद्ध करता हुआ प्रत्यक्ष मारा जाता है। वाली ही राम तथा सुग्रीव की मित्रता कराता है तथा सुग्रीव को राज्य प्रदान करता है। सुग्रीव की ससैन्य सहायता से राम रावण पर विजय प्राप्त करते हैं। यहॉ सुग्रीव को अनभीप्सित राज्य प्रकारान्तर से स्वत प्राप्त होता है, अतएव यह वृत्तान्त पताकावत् माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त विभीषण राम की सहायता करता है तथा रावण–वध के अनन्तर लका के सिहासन पर आरूढ होता है। अतएव सुग्रीव तथा विभीषण का वृत्तान्त पताका है।

प्रकरी

प्रासगिक इतिवृत्त का द्वितीय भेद 'प्रकरी' है, इसकी कथा एकदेशी होती है।[5] यह परार्थसिद्धिपरक उपाय है।[6] प्रकरी की व्युत्पत्ति है– 'प्रकर्षेण स्वार्थानपेक्षया करोतीति प्रकरी',[7] अर्थात् यह स्वकार्यसम्पादन की अपेक्षा नहीं रखता है। सागरनन्दी के अनुसार यह पुष्पो के ढेर के समान एक विशिष्ट स्थल पर निर्दिष्ट हो शोभावर्धन करती है।[8]

---

१ व्यापि प्रासगिक वृत्त पताकेत्यभिधीयते। –साहित्यदर्पण ६/६६–६७

२ (क) सानुबन्ध पताकाख्य । –दशरूपक १/१३
(ख) दूर यदनुवर्तते प्रासगिक सा पताका सुग्रीवादिवृत्तान्तवत्। –वही अवलोक

३ पत[illegible]वत् तदुपकारित्वात्। –वही अवलोक

४ पताकानायकस्य स्यान्न स्वकीय फलान्तरम्।।
गर्भे सन्धौ विमर्शे वा विमर्शे वा निर्वाहस्तस्य जायते। –साहित्यदर्पण ६/६७–६८

५ प्रासगिक प्रदेशस्थ चरित प्रकरी मता।। –वही ६/६८

६ फल प्रकल्प्यते यस्या परार्थायैव केवलम्।
अनुबन्धविहीना ता प्रकरीमितिनिर्दिशेत।। –नाट्यशास्त्र १९/२५

७ नाट्यदर्पण पृ० ३३

८ पु[illegible] या शोभा जनयति सा प्रकरी। –नाटकलक्षणरत्नकोश, पृ० २१

पञ्चम अक मे प्रयुक्त जटायु तथा श्रमणा का वृत्तान्त प्रकरी है। जटायु सीतापरित्राणार्थ रावण से युद्ध करता है तथा प्राणोत्सर्ग करता है। इसके अतिरिक्त शबरतपस्विनी श्रमणा का वृत्तान्त प्रकरी है। वह कबन्धराक्षस से आक्रान्त हो राम को रक्षार्थ पुकारती है। लक्ष्मण कबन्ध का वध कर उसे राम के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। वस्तुत श्रमणा दूतकार्यवश आती है। वह विभीषण का आत्मसमर्पण लेख राम को प्रदान करती है तथा राम एव लक्ष्मण को ऋष्यमूक पर्वत का मार्ग निर्दिष्ट करती है जहॉ सुग्रीव, विभीषण हनूमान् प्रभृति निवास करते हैं। वह सुग्रीव तथा विभीषण की राम द्वारा वाली–वधजन्य शका का निराकरण करती है। अतएव जटायु तथा श्रमणा का वृत्तान्त प्रकरी कहा जा सकता है।

कार्य

आचार्य धनञ्जय, विश्वनाथ प्रभृति ने 'कार्य की भ्रामक व्याख्या की है। एक ओर वे कार्य को साध्यरूप फल बताते हैं, अन्यत्र कार्य को 'प्रयोजनसिद्धि का हेतु' मानते हैं। धनञ्जय के अनुसार कार्य त्रिवर्ग अथवा धर्म, अर्थ एव काम रूप है। यह त्रिवर्ग नाट्य का साध्य है,[1] अतएव उसे अर्थप्रकृतिगत भेद नहीं माना जा सकता है। इस सम्बन्ध मे आचार्य भरत का मत सुस्पष्ट है। उनके अनुसार नाट्य धर्मादि (साध्य या फल) का साधक है[2] तथा आधिकारिक वस्तु के विषय मे जो भी समारम्भ किये जायँ, उसे कार्य कहते हैं।[3] आचार्य अभिनवगुप्त के मत मे प्रधाननायक, पताकानायक तथा प्रकरीनायक के कार्यनिष्पादनार्थ आवश्यक साधन कार्य' नामक अर्थप्रकृति के अन्तर्गत आते हैं। मुख्य उपाय 'बीज' के सहायक समस्त उपाय 'कार्य' हैं, ये समस्त अर्थ चेतनो के द्वारा साध्य की सिद्धि मे प्रवृत्त कराये जाते हैं।[4] आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र ने भी उक्त मत का समर्थन किया है।[5]

---

१ (क) कार्यं त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च।। –दशरूपक १/१६
(ख) अपेक्षित तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धन ।।
समापन तु यत्सिद्धचै तत्कार्यमिति समतम्। –साहित्यदर्पण ६/६९–७०

२ धर्म्यमर्थ्यं यशस्य च सोपदेश्य ससग्रहम्।
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम्।। –नाट्यशास्त्र १/१४

३ यदाधिकारिक वस्तु सम्यक् प्राज्ञै प्रयुज्यते।
तदर्थो य समारम्भस्तत्कार्यं परिकीर्तितम्।। –वही १९/२६

४ प्राज्ञै प्रधाननायकपताकानायकप्रकरीनायकैश्चेतनरूपै यद्वस्तु फलरूप प्रयुज्यते सम्पाद्यते सम्पाद्यमानत्वेन अनुसन्धीयते तत्फलप्रयोजनो य सम्पूर्णतादायी पूर्वपरिगृहीतस्य प्रधानस्य बीजाख्योपायस्य फलम् आरभत इत्यारम्भशब्दवाच्यो द्रव्यक्रियागुणप्रभृति सर्वोऽर्थ (यस्य) सहकारी (तत्) कार्यमित्युच्यते चेतनै कार्यते फलमिति व्युत्पत्त्या। –नाटयशास्त्र १९/२६ अभिनवभारती

५ नाट्यदर्पण १/३३ वृत्तिभाग

है। प्रत्येक नायक फलप्राप्त्यर्थ व्यापाररत रहता है। इन अवस्थाओ का क्रम निश्चित रहता है तथा इनका नाटक मे उपन्यस्त होना भी अपरिहार्य है।[1]

अवस्थाओ तथा अर्थप्रकृतियो मे मूलभूत अन्तर यह है कि अर्थप्रकृतियॉ इतिवृत्त के फल से सम्बद्ध होती हैं, इसके विपरीत कार्यावस्थाऍ नायक के व्यापार से सम्बन्धित हैं। आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार नायक–व्यापार, प्रतिनायक–व्यापार अथवा सहायक–व्यापार द्वारा इन अवस्थाओ का प्रदर्शन हो सकता है तथा दैव–व्यापार के द्वारा भी हो सकता है। किसी भी प्रकार के व्यापार से अवस्थाओ का प्रदर्शन हो, फलप्राप्ति नायक से ही सम्बद्ध है।[2]

आरम्भ

प्रभूत फलप्राप्त्यर्थ जो औत्सुक्य मात्र है, उसे आरम्भ कहते हैं।[3] आचार्य धनिक के अनुसार 'इस कार्य को मैं करूँगा' इस प्रकार का निश्चय आरम्भ है।[4]

रूपक मे –

> रक्षोघ्नानि च मगलानि सुदिने कल्प्यानि दारक्रिया
> वैदेह्याश्च रघूद्वहस्य च कुले दीक्षाप्रवेशश्च न ।
> आस्थेयानि च तानि तानि जगता क्षेमाय रामात्मनो
> दैत्यारेश्चरितादभुतान्यथ खलु व्यग्रा प्रमोदामहे।।[5]

इत्यादि कथन के द्वारा ऋषि विश्वामित्र के मुख से 'आरम्भ' नामक अवस्था दिखायी गयी है। यहॉ यह शका होती है कि जब अवस्थाओ का सम्बन्ध नायक से है तो 'आरम्भ' नामक अवस्था का उपन्यास विश्वामित्र के मुख से कैसे कराया गया है ? इस शका का समाधान अभिनव गुप्त के शब्दो मे अनुसन्धेय है– 'प्रारम्भ नायकस्यामात्यस्य नायिकाया प्रतिनायकस्य दैवस्य वा'।[6]

---

१ आनुपूर्व्येति उद्देशक्रमेणैव । चकारैस्तथाशब्देन चावश्यम्भाविक्रमत्वमासामुच्यते । पञ्चम इत्यनेन क्रमो विवक्षित । –नाट्यशास्त्र १९/७–८ अभिनवभारती

२ नेतुर्मुख्यफल प्रति बीजाद्युपायान् प्रयोक्तुरवस्था । –नाट्यदर्पण पृ० १८७

३ औत्सुक्यमात्रमारम्भ फललाभाय भूयसे। –दशरूपक १/२०

४ इदमह सम्पादयामीत्यध्यवसायमात्रमारम्भ इत्युच्यते। –वही अवलोक

५ महावीरचरितम् १/१३

६ नाट्यशास्त्र १९/६ अभिनवभारती

प्रयत्न

फल के प्राप्त न होने पर सत्वर उद्योग करना ही प्रयत्न' नामक अवस्था है।[1] उपर्युक्त कारिका से प्रयत्न का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता है। इस सम्बन्ध मे आचार्य भरत का मत स्पष्ट है कि यत्नसज्ञक अवस्था तभी तक है, जब तक फलप्राप्ति की आशा दृष्टिगत न हो।[2]

दूत सर्वमाय से आश्रम–वृत्तान्त एव शूर्पणखा से विवाहादिक मगल कार्य ज्ञात होने पर माल्यवान् उद्विग्न हो जाता है। उसी समय माल्यवान् के पास परशुराम का पत्र आता है जिसमे विराधदनुकबन्ध को तपस्वीजन को पीडित करने तथा उन्हे एतद्कार्य से विरत करने का उल्लेख रहता है। विपरीत स्थिति मे परशुराम के क्रुद्ध होने का निर्देश रहता है। तत्पश्चात् माल्यवान् शूर्पणखा के समक्ष रामवधार्थ परशुराम को प्रेरित करने की योजना बनाता है तथा महेन्द्रद्वीप की ओर प्रस्थान करता है।[3] परशुराम–प्रसग भी प्रकारान्तर से राम–रावण–सघर्ष का ससूचक है, अत माल्यवान् का वेगपूर्वक गमन प्रयत्न नामक अवस्था है।

प्राप्त्याशा

उपाय की स्थिति होने पर भी विघ्न की शका से जहॉ फलप्राप्ति की सम्भावना मात्र होती है, उसे प्राप्त्याशा कहते हैं।[4] आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार इसमे यत्किञ्चित् फल–लाभ की सम्भावना होती है।[5]

चतुर्थ अक मे राम द्वारा परशुराम–विजय के अनन्तर राम–राज्याभिषेक का प्रस्ताव भरत एव युधाजित् दशरथ के समक्ष रखते हैं। इसी समय मन्थरा मे प्रविष्ट शूर्पणखा राम को छलपत्र प्रस्तुत करती है, राम का वनवास होता है। एतदनन्तर राम–रावण–युद्ध की सम्भावना बनी रहती है, अतएव 'प्राप्त्याशा' नामक अवस्था है।

---

१ (क) प्रयत्नस्तु फलावाप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वित। –साहित्यदर्पण ६/७२
(ख) प्रयत्नस्तुतदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वित। –दशरूपक १/२०
(ग) प्रयत्नो व्यापृतौ त्वरा। –नाटयदर्पण १/३५

२ अपश्यत फलप्राप्ति व्यापारो य फलप्राप्त।
पर चौत्सुक्यगमन स प्रयत्न परिकीर्तित।। –नाट्यशास्त्र १९/१०

३ महावीरचरितम् २/१४–१५

४ उपायापायशकाभ्या प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भव। –दशरूपक १/२१

५ फलसम्भावना किञ्चित्, प्रत्याशा हेतुमागत।। –नाट्यदर्पण १/३५

नियताप्ति

अपायाभाव अर्थात् विघ्नो का पूर्ण अभाव होने पर फलप्राप्ति निश्चित हो जाती है इसे ही नियताप्ति कहते हैं।[1] इसमे प्रधानफल निर्णीत रहता है।[2]

पञ्चम अक मे सीता–हरण, कबन्ध–वध, वाली–वध तथा षष्ठ अक मे सेतु–निर्माण के अनन्तर रामादिक का ससैन्य लका का अतिक्रमण उपन्यस्त है। तत्पश्चात् वानर एव राक्षस सेना का युद्ध आरम्भ होता है, कुम्भकर्ण प्रभृति प्रमुख राक्षस मारे जाते हैं। एतदनन्तर रावण एव मेघनाद प्रभृति ही अवशिष्ट रहते हैं जिनका सहार अवश्यम्भावी हो जाता है, अत नियताप्ति नामक अवस्था है।

फलागम

समग्र रूप से फलप्राप्ति को ही फलयोग अथवा फलागम कहते हैं।[3] दिव्यर्षिगण से प्रेरित होकर राम एव लक्ष्मण ब्रह्मास्त्र तथा अच्युतास्त्र का स्मरण कर रावण एव मेघनाद का वध करते हैं। एतदनन्तर राम अग्निपरिशुद्ध सीता तथा लक्ष्मणादिक के साथ अयोध्या जाते हैं जहाँ [illegible] के अनन्तर वसिष्ठ, विश्वामित्र प्रभृति राम का राज्याभिषेक करते हैं, ये समस्त कार्य फलागम के द्योतक हैं।

सन्धि

आचार्य धनञ्जय के अनुसार पॉच अर्थप्रकृतियो– बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य का अवस्थापञ्चक आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम के साथ क्रमश सयोग होने पर मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श तथा निर्वहण अथवा उपसहृति नामक सन्धियो का निर्माण होता है।[4] उपर्युक्त परिभाषा से 'सन्धि' का लक्षण स्पष्ट नहीं हो पाता है। आचार्य धनञ्जय के अनुसार मुख्य प्रयोजन से अन्वित कथाशो का किसी एक अवान्तर प्रयोजन से सम्बन्ध 'सन्धि' है[5] अर्थात्

---

१ अपायाभावत प्राप्तिर्नियताप्तिस्तु निश्चिता। –साहित्यदर्पण ६/७३

२ नियताप्तिरूपायाना साकल्यात् कार्यनिर्णय। –नाटयदर्पण १/३६ का पूर्वार्ध

३ समग्रफलसम्पत्ति फलयोगो यथोदित। –दशरूपक १/२१

४ अर्थप्रकृतय पञ्च पञ्चावस्थासमन्विता।।
यथासख्येन जायन्ते मुखाद्या पञ्चसन्धय। –वही १/२२–२३

५ अन्तरैकार्थसम्बन्ध सन्धिरेकान्वये सति। –वही १/२३

रूपक–प्रबन्ध मे कई कथाश होते हैं जो भिन्न–भिन्न प्रयोजन रखते हैं, किन्तु कथावस्तु के मुख्य प्रयोजन के साथ ही साथ किसी अवान्तर प्रयोजन से भी सम्बद्ध होते हैं। वृत्तिकार धनिक के अनुसार कथाशो का सम्बन्ध सन्धि है।[1] किन्तु धनिक की यह व्याख्या भ्रामक प्रतीत होती है। आचार्य भरत ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि इतिवृत्त के विभाग अर्थात् कथाश स्वय सन्धि हैं इसके पॉच विभाग हैं।[2] आचार्य अभिनव गुप्त ने 'सन्धि' पद की सम्यक् व्याख्या की है– इतिवृत्त का अशविशेष स्वय सन्धि है जो परस्पर अगो के साथ सन्धीयमान होने के कारण 'सन्धि' कहा जाता है।[3] विशेष वैचित्र्य की कल्पना से युक्त कथानक का अश 'सन्धि' कहलाता है।[4] आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार सन्धियॉ अवस्थाओ का अनुमगन करती हैं।[5] रामचन्द्र गुणचन्द्र ने भी इसी मत की पुष्टि की है। उनके अनुसार स्वतन्त्र महावाक्य के भाग परस्पर अपने रूप से तथा अगो के साथ मिलते हैं, अतएव सन्धि कहलाते हैं– 'मुख्यस्य स्वतन्त्रस्य महावाक्यार्थस्याशा भागा परस्पर स्वरूपेण चागै सन्धीयन्त इति सन्धय'।[6] आचार्य विश्वनाथ भी सन्धियो को अवस्थाओ से सम्बन्धित मानते हैं।[7]

धनञ्जय का अर्थप्रकृति तथा अवस्था से समन्वित सन्धि विषयक सिद्धान्त ग्राह्य नहीं है। यह सिद्धान्त अगीकार करने पर अर्थप्रकृतियो का नाटक मे क्रमश प्रयोग होना चाहिये, जबकि वस्तुस्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। गर्भसन्धि के घटक पताका तथा अवमर्श सन्धि के घटक प्रकरी का रामायण मे क्रम निश्चित नहीं है। आचार्य धनञ्जय ने 'पताका स्यान्नवा' कहकर पताकाभाव मे भी केवल प्राप्त्याशा नामक अवस्था के वर्तमान होने पर 'गर्भसन्धि' की स्थिति स्वीकार की है, किन्तु इससे धनञ्जय के मत का स्वयमेव खण्डन हो जाता है। सहायनिरपेक्ष नायक के चरित मे पताकावृत्तान्त की आवश्यकता नहीं होती है।[8]

---

१ एकेन प्रयोजनेनान्वितानां कथाशानामवान्तरैकप्रयोजनसम्बन्ध सन्धि । –दशरूपक १/२३ वृत्तिभाग

२ इतिवृत्त तु नाट्यस्य शरीर परिकीर्तितम्।
पञ्चभि सन्धिभिस्तस्य विभागा [illegible] ।। –नाट्यशास्त्र १६/१

३ तेनार्थावयवा सन्धीयमाना परस्परमगैश्च सन्धय इति समाख्या निरुक्ता तदेषा सामान्यलक्षणम्।
–नाटयशास्त्र १६/३७ अभिनवभारती

४ प्रकारवैचित्र्यकल्पनामया एव सन्धय ।। –वही १६/१

५ सन्धयो ह्यवस्थापरतन्त्रा । –वही १६/३६ अभिनवभारती

६ नाट्यदर्पण प्रथम विवेक पृ० १६०

७ यथासख्यमवस्थाभिराभिर्योगात्तु पञ्चभि ।
पञ्चधैवेतिवृत्तस्य भागा स्यु पञ्चसन्धय ।। –साहित्यदर्पण ६/७४

८ सहायानपेक्षाणा नायकाना वृत्ते बीज–बिन्दु–कार्याणि त्रय एवोपाया । –नाट्यदर्पण, पृ० १८६

अतएव नाट्यदर्पणकार के अनुसार अर्थप्रकृतियो का न तो उद्दिष्ट क्रम होता है और न अनिवार्यता।[1] अन्यत्र ये सन्धियॉ पताका मे भी प्रयुक्त होती हैं, जिन्हे 'अनुसन्धि' कहा जाता है, वह सूचना, अनुमान आदि से निर्दिष्ट की जाती है।[2] अतएव सुस्पष्ट है कि सन्धियॉ अवस्थाओ का अनुवर्तन करती हैं।

मुखसन्धि

आरम्भ, बीजोत्पत्ति से युक्त तथा रस का आश्रयभूत प्रधानकथा का अश 'मुखसन्धि' है।[3] आचार्य भरत के अनुसार वह कथाश मुखसन्धि है जिसके अन्तर्गत बीजोत्पत्ति होती है।[4] आचार्य धनिक के अनुसार जहॉ प्रहसनादिक मे त्रिवर्गरूप प्रयोजन का अभाव रहता है वहॉ बीज रसोत्पत्ति का कारण है, अन्यत्र बीज प्रयोजन अथवा फल तथा रस दोनो की उत्पत्ति का कारण है।[5] आचार्य भरत के अनुसार मुख शरीर से अनुगत रहता है, अतएव उसकी मुख 'सज्ञा' है।[6] अभिनव गुप्त आरम्भ मे होने के कारण इसे 'मुख' मानते हैं।[7]

प्रथम अक मे सीता तथा उर्मिला क्रमश राम एव लक्ष्मण के सौम्य व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कहती हैं— 'सौम्य दर्शनौ खल्वेतौ'[8] — यहॉ श्रृगार रस की कुछ झलक दिखाई देती है। भीषणाकृति ताटका के रूप—वर्णन मे बीभत्स रस, ताटकावध मे वीररस की सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है। मुनि विश्वामित्र रावणदूत सर्वमाय के समक्ष ही राम तथा लक्ष्मण को जृम्भकास्त्र प्रदान करते हैं तथा शिवधनुर्भंग के अनन्तर राम—सीता—परिणय हेतु निश्चय करते हैं। सुबाहु, मारीच प्रभृति के राम द्वारा पराभूत होने से सर्वमाय उद्विग्न हो जाता है। अतएव प्रथम अक मे नाना अर्थों, रस से परिपूर्ण राम—रावण—सघर्ष रूपी बीज उपन्यस्त है, अतएव नाटक का यह भाग मुखसन्धि है।

---

१ नैषामौद्देशिको निबन्धक्रम सर्वेषामवश्यम्भावित्व वा। —नाटयदर्पण पृ० १८२

२ पताकाया प्रधानत्वेऽनुसन्धि सूचनाऽऽदिभि ।। —वही १/३३ का उत्तरार्ध

३ यत्र बीजसमुत्पत्तिनानार्थरससम्भवा।।
प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुख परिकीर्त्तितम्। —साहित्यदर्पण ६/७६—७७

४ यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा। तन्मुख परिकीर्त्तितम्।। —नाट्यशास्त्र १६/३६

५ बीजानामुत्पत्तिअनेकप्रकारप्रयोजनस्य रसस्य च हेतुर्मुखसन्धिरिति व्याख्येय तेनात्रिवर्गफले प्रहसनादौ रसोत्पत्ति—हेतोरेव बीजत्वमिति। —दशरूपक १/२४—२५ अवलोक

६ काव्ये शरीरानुगतातन्मुख परिकीर्त्तितम्। —नाटयशास्त्र १६/३६

७ प्रागारम्भभावित्वात् मुखमिव मुखम्। —नाट्यशास्त्र १६/३६ अभिनवभारती

८ महावीरचरितम् १/१८—१६

प्रतिमुख सन्धि

प्रतिमुख सन्धि मे, मुखसन्धि मे सूक्ष्म रूप से दृष्टिगत बीज का सम्यक् उद्घाटन होता है।[1] इसमे बीज का कुछ लक्ष्य तथा कुछ अलक्ष्य रूप मे उद्भेद रहता है।[2] मुखसन्धि मे उपनिबद्ध राम–रावण–सघर्ष रूपी बीज द्वितीय अक मे किञ्चिद् लक्ष्य होता है– जहॉ रामवधार्थ आगत परशुराम तथा राम का वीरजनोचित सवाद उपन्यस्त है। किन्तु राम के ककणमोचनार्थ कन्यान्त पुर–गमन से अलक्ष्य हो जाता है। पुन राम की परशुरामविजय विषयक घोषणा से बीज लक्ष्य हो जाता है, अतएव प्रतिमुख सन्धि है।

गर्भसन्धि

दिखलाई देकर नष्ट हुए बीज का अनेकश अन्वेषण गर्भसन्धि है।[3] नाट्यदर्पणकार के अनुसार जहॉ प्राप्ति तथा अप्राप्ति के बीच आशा–निराशा व्याप्त रहती है, तदनुसन्धान द्वारा बीज की फलोन्मुखता से युक्त कथाभाग गर्भसन्धि है।[4] आचार्य भरत के अनुसार गर्भसन्धि मे बीज उद्भिन्न होता है, उसकी प्राप्ति तथा पुन अप्राप्ति होती है, पुन अन्वेषण होता है।[5] परशुराम जनक का आतिथ्य ग्रहण कर वनगमनार्थ उद्यत होते हैं। राम विलाप करते हैं तथा विचार करते हैं कि 'मैं किसी अन्य उपाय से दण्डकारण्य जा पाता' – (सवाष्पम्) गतो भगवान् भार्गव। (विचिन्त्य) अपि नामान्येन केनचिदुपायेन दण्डकारण्य प्रतिष्ठेय। कथ च रामप्रियाद्गुरुजनादेव स्यात्।

'न्यस्तशस्त्रे भृगुपतौ परतन्त्रे तथा मयि'।[6]

एतदनन्तर शूर्पणखा द्वारा प्रस्तुत छलपत्र के कारण राम वनगमनार्थ विचार करते हैं, दशरथ एव जनक मूर्च्छित हो जाते हैं तथा युधाजित् रामादिक को रोकने का प्रयत्न करते हैं, आग्रह करने पर राम भरत को स्वर्ण उपानह प्रदान कर युधाजित् से वनगमनार्थ अनुमति लेते हैं।[7]

---

१ प्रतिमुख कियल्लक्ष्यबीजोद्घाटसमन्वित ।–नाट्यदर्पण १/३८

२ लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुख भवेत्। –दशरूपक १/३०

३ गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषण मुहु। –वही १/३६

४ बीजस्यौन्मुख्यवान् गर्भो लाभालाभगवेषणै। –नाट्यदर्पण १/३६

५ उद्भेदस्तस्य बीजस्य प्राप्तिरप्राप्तिरेव वा।
पुनश्चान्वेषण यत्र स गर्भ इति सज्ञित ।। –नाटयशास्त्र १६/४१

६ महावीरचरितम् ४/३६ का उत्तरार्ध

७ वही ४/४०–५७

विमर्श

विमर्श सन्धि मे क्रोध, व्यसन अथवा विलोभन से फलप्राप्त्यर्थ विमर्श किया जाता है इसमे गर्भसन्धि मे निर्भिन्न बीज समाविष्ट रहता है।[1] नाट्यदर्पणकार ने विमर्श का व्युत्पत्तिपरक विश्लेषण 'विमृशति' पद से किया है। उनके अनुसार प्रबल विघ्नो की उपस्थिति से नायक समीपस्थ फल के प्रति सदेहयुक्त हो जाता है।[2] सीता–हरण एव जटायु–वध से उद्विग्न होकर राम राक्षस–सहार का पुन कथन करते हैं–

प्रागेव राक्षसवधाय मति कृता मे
वध्या हि ते बहुभिरेव यतो निमित्तै ।[3]

श्रमणारक्षार्थ लक्ष्मण कबन्ध का वध करते हैं।[4] श्रमणा से विभीषण का आत्मसमर्पण लेख प्राप्त होता है। माल्यवान्–प्रेरित वाली राम का युद्धार्थ आह्वान करता है। वाली–वध के पश्चात् राम, सुग्रीवादिक लका पहुँचते हैं। राम के अस्त्र–प्रहार से आहत होकर समुद्र मार्ग प्रदान करता है, फलस्वरूप वानर सेतु का निर्माण करते हैं। युद्ध आरम्भ हो जाता है। रावण के शतघ्नी–प्रहार से लक्ष्मण के आहत होने पर राम उद्विग्न हो जाते हैं। राम को उद्देश्य कर कुम्भकर्ण आता है, राम उसका वध कर लक्ष्मण के निकट आते हैं, फलस्वरूप युद्ध कतिपय क्षणो के लिये रुक जाता है। यहॉ रावण–वध रूप प्रधान लक्ष्य स्पष्ट नहीं होता है, अतएव यहॉ विमर्श सन्धि है।

निर्वहण

नाटक के आरम्भ मे बीजरूप मे उपक्षिप्त, मुखादि सन्धि मे यत्र–तत्र विस्तीर्ण कथाशो का प्रधान प्रयोजन के साथ सम्बन्ध होना निर्वहणसन्धि का विषय है।[5] राम एव लक्ष्मण क्रमश रावण तथा मेघनाद का वध करते हैं, विभीषण–राज्याभिषेक के अनन्तर राम सीता तथा लक्ष्मण एव हनूमान् प्रभृति के साथ पुष्पक विमान पर आरूढ हो अयोध्या प्रस्थित होते हैं। वहॉ भरत तथा गुरुजनो से

---

१ क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थ सोऽवमर्श इति स्मृत ।। –दशरूपक १/४३

२ विमृशति बलादन्तरायहेतुसम्पात प्रत्यासन्नमपि साध्य प्रति सन्देग्धि नेताऽस्मिन्निति–विमर्श ।
–नाटयदर्पण १/३६ वृत्तिभाग पृ० ४१

३ महावीरचरितम् ५/२५ का पूर्वार्ध

४ वही ५/२७–२८

५ बीजवन्तो मुखाद्यार्था विप्रकीर्णा यथायथम्।।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहण हि तत्। –दशरूपक १/४८–४६

प्रियसमागम के अनन्तर राम का राज्याभिषेक होता है, सकल कार्य सम्पन्न होने पर विश्वामित्र राम को राज्यभारसम्भारण विषयक सदुपदेश देते हैं,[१] अतएव निर्वहणसन्धि प्रयुक्त है।

सन्ध्यग

रस एव भाव की वर्णना मे निपुण कवि[२] सन्ध्यगो की आवश्यकतानुसार योजना करता है।[३] इन सन्ध्यगो के प्रयोग से भावो की सम्यक् व्यञ्जना होती है। आचार्य भरत के अनुसार सन्ध्यगो से रहित काव्य हीन कोटि का होता है, यथा— अगविहीन मनुष्य व्यापार के लिये अनुपयुक्त होता है। सन्ध्यगो से रहित उदात्त काव्य सामाजिको को चित्ताकर्षक प्रतीत नहीं होता है, इसके विपरीत सन्ध्यगो से युक्त अवरकोटि का काव्य सौन्दर्यवर्धन करता है। अतएव मुख्यार्थ रस को उद्दिष्ट कर अगो का सम्यक् विनियोग अपरिहार्य है।[४]

मुखादि पञ्चसन्धियो के ६४ अग होते हैं, किन्तु प्रत्येक सन्धि मे इनकी सख्या भिन्न–भिन्न है। मुखसन्धि मे १२, प्रतिमुखसन्धि मे १३, गर्भसन्धि मे १२, विमर्शसन्धि मे १३ तथा निर्वहणसन्धि मे १४ अग होते हैं। डा० कीथ पञ्चसन्धियो का ६४ अगो मे उपविभाजन अत्यन्त जटिल तथा निरर्थक मानते हैं।[५]

रस तथा भाव के परिपोष–हेतु एक सन्धि के अन्तर्गत प्रतिपादित अग दूसरे सन्धि मे भी प्रयुक्त हो सकते हैं। एक ही सन्धि के भीतर भी एक सन्ध्यग का दो अथवा तीन बार प्रयोग किया जा सकता है। यहॉ शका होती है कि अगविशेष को सन्धिविशेष से क्यो सम्बद्ध किया गया है ?

---

१ महावीरचरितम् ७/४१

२ ननु कीदृश तत्प्रबन्ध–निर्मा[illegible]ह रसभावमपेक्ष्येति तदपेक्षा च कौशलम् इत्यर्थ। –अभिनवभारती

३ यथासन्धि तु कर्त्तव्यान्येतान्यगानि नाटके।।
कविभि काव्यकुशलै रसभावमपेक्ष्य तु।
सम्मिश्राणि कदाचित्तु द्वित्रियोगेन वा पुन।। –नाट्यशास्त्र १९/१०४–५

४ अगहीनो नरो यद्वद् नैवारम्भक्षमो भवेत्।
अगहीन तथा काव्य न प्रयोगक्षम भवेत्।। –वही १९/५३
उदात्तमपि यत्काव्य स्यादङ्गै परिवर्जितम्।
हीनत्वाद्धि प्रयोगास्य न सता रजयेन्मन।। –वही १९/५४
काव्य यदपि हीनार्थं सम्यगड्गै समन्वितम्।
दीप्तत्वात्तु प्रयोगस्य शोभामेति न सशय।। –वही १९/५५
तस्मात् सधिप्रदेशेषु यथायोग यथारसम्।
कविनाड्गानि कार्याणि सम्यक्तानि निबोधत।। –वही १९/५६

५ Keith 'The Sanskrit Drama', P 299

आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार इसका मूलभूत उद्देश्य यह है कि वह सन्ध्यग उस सन्धिविशेष मे अवश्यम्भावी है। यथा—उपक्षेप नामक सन्ध्यग का मुखसन्धि मे ही प्रयोग अपरिहार्य है क्योकि इतिवृत्त का उपक्षेप करने के अनन्तर ही उसका विस्तार हो सकता है।[1] आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र तथा विश्वनाथ के अनुसार मुखसन्धि के अग उपक्षेप, परिकर तथा परिन्यास का उद्दिष्ट क्रम मे ही प्रयोग किया जाना चाहिये।[2]

आचार्य धनञ्जय के अनुसार इन सन्ध्यगो के छ प्रकार के प्रयोजन[3] होते हैं —

(१) इसमे अभीष्ट प्रतिपाद्य अर्थ समाविष्ट रहता है।

(२) रगमच पर अप्रदर्श्य अश, यदि गोपनीय हो तो उसे छिपा लिया जाता है।

(३) प्रस्तुत करने योग्य कथाशो का प्रकाशन किया जाता है।

(४) इतिवृत्त की सुव्यवस्थित सघटना से दर्शक स्वयमेव रूपक के प्रति दत्तचित्त हो जाता है, रुचि—वृद्धि होती है।

(५) वैचित्र्य का यत्र—तत्र आधान होने से आश्चर्यानुभूति होती है।

(६) सन्ध्यगप्रयोग से कथाविच्छेदजन्य अरुचि तथा नीरसता समाप्त हो जाती है, घटनाक्रम मे सातत्य बना रहता है।

आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार कथाप्रवाह मे सातत्यनिर्वाहार्थ सन्ध्यगो का प्रयोग होना चाहिये। रसपरिपाक की दृष्टि से एक ही अग का एक सन्धि मे दो अथवा तीन बार उपनिबन्धन किया जाता है।[4] आचार्य रुद्रट प्रभृति के मत मे अग का तत्तत् सन्धि मे प्रयोग करना चाहिये, किन्तु यह तथ्य युक्तिसगत नहीं है। रूपकप्रबन्धो मे इसके विपरीत उदाहरण भी दृष्टिगत होते हैं। यथा वेणीसहार के तृतीय अक मे गर्भसन्धि की योजना है, तथापि उसमे मुखसन्धि का अग 'सम्प्रधारण'

---

१ कानिचित्त्वगानि स्वरू[illegible] नियमभाञ्जि यथोपक्षेपो मुखसन्धावेव प्रथमे। एव च न ह्यनुपक्षिप्ते वस्तुनि किञ्चिदपि शक्यक्रियम्। —अभिनवभारती १९/३६

२ (क) उपक्षेपपरिकरपरिन्यासाना यथोद्देशक्रममादादेव । —नाट्यदर्पण पृ० १९३
(ख) एतानि त्रीणि चागानि उक्तेनैव पौर्वापर्येण भवन्ति अगान्तराणि त्वन्यथापि। —साहित्यदर्पण ६/८४

३ उक्तागाना चतुषष्टि षोढा चैषा प्रयोजनम्।।
इष्टस्यार्थस्य रचना गोप्यगुप्ति प्रकाशनम्।
राग प्रयोगस्याश्चर्यं वृत्तान्तस्यानुपक्षय ।। —दशरूपक १/५४—५५

४ सर्वसन्धीना [illegible]यन्ते इतिवृत्तस्याविच्छेदश्च रसपुष्ट्यर्थ। तेनैकमप्यग रसपोषकत्वा—देकस्मिन्नपि सन्धौ द्विस्त्रिर्वा निबध्यते। —नाट्यदर्पण, पृ० २२६

उपनिबद्ध है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार रस की दृष्टि से इन सन्ध्यगो का अन्य अगो मे भी उपनिबन्धन हो सकता है, रस ही मुख्य है।[1] आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार सन्धिसन्ध्यगो की योजना रसाभिव्यञ्जन हेतु अपरिहार्य है, नाट्यशास्त्रीय नियमो के परिपालन हेतु नहीं।[2]

मुखसन्धि

मुखसन्धि के बारह अग होते हैं– उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिभावना, उद्भेद भेद तथा करण।[3]

उपक्षेप

रूपक के प्रारम्भ मे बीजन्यास उपक्षेप है।[4] इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है– 'उपक्षिप्यते अनेन इति उपक्षेप' अर्थात् इसमे काव्य के अर्थ तथा रस की योजना होती है। प्रस्तावना के अनन्तर राजा कुशध्वज सीता एव उर्मिला से मुनि विश्वामित्र को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करने हेतु निर्दिष्ट करते हैं– 'आयुष्मत्यौ सीतोर्मिले ! अद्य भगवान् विश्वामित्र कौशिक श्रद्धधानेन चेतसा वत्साभ्या प्रणन्तव्य'।[5] यहाँ 'श्रद्धधानेन' पद से विश्वामित्र का राम–सीता–परिणय रूपी उद्देश्य– जो बीजरूप है, निहित है।

परिकर[6]

बीज जहाँ बहुलता से वर्णित हो, उसे परिकर कहते हैं। सूत राजा कुशध्वज एव तेजस्वी विश्वामित्र के समागम की प्रशसा करता है –

---

१ चतु षष्टिविध ह्येतदग प्रोक्त मनीषिभि ।
कुर्यादनियते तस्य सधावपि निवेशनम्।।
रसानुगुणता वीक्ष्य रसस्यैव हि मुख्यता। –साहित्यदर्पण ६/११५–१६
यथा वेणीसहारे तृतीयाके दुर्योधनकर्णयोर्महत्सप्रधारणम्। एवमन्यत्रापि। यत्तु रुद्रटादिभि नियम एव' इत्युक्त तल्लक्ष्यविरुद्धम्। –वही वृत्तिभाग

२ सन्धिसन्ध्यगघटन रसाभिव्यक्त्यपेक्षया।
न तु केवलया शास्त्रस्थितिसम्पादनेच्छया।। –ध्वन्यालोक ३/१२

३ उपक्षेप परिकर परिन्यासो विलोभनम्।।
युक्ति प्राप्ति समाधान विधान परिभावना।
उद्भेदभेदकरणान्यन्वर्थान्यथ लक्षणम्।। –दशरूपक १/२५–२६

४ बीजन्यास उपक्षेप । –वही १/२७

५ महावीरचरितम् १/९–१०, पृ० ९

६ तद्बाहुल्य परिक्रिया। –दशरूपक १/२७ का पूर्वार्ध

तदस्मिन् ब्रह्माद्यैस्त्रिदशगुरुभिर्नाथितशमे
तपस्तेजोधाम्नि स्वयमुपनतब्रह्मणि गुरौ।
निवासे विद्याना परिणतकुटुम्बव्यवहृति–
र्भवानेव श्लाघ्यो जगति गृहमेधी गृहवताम्।।[1]

ऋषिप्रयोजननिष्पादनार्थ दोनो का समागम आवश्यक है, अत परिकर नामक सन्ध्यग है।

विलोभन

फल से सम्बद्ध वस्तु के गुणो का वर्णन विलोभन कहलाता है।[2] राजा कुशध्वज सूत के कथन का समर्थन करते हैं तथा मुनि विश्वामित्र की प्रशसा करते हैं– साधुजनो का साहचर्य शान्ति तथा कल्याणप्रद होता है, फलदायक है –

तमासि ध्वसन्ते परिणमति भूयानुपशम
सकृत्सवादेऽपि प्रथत इह चामुत्र च शुभम्।
अथ प्रत्यासग कमपि महिमान वितरति
प्रसन्नाना वाच फलमपरिमेय प्रसुवते।।[3]

मुनि विश्वामित्र के उक्त प्रकार के वर्णन से प्रकारान्तर से राम–सीता–परिणय विषयक विलोभन का सकेत मिलता है।

युक्ति

अर्थों का अवधारण अथवा समर्थन युक्ति है।[4] महर्षि विश्वामित्र की स्वगतोक्ति मे 'युक्ति' नामक सन्ध्यग प्रयुक्त है, वे राम–सीता–परिणय, यज्ञ आदि का विनिश्चय करते हैं –

रक्षोघ्नानि च मगलानि सुदिने कल्यानि दारक्रिया
वैदेह्याश्च रघूद्वहस्य च कुले दीक्षाप्रवेशश्च न।
आस्थेयानि च तानि तानि जगता क्षेमाय रामात्मनो
दैत्यारेश्चरितादद्भुतान्यथ खलु व्यग्रा प्रमोदामहे।।[5]

---

१ महावीरचरितम् १/११
२ गुणाख्यान विलोभनम्।। –दशरूपक १/२७
३ महावीरचरितम् १/१२
४ सप्रधारणमर्थाना युक्ति । –दशरूपक १/२८
५ महावीरचरितम् १/१३

समाधान[1]

बीज का पुन व्यवस्थापन 'समाधान है। राजा कुशध्वज अहल्योद्धार के पश्चात् राम के पराक्रम आदि से प्रभावित होकर विचार करते हैं कि राम–सीता–परिणय मे राजा जनक की प्रतिज्ञा बाधक है –

रामाय पुण्यमहसे सदृशाय सीता दत्तैव दाशरथिचन्द्रमासेऽभविष्यत्।
आरोपणेन पणमप्रतिकार्यमायस्त्रैयम्बकस्य धनुषो यदि नाकरिष्यत्।।[2]

विधान

जहॉ सुख–दु ख की उत्पत्ति हो वहॉ विधान की स्थिति होती है।[3] रावणदूत सर्वमाय द्वारा रावण का सीतापरिणयविषयक प्रस्ताव सुनकर सीता कहती हैं– 'हा धिक् हा धिक् राक्षसो मामभ्यर्थयते'।[4] विश्वामित्र राम को ताटकावधार्थ आदेश देते हैं तो सीता भयातुर हो जाती हैं– 'हा धिक् हा धिक्। एष एवात्र नियुक्त'[5], 'अहो । परागत एव। हा धिक् हा धिक्। उत्पातपातावलिरिव सा हताशा महानुभावमभिद्रवति'।[6] ताटकावध के अनन्तर सीता तथा उर्मिला हर्षित होती हैं– 'आश्चर्य माश्चर्यं । प्रिय न प्रिय न'।[7]

परिभावना

जहॉ पात्र आश्चर्यचकित रह जाय, उसे परिभावना कहते हैं।[8] लक्ष्मण दिव्यास्त्र–प्रभाव से दिशाओ के पीतवर्ण होने तथा विद्युत्वत् दिखलाई पडने से आश्चर्यचकित रह जाते हैं।[9] दिव्यास्त्र राम से आदेश मॉगते हैं तो सीता एव उर्मिला आश्चर्यचकित हो कहती हैं– अहो । देवता मन्त्रयन्ते। आश्चर्यमाश्चर्यम्।[10]

---

१ बीजागम समाधानम्। –दशरूपक १/२८ का पूर्वार्ध
२ महावीरचरितम् १/२७
३ विधान सुखदु खकृत्।। –दशरूपक १/२८ का उत्तरार्ध
४ महावीरचरितम् १/३०–३१
५ वही १/३६–३७
६ वही १/३८–३६
७ वही १/३६–४०
८ परिभावोऽद्भुतावेश । दशरूपक १/२६
६ महावीरचरितम् १/४३
१० वही १/४६–५०

उद्‌भेद

जहॉ गूढ अथवा छिपे हुए बीज को प्रकट किया जाय, उसे उद्‌भेद कहते हैं।[1] शिवधनुर्भंग के अनन्तर राजा कुशध्वज तथा मुनि विश्वामित्र रामादिक चारो भाइयो का सीतादिक चारो बहनो के साथ विवाह निश्चित करते हैं।[2]

करण[3]

इतिवृत्त के अनुरूप कथा का आरम्भ होने पर 'करण' नामक सन्ध्यग होता है। मुनि विश्वामित्र आकाशस्थ शुन शेप को रामादिक–परिणयार्थ दशरथादिक को मिथिला आने के लिये निमन्त्रित करने का निर्देश देते हैं।[4]

यहॉ अग्रिम अक के कथानक की पृष्ठभूमि तैयार की गयी है, अतएव 'करण' नामक सन्ध्यग है।

भेद[5]

जहॉ पात्र को (बीज के प्रति) प्रेरित किया जाता है, उसे भेद कहते हैं। मुनि विश्वामित्र यज्ञप्रत्यूहनिवारणार्थ सुबाहु एव मारीच का सहार करने के लिये राम तथा लक्ष्मण को प्रोत्साहित करते हैं– 'तद्वत्सौ ! हन्युतामेष यज्ञप्रत्यूह'।[6]

प्रति॰ खसन्धि

प्रतिमुख के १३ अग होते हैं– विलास, परिसर्प, विधूत, शर्म, नर्म, नर्मद्युति, प्रगमन, निरोध, पर्युपासन, वज्र, पुष्प, उपन्यास, वर्णसहार।[7]

---

१ उद्‌भेदो गूढभेदनम्। –दशरूपक १/२६

२ महावीरचरितम् १/५६, ५७ ५८

३ करण प्रकृतारम्भ ।। –दशरूपक १/२६ का उत्तरार्ध

४ महावीरचरितम् १/५८ १/५८–५६

५ भेद प्रोत्साहना मता।। –दशरूपक १/२६

६ महावीरचरितम् १/६०–६१

७ विलास परिसर्पश्च विधूत शमनर्मणी।
नर्मद्युति प्रगमन निरोध पर्युपासनम्।।
वज्र पुष्पमुपन्यासो वर्णसहार इत्यपि। –दशरूपक १/३१–३२

विलास[1]

रति की इच्छा जहाँ व्यक्त हो, उसे विलास कहते हैं। द्वितीय अक मे परशुराम के रामवधार्थ उपस्थित होने पर सीता राम को उनके सम्मुख जाने से रोकती हैं, राम परशुराम के समक्ष जाना चाहते हैं, किन्तु सीता के प्रेमवश स्वय को पराधीन पाते हैं–

उत्सिक्तस्य तप पराक्रमनिधेरस्यागमादेकत
तत्सगप्रियता च वीररभसोन्मादश्च मा कर्षत ।
वैदेहीपरिरम्भ एष च मुहुश्चैतन्यमामीलय–
न्नानन्दी हरिचन्दनेन्दुशिशिरस्निग्धो रुणद्ध्यन्यत ।।[2]

यहाँ राम का सीता के प्रति प्रणयभाव स्पष्टतया व्यञ्जित हो रहा है, अतएव विलास नामक सन्ध्यग है।

विधूत[3]

किसी के अनुनय को स्वीकार न करना विधूत' नामक सन्ध्यग है। राम को परशुराम के समक्ष प्रस्तुत होने से रोकने के लिये सीता बलात् धनुष् तक पकड लेती हैं, किन्तु राम रघुवशी क्षत्रिय हैं। वे सीता को अपने पराक्रम के प्रति आश्वस्त करते हैं। परशुराम अन्त पुर मे प्रविष्ट हो परिचारको से पूछते हैं– भो भो परिष्कन्दा । क्व रामो दाशरथि ।[4] राम नि शक हो सम्मुख प्रस्तुत होते हैं– 'अयमह भो । इत इतो भवान्' ।[5]

नर्म[6]

परिहासपूर्ण वार्त्तालाप नर्म है। परशुराम के कन्यान्त पुर मे प्रविष्ट होने पर, सखियो के परिहासपूर्ण वचन उपन्यस्त हैं। राम को निर्दिष्ट करने हेतु सीता के वेगपूर्वक आगे बढने पर वे कहती हैं– 'कुमार, कुमार । प्रेक्षस्व तावत्त्वराविश्रृखलमरालवधूद्भ्रान्तगमना भर्तृदारिकाम्' ।[7] राम सखियो

---

१ रत्यर्थेहा विलास स्याद्। –दशरूपक १/३२
२ महावीरचरितम् २/२२
३ कृतस्यानुनयस्यादौ विधूतमपरिग्रह ।। –नाट्यशास्त्र २१/७७
४ महावीरचरितम् २/३०–३१
५ वही
६ परिहासवचो नर्म। –दशरूपक १/३३
७ महावीरचरितम् २/२०–२१

से कहते हैं– 'कातरेयमत्रभवतीभिरेव पर्यवस्थापयितव्या'।[1] सीता राम का धनुष् पकडती हैं तो वे कहती हैं– 'उद्वर्तितमिदानीं प्रियसख्या रसान्तरेण लज्जालुत्वम्।'[2] राम परशुराम से गाम्भीर्यपूर्ण वार्त्तालाप करते हैं तो सखियॉ सीता से कहती हैं– 'भर्तृदारिके ! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व भर्तु सौभाग्यम्। त्व खलु नित्य परागमुख्यात्मान वञ्चयसि।'[3]

प्रगमन[4]

जहॉ पात्र उत्तरप्रत्युत्तरपूर्वक वार्त्तालाप करते हैं, वहॉ प्रगमन नामक सन्ध्यग होता है। परशुराम क्षत्रिय–सहार आदि पूर्वकृत कार्यों का वर्णन करते हैं – रे मूढ !

उत्कृत्योत्कृत्य गर्भानपि शकलयत क्षत्त्रसतानरोषा–
दुद्दामस्यैकविशत्यवधि विधमत सर्वतो राजवश्यान्।
पित्र्य तद्रक्तपूर्णह्रदसवनमहानन्दमन्दायमान–
क्रोधाग्ने कुर्वतो मे न खलु न विदित सर्वभूतै स्वभाव।।[5]

राम प्रत्युत्तर मे कहते हैं – 'नृशसता हि नाम पुरुषदोष ! तत्र का विकत्थना' ?[6]

निरोधन[7]

हित का रुक जाना 'निरोधन' कहलाता है। परशुराम राम को धनुर्प्रयोगार्थ प्रेरित करते हैं, इसी मध्य शतानन्द तथा जनक उनका आतिथ्य–सत्कार करना चाहते हैं तथा कञ्चुकी ककणमोचनार्थ राम को कन्यान्त पुर मे ले जाने के लिये समुपस्थित होता है– 'देव्य ककणमोचनाय मिलिता राजन् वर प्रेष्यताम्'।[8] यहॉ वीर रस के निष्पादन मे ककणमोचन प्रसग बाधक है, अतएव निरोधन नामक सन्ध्यग है।

---

१ महावीरचरितम् २/२०–२१
२ वही २/२१–२२
३ वही २/३८–३६
४ उत्तरा वाक्प्रगमनम्। –दशरूपक १/३४
५ महावीरचरितम् २/४८
६ वही २/४८–४६
७ हितरोधो निरोधनम्। –दशरूपक १/३४
८ महावीरचरितम् २/५० का उत्तरार्ध

पर्युपासन[1]

'पर्युपासन' के अन्तर्गत अनुनय–विनय वर्णित रहता है। शतानन्द तथा परशुराम मे कटु वार्त्तालाप होता है। अन्त मे, शतानन्द उत्तेजित हो शापोदक उठा लेते हैं। दशरथ नेपथ्य से उन्हे शान्त करने का प्रयत्न करते हैं – भगवन् ! प्रसीद ! गृहानुपगते प्रशाम्यतु दुरासद तेज[2] तथा अन्यत्र जनक को ब्राह्मण पर शस्त्र–प्रयोग से विरत करते हैं –

विरम नरपते कथ द्विजेऽस्मन्नविरतयज्ञवितीर्णगोसहस्र।
तव पलितनिरन्तर पृषत्क स्पृशति पुराणधनुर्धरस्य पाणि ।।[3]

वज्र[4]

प्रत्यक्ष रूप से प्रयुक्त कठोर वाक्य 'वज्र' कहलाता है। शिव से धर्मादिक का ज्ञान प्राप्त होने के कारण जामदग्न्य वसिष्ठ को प्रतिस्पर्धी नहीं मानते हैं –

धर्मे ब्रह्मणि कार्मुके च भगवानीशो हि मे शासिता
सर्वक्षत्त्रनिबर्हणस्य विनय कुर्यु कथ क्षत्त्रिया।
सबन्धस्तु वसिष्ठमिश्रविषये मान्यो जराया न तु
स्पर्धायामधिक समश्च तपसा ज्ञानेन चान्योऽस्ति क ।।[5]

राम परशुराम–विजय की उद्घोषणा कर वसिष्ठ प्रभृति को विरत करते हैं। परशुराम राम का उपहास करते हैं – 'एहि मन्ये राजपुत्र ! जामदग्न्य विजेष्यसे। (सस्मितम्) न हि विजेष्यसे। दुर्दान्तो हि रेणुकातनयस्त्वदन्तक ।[6]

पुष्प[7]

जहाँ विशिष्ट वाक्य द्वारा बीज का प्रकाशन किया जाय, उसे पुष्प नामक सन्ध्यग कहते हैं। राम के आगमन से दशरथ उद्विग्न हो जाते हैं, किन्तु जनक अद्वितीय वीर राम की प्रशसा करते हैं– हन्त भो ! प्रशस्तमभ्यनुजानीत ! विजयता रामभद्र ।

---

१ पर्युपास्तिरनुनय। –दशरूपक १/३४
२ महावीरचरितम् ३/२१–२२
३ वही ३/३०
४ वज्र प्रत्यक्षनिष्ठुरम्। –दशरूपक ३/३५
५ महावीरचरितम् ३/३७
६ वही ३/४७–४८
७ पुष्प वाक्य विशेषवत्।। –दशरूपक १/३४

अय विनेता दृप्तानामेकवीरो जगत्पति ।
वय वसिष्ठधौरेया सर्वे प्रतिभुवोऽत्र व ।।[१]

यहॉ परशुराम–पराजय की स्पष्ट रूप से उद्भावना की गयी है, अतएव पुष्प नामक सन्ध्यग प्रयुक्त है।

उपन्यास[२]

हेतुनिष्ठ वाक्य का प्रयोग होने पर 'उपन्यास नाम सन्ध्यग की स्थिति होती है। राम नेपथ्य से वसिष्ठादिक से निवेदन करते हैं कि वे कार्त्तवीर्यार्जुनहन्ता, क्षत्रियसहारक परशुराम पर विजय प्राप्त करेगे – अयमह भो कौशिकान्तेवासी राम प्रणम्य विज्ञापयामि।

पौलस्त्यविजयोद्दामकार्तवीर्यार्जुनद्विषम्।
जेतार क्षत्त्रवीर्यस्य विजयेय नमोस्तु व ।।[३]

वर्णसहार

जहॉ चारो वर्ण–ऋषि, क्षत्रिय, अमात्य, ब्राह्मण प्रभृति एक साथ एकत्रित हो, वहॉ वर्णसहार की स्थिति होती है।[४] वसिष्ठ परशुराम से कहते हैं– ऋषिगण, युधाजित् राजा रोमपाद जनक, जनपद के स्वामी सकलजन तुमसे शान्ति की प्रार्थना करते हैं –

परिषदियमृषीणामत्र वीरो युधाजित्सह नृपतिरमात्यै रोमपादश्च वृद्ध ।
अयमविरतयज्ञो ब्रह्मवादी पुराण प्रभुरपि जनकानामद्रुहो याचकास्ते।।[५]

गर्भसन्धि

इसके द्वादश अग परिगणित हैं– अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, सग्रह, अनुमान, तोटक, अधिबल, उद्वेग, सभ्रम तथा आक्षेप।[६]

---

१ महावीरचरितम् ३/४६
२ उपन्यासस्तु सोपायम्। –दशरूपक १/३५
३ महावीरचरितम् ३/४५
४ दशरूपक १/३५
५ महावीरचरितम् ३/५
६ अभूताहरण मार्गो रूपोदाहरणे क्रम ।
सग्रहश्चानुमान च तोटकाधिबले यथा।।
उद्वेगसभ्रमाक्षेपा लक्षण च प्रणीयते। –दशरूपक १/३७–३८

अभूताहरण[1]

जहॉ छद्म अथवा कपट हो, वहॉ अभूताहरण होता है। चतुर्थ अक मे अभूताहरण प्रयुक्त है। शूर्पणखा माल्यवान् से प्रेरित हो मन्थरा के छद्मवेष मे मिथिला पहुॅचती है तथा राम को कैकेयी के वरद्वय से सम्बन्धित पत्र प्रस्तुत करती है– 'पुत्रक ! पुरा प्रतिज्ञातौ द्वौ वरौ महाराज ज्ञापयामि। तत्र मे विज्ञप्तिहारको भव ।'[2] राम वनगमनार्थ सहर्ष तैयार हो जाते हैं तो वह नतमस्तक हो जाती है – नम इदानीं भगवते ससाराय, यस्मिन्नीदृशा अपि कल्पद्रुमा प्ररोहन्ति ।[3] शूर्पणखा को षड्यत्र मे सफलता प्राप्त होती है अतएव अभूताहरण नामक सन्ध्यग है।

मार्ग[4]

जहॉ निश्चित तत्त्वप्राप्ति का कथन किया जाय वहॉ 'मार्ग' नामक सन्ध्यग होता है। चतुर्थ अक मे नेपथ्य से विश्वामित्र तथा लोकपरित्राता एव परशुरामजित् राम का जयोद्घोष होता है– भो भो वैमानिका ! प्रवर्तन्ता मगलानि।

> कृशाश्वान्तेवासी जयति भगवान्कौशिकमुनि सहस्राशोर्वंशे जयति जगति क्षत्त्रमधुना।
> विनेता क्षत्त्रारेर्जगदभयदानव्रतधन शरण्यो लोकाना दिनकरकुलेन्दुर्विजयते।।[5]

यहॉ 'राम ने परशुराम को पराभूत कर दिया है' यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है, अतएव मार्ग नाम सन्ध्यग है।

रूप[6]

प्राप्ति के समय तर्क–वितर्कमय वाक्यो का प्रयोग 'रूप' नामक सन्ध्यग है। शूर्पणखा माल्यवान् की मन्थराविषयिणी छद्मयोजना सुनकर कहती है– 'किमन्यथा करिष्यत्येव राम इति'[7] तथा वन मे राम की प्रभुशक्ति नष्ट होने का विचार करने पर पूछती है– 'अथ लक्ष्मणसहायत्वे कि

---

१ अभूताहरण छद्म। –दशरूपक १/३८
२ महावीरचरितम् ४/४०–४१ पृ० १७७
३ वही ४/४२–४३
४ मार्गस्तत्त्वार्थकीर्तनम्।। –दशरूपक १/३८
५ महावीरचरितम् ४/१
६ रूप वितर्कवद्वाक्यम। –दशरूपक १/३९

प्रयोजनम् ?[१] परशुराम के प्रस्थित होने पर राम विलाप करते हैं तथा प्रकारान्तर से वन–गमनार्थ विचार करते हैं– 'अपि नामान्येन केनचिदुपायेन दण्डकारण्य प्रतिष्ठेय। कथ च रामप्रियाद्गुरुजनादेव स्यात् ।[२]

उदाहृति[३]

'उत्कर्षोपेत वाक्य' उदाहृति कहा जाता है। माल्यवान् देवगण द्वारा राम का यशगान देखकर, उद्विग्न होकर शूर्पणखा से कहता है – 'दृष्टस्त्वया दिवौकसामेकायनीभाव, यदिन्द्रादय स्वतो बन्दित्वमुपागता;[४] अन्यत्र कहता है – 'कानर्थान् रघुनन्दनो मृगयते देवै पतिर्यो वृत्त'[५]

> उत्तिष्ठेत वधाय न परिभवप्रेद्धेन चेन्मन्युना
> नेष्टे तत्प्रसर निरोद्धुमुदधिस्तिग्माशुवीर्यो हि स ।[६]

क्रम[७]

इष्ट वस्तु का चिन्तन तथा कालान्तर मे प्राप्ति होने पर क्रम नामक सन्ध्यग होता है। जामदग्न्य के वन जाने पर राम वनगमनार्थ सोचते हैं, मन्थरा मे प्रविष्ट शूर्पणखा द्वारा पत्र प्रस्तुत करने पर राम सहर्ष तैयार हो जाते हैं – अहो प्रसादोत्कर्ष ।

> तत्रैव गमनादेशो यत्र पर्युत्सुक मन ।
> न चेष्टविरहो जात स च वत्सोऽनुजोऽनुग ।।[८]

आचार्य भरत के अनुसार इसमे भाव तथा अर्थ का प्रकाशन रहता है।[९] नाट्यदर्पणकार के मत मे इसमे अभिप्राय अथवा भाव्यमान अर्थ का निर्णय किया जाता है।[१०] राम जामदग्न्य–प्रदत्त धनुष् ग्रहण करते हैं – गृहीतेयमाज्ञा।[११] दशरथ के मूर्च्छित होने पर राम द्रवीभूत हो जाते हैं, लक्ष्मण उन्हे

---

१ महावीरचरितम् पृ० १४५
२ वही ४/३८–३९ पृ० १७५
३ सोत्कर्ष [illegible] । –दशरूपक १/३९
४ महावीरचरितम् ४/१–२ पृ० १४३
५ वही ४/३ का उत्तरार्ध
६ वही ४/६ का पूर्वार्ध
७ क्रम सचिन्त्यमानाप्ति । –दशरूपक १/३९
८ महावीरचरितम् ४/४२
९ भावतत्त्वोपलब्धिस्तु क्रम इत्यभिधीयते। –नाट्यशास्त्र २१/८५
१० क्रमो भावस्य निर्णय । –नाट्यदर्पण १/५४
११ [illegible], ४/३८–३९ पृ० १७५

अविलम्ब प्रस्थानार्थ परामर्श देते हैं, राम अभिप्राय समझकर कहते हैं– 'साध्वाचारनिष्ठ ! साधु। अमनुष्यसदृशस्ते चित्तसार । तद्वत्स ! वैदेहीमानय ।'[1]

राम जटायुवध तथा सीताहरण से शोकग्रस्त एव मर्माहत हैं –

शोकस्तातविपत्तिजो दहति मा नास्त्येव यस्मिन् क्रिया
मर्माणीव पुनश्छिनत्ति करुणा सीता वराकीं प्रति।।[2]

उपर्युक्त स्थलो पर पात्रगत अभिप्राय एव भाव की स्पष्ट रूप से अभिव्यञ्जना हुयी है, अतएव क्रम नामक सन्ध्यग प्रयुक्त है।

अनुमान[3]

हेतु अथवा लिग के आधार पर तर्क करना अनुमान कहा जाता है। पञ्चम अक मे पक्षो के सकुचन–प्रसारण से दिशाओ के प्रभावित होने पर सम्पाति जटायु के आगमन का अनुमान करता है– 'नूनमद्य वत्सो जटायुरभिवादनाय मलयकन्दरकुलायमुपासीदति। तथा हि –

पर्यायात्क्षणदृष्टनष्टककुभ सवर्तविस्तारयो–
र्नीहारीकृतमेघमोचितधुतव्यक्तस्फुरद्विद्युत ।
आरात्कीर्णकणात्कणीकृतगुरुग्रावोच्चयश्रेणय
श्यैनेयस्य बृहत्पतत्रधुतय प्रख्यापयन्त्यागमम्।।[4]

माल्यवान् राक्षसपरिवार मे व्याप्त फूट, विभीषण–सुग्रीव–मैत्री आदि पर विचार करता है,[5] अन्तत उनके विनाश एव मृत्यु पर चिन्तन कर विलाप करता है।[6]

सप्तम अक मे अयोध्या–प्रत्यावर्तन के समय मार्ग मे पृथ्वीरज से दिशाये व्याप्त हो जाती हैं, तो राम अनुमान करते हैं कि हनूमान् से सकल वृत्तान्त ज्ञात होने पर भरत सेना सहित आ रहे हैं– '(सवितर्कम्) मन्ये प्राभञ्जनेरस्मत्प्रवृत्तिमुपलभ्य मा प्रत्युद्यातीह ससैन्यो भरत'।[7]

---

१ महावीरचरितम् ४/५१–५२ पृ० १८४
२ वही ५/२२
३ अध्यूहो लिगतोऽनुमा। –दशरूपक १/४०
४ महावीरचरितम् ५/१
५ वही ४/७–८
६ वही ४/११
७ वही ७/२९–३०, पृ० ३२१

अधिबल[1]

पात्रो के द्वारा नायकादिक का अभिप्राय ज्ञात होना अधिबल है। सम्पाति जटायु को रामादिक रक्षार्थ सन्नद्ध करता है, जटायु पञ्चवटी मे पहुँचकर राम द्वारा चित्रमृग का अनुसरण, लक्ष्मण का उसी दिशा मे गमन, रावण की परिव्राजकवेष मे उपस्थिति आदि क्रियाकलापो को देखता है– (विभाव्य) अये।

> दूर हृतश्चित्रमृगेण रामस्तया दिशा गच्छति लक्ष्मणोऽपि।
> तत परिव्राडुटज प्रविष्टो धिग्व्यक्तरूपो दशकधरोऽयम्।।[2]

तोटक[3]

क्रोधपूर्ण वचन 'तोटक' कहलाता है। रावण सीता को रथारूढ कर ले जाता है, मार्ग मे जटायु रावण की निन्दा करता है तथा उपेक्षा करने पर रावण के अगप्रत्यग को विदीर्ण करने की धमकी देता है – कथमवज्ञया न श्रृणोतीव। आ दुरात्मन् राक्षसापसद ! तिष्ठ तिष्ठ।

> तुण्डप्रोतशिरकरोटिविवराकृष्टस्फुरत्त्वग्वसा–
> क्लोमप्लीहयकृद्द्रुतोष्णरुधिरस्नाय्वान्त्रमालस्य ते।
> अत्युग्रक्रकचप्रचण्डनखरोत्कर्तक्वणत्कीकसै–
> रगै खण्डितकधराधमनिभि श्येनीसुतस्तृप्यतु।।[4]

उद्वेग[5]

शत्रुकृत भय 'उद्वेग' कहलाता है। शूर्पणखा का अगविदीर्णन वृत्तान्त ज्ञात होने पर सम्पाति उद्विग्न हो जाता है तथा जटायु को राम, सीता एव लक्ष्मण की सम्यक् प्रकार से रक्षा करने हेतु निर्देश देता है – महत्पुनरपावृत वैरद्वारमिति मन्यमान सप्रमुग्धोऽस्मि। तद्वत्स जटायो ! नास्मिन्नवसरे सीतारामलक्ष्मणास्त्वया क्षणमपि मोक्तव्या ।[6]

---

१ अधिबलमभिसधि । –दशरूपक १/४०
२ महावीरचरितम् ५/१६
३ सरब्ध तोटक वच । –दशरूपक १/४०
४ महावीरचरितम् ५/१६
५ उद्वेगोऽरिकृता भीति । –दशरूपक १/४२
६ महावीरचरितम् ५/१३–१४

सभ्रम[1]

पात्रो मे शका एव भय का सञ्चार होने पर 'सभ्रम' नामक सन्ध्यग की स्थिति होती है। नेपथ्य से मेघगर्जनतुल्य वाली का स्वर तथा प्रत्यञ्चाकर्षण की ध्वनि सुनायी देती है, लक्ष्मण के एतद्विषयक प्रश्न पूछने पर श्रमणा विभीषण तथा सुग्रीव प्रभृति के युद्धभूमि की ओर जाने की सूचना देती है – स एष खलु विभीषणसख सुग्रीव सविमर्शसरम्भ सम्प्रहारमनुसरति। सर्वे च यूथपतयो गिरिगह्वरेभ्य सम्पतन्ति।[2] यहाँ सुग्रीवादिक की मनस्थिति, भयशीलता ध्वनित होती है।

चतुर्थ अक मे भी 'सभ्रम' प्रयुक्त है। माल्यवान् सहजशत्रु राम तथा विभीषण का विचार करता है –

क्षितेरानन्तर्यादपकृदपकृत्यश्च सतत
द्विधा राम शत्रु प्रकृतिनियत क्षत्रिय इति।
तृतीयो मे नप्ता रजनिचरनाथस्य सहजो
रिपु प्रत्यासत्तेरहिरिव भय नो जनयति।।[3]

यहाँ माल्यवान् का सशकित होना व्यक्त हो रहा है, अतएव सभ्रम नामक सन्ध्यग है।

आक्षेप

गर्भ के बीज का प्रकाशन अथवा उद्भेद होने पर आक्षेप नामक सन्ध्यग होता है।[4] षष्ठ अक के आरम्भ मे यह सन्ध्यग प्रयुक्त है। माल्यवान् रावण की अविनम्रता को ही समस्त घटनाक्रम का मूलभूत कारण मानता है – अहह, रक्षपतेर्दुर्विनयविटपिकोरका परित प्रकीर्णा इव।

बीज यस्य [illegible]ोऽपि स्वसु–
र्यात्रा तौ परिवञ्चितु किसलय मारीचमायाविधि।
शाखाजा[illegible]हरण तस्य स्फुट कोरका
कीशाधीशवधोऽनुजस्य गमन सख्य तयोस्तेन च।।[5]

---

१ शकात्रासौ च सभ्रम। –दशरूपक १/४२
२ महावीरचरितम् ५/५४–५५, पृ० २३४
३ वही ४/७
४ गर्भबीजसमुद्भेदादाक्षेप परिकीर्तित।। –दशरूपक १/४२
५ [illegible]म् ६/१

विमर्श

विमर्श अथवा अवमर्श सन्धि के तेरह अग निर्दिष्ट हैं – अपवाद, सफेट, विद्रव, द्रव, शक्ति, द्युति, प्रसग, छलन, व्यवसाय, विरोधन, प्ररोचना, विचलन तथा आदान।[1]

अपवाद[2]

किसी पात्र के दोषो का वर्णन अपवाद नामक सन्ध्यग है। माल्यवान् रावण की स्वेच्छाचारिता आदि पर विचार कर उद्विग्न हो जाता है –

> यत्किचिद् दुर्मदा स्वैरमाद्रियन्ते निरर्गलम्।
> तत्र तत्र प्रतीकारश्चिन्त्यो वक्रे विधावपि।।[3]

वह रावण के पापाचरण का कथन करता है –

> न कुत्राप्यन्यत्र प्रबलभवितव्यादयमहो
> विशुद्धेवोत्पत्त्या पतति न च तत्पापधिषणा।[4]

चित्ररथ वासव को बताते हैं कि रावण उद्दण्ड है, उसके कुकृत्यो से लोक सत्रस्त है–

> यावत्त्रिलोक्या किल जन्तुजात तत्सर्वमस्योद्धतदुश्चरित्रै।[5]

यहाँ रावण के दोषो का वर्णन विभिन्न पात्रो द्वारा किया गया है, अपवाद नामक सन्ध्यग स्पष्ट है।

सफेट[6]

रोषपूर्वक भाषण को सफेट कहते हैं। इसमे क्रोधाभिव्यञ्जक उत्तर–प्रत्युत्तर का प्रयोग किया जाता है।

---

१ तत्रापवादसफेटौ विद्रवद्रवशक्तय।
द्युति प्रसगश्छलन व्यवसायो विरोधनम्।।
प्ररोचना विचलनमादान च त्रयोदश। –दशरूपक १/४४–४५
२ दोषप्रख्यापवाद स्यात्। –वही १/४५
३ महावीरचरितम् ६/३
४ वही ६/८ का पूर्वार्ध
५ वही ६/२६ का पूर्वार्ध
६ सफेटो रोषभाषणम्। –दशरूपक १/४५

तृतीय अक मे जामदग्न्य तथा शतानन्द का परस्पर क्रोधपूर्ण वार्त्तालाप वर्णित है –

जामदग्न्य गौतम । त्वयेव बहुभि क्षत्त्रियपुरोहितैर्ब्रह्मतेजसा स्फुरितमासीत्। किन्तु प्राकृतानि तेजास्यप्राकृते ज्योतिषि शाम्यन्ति।

शतानन्द (सक्रोधम्) अरे अनड्वन् । पुरुषाधम । निरपराधसजन्यकुलकदन। महापातकिन् । अशिष्ट । विकृतवेष । बीभत्सकर्मन् । अपूर्वपाषण्ड । काण्डीर। काण्डपृष्ठ । कथमस्यामपि दिशि प्रगल्भसे। ननु च रे । त्वमसि कि ब्राह्मण एव। अहो ब्राह्मणस्याचार ।[1]

विद्रव[2]

किसी पात्र की मृत्यु, बन्दी–भाव आदि विद्रव' कहलाता है। त्रिजटा माल्यवान् को अक्षकुमार के वध की सूचना देती है– 'कनिष्टमातामह । कि कथयामि मन्दभागिनी। एष खलु कोऽपि दुष्टवानर सकल विदह्य नगर क्षणमात्रेण प्रस्तरद्रुमक्षेपविक्षिप्तविविधराक्षसलोकोऽक्षेण खलु कुमारकेणानुबध्य–मानस्तस्मिन् कृतान्तलीला कृत्वा झटिति निष्क्रान्त'।[3]

चित्ररथ वासव को बताते हैं कि सुग्रीव ने राम को लक्ष्य कर आ रहे कुम्भ को मार दिया – (सविशेष निर्वर्ण्य) कल सुग्रीव एव। (सविचिकित्सम्)

दो स्तम्भाभ्या सरभसमथापीड्य विक्षिप्य भूमौ
क्रान्त्वाप्येन प्रतिघविवशो माषपेष पिपेष।।[4]

लक्ष्मण के आहत होने का वृत्तान्त ज्ञात होने पर, राम मार्ग मे कुम्भकर्ण को बाणावृत तथा सेना को भस्मसात् कर अनुज के पास आते हैं –

क्षणाद्रक्षोनाथानुजमिषुभिराच्छिद्य कणश–
श्चमू भस्मीकृत्याप्यनुजमभियात्युत्सुकतम ।।[5]

---

१ महावीरचरितम् ३/१८–१६
२ विद्रवो वधबन्धादि । –दशरूपक १/४५
३ महावीरचरितम ६/४–५
४ वही ६/४५ का उत्तरार्ध
५ वही ६/४६ का उत्तरार्ध

दिव्यर्षिगण से आदिष्ट हो राम तथा लक्ष्मण ब्रह्मास्त्र तथा अच्युतास्त्र का स्मरण कर रावण एव मेघनाद का शिरश्छेदन कर वध करते हैं।[1] इन स्थलो पर प्रमुख राक्षस योद्धाओ की मृत्यु का वर्णन है, अतएव विद्रव नामक सन्ध्यग प्रयुक्त है।

शक्ति[2]

विरोध का शान्त हो जाना 'शक्ति' है। वासव चित्ररथ से कहते हैं कि देवगण रावण–वध के अनन्तर आनन्दसम्पादनार्थ प्रतीक्षारत हैं – (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य। सोल्लासम्) गन्धर्वराज ! पश्य तावदेते किल त्रिभुवनशत्रोर्दशकन्धरस्य निधनवृत्तान्तश्रवणेन प्रमोदनिर्भरा सह महर्षय सुमनस कमपि महोत्सवमनुबुभूषन्तो मामेव प्रतीक्षन्ते। तद्गच्छाम्येतेषा मनोरथसम्पादनाय। त्वमप्येतद्वृत्तान्तनिवेदनेन प्रियसखमलकेश्वर प्रीणय।[3]

आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार बुद्धि–शक्ति से क्रोधित व्यक्ति को प्रसन्न करना, अनुकूल करना शक्ति है।[4] तृतीय अक मे शतानन्द अत्यन्त क्रुद्ध हो शापोदक उठा लेते हैं। राजा दशरथ उन्हे समझाने का अथक प्रयत्न करते हैं, महर्षि वसिष्ठ शतानन्द को जाबालि के शान्तिहोम का दायित्व सौंपते हैं –

यत्कल्याण किमपि मनसा तद्वय वर्त्तयाम–
स्त्व जाबालिप्रभृतिसहित शान्तिमध्यग्नि कुर्या।[5]

एतदनन्तर शतानन्द प्रस्थान करते हैं, यहाँ कोपशमन फलीभूत होता है, अतएव 'शक्ति नामक सन्ध्यग प्रयुक्त है।

द्युति[6]

किसी की भर्त्सना करना अथवा किसी को भयभीत करना 'द्युति नामक सन्ध्यग है। रावण अगद का तिरस्कार करते हैं, अगद क्रुद्ध हो रोमकूपस्फुरण का प्रदर्शन करते हैं–

---

१ महावीरचरितम् ६/६३
२ विरोधशमन शक्ति। –दशरूपक १/४६
३ महावीरचरितम्, पृ० २६५
४ क्रुद्ध प्रसादन शक्ति। –नाट्यदर्पण १/६०
५ महावीरचरितम् ३/२३
६ तर्जनोद्वेजने प्रोक्ता द्युति। –साहित्यदर्पण ६/१०३–४

उद्रोमकूपस्फुरणमभिनीय।[1] जामदग्न्य राम, दशरथ तथा वशधरो को समाप्त करने की घोषणा करते हैं, जनक नेपथ्य से कहते हैं – भार्गव भार्गव । अति हि नामावलिप्यसे।[2] महर्षि वसिष्ठ परशुराम के तिरस्कारपूर्ण वचनो से दु खी हो जाते हैं, जनक, दशरथ एव विश्वामित्र क्रुद्ध होकर जामदग्न्य का दमन करने हेतु उद्यत होते हैं – अनार्य निर्मयाद ।

> जगत्सनातनगुरौ वसिष्ठेऽपि निरकुश ।
> व्यालद्विप इवास्माभिरुपकृष्यैव दम्यसे।।[3]

व्यवसाय[4]

जहॉ पात्र अपनी सामर्थ्य, शक्ति का वर्णन करे, वहॉ व्यवसाय नामक सन्ध्यग होता है। रावण मन्दोदरी से अपने ज्ञान, धैर्य, बल तथा साहस आदि की प्रशसा करता है –

> श्रुत मे जानाति श्रुतिकविरथाज्ञा सहचर स शच्या धैर्यं चाशनिरथ यशोऽदस्त्रिभुवनम्।
> बल कैलासाद्रि किमपरमहो साहसमपि क्षरत्कीलालम्भ स्नपितचरण खण्डपरशु ।।[5]

द्वितीय अक मे जामदग्न्य राम को युद्धार्थ प्रेरित करते हैं तथा कहते हैं कि उनके प्रहार करने पर कबन्धमात्रावशिष्ट रहेगा।

> झटिति विततवह्न्यद्गारभास्वत्कुठारप्रविघटितकठोरस्कन्धबन्ध कबन्ध ।।[6]

विचलन[7]

जहॉ पात्र अपने गुणो की प्रशसा करे, वहॉ विचलन नामक सन्ध्यग होता है। मन्दोदरी रामादिक के लका–गमन की सूचना देती है तो रावण उपहास करता है– कथ रिपुस्तत्पक्षस्तदभियोगश्चेत्यश्रुत श्राव्यते देव्या।[8] मन्दोदरी राम को वीर एव साहसिक कहती है, रावण कहता है कि मेरे साहस के तो शिव प्रमाण हैं, साक्षी हैं –

---

१ महावीरचरितम् ६/२१–२२
२ वही ३/२४–२५, पृ० १२३
३ वही ३/३६
४ व्यवसाय स्वशक्त्युक्ति। –दशरूपक १/४७
५ महावीरचरितम् ६/१५
६ वही २/४६
७ विकत्थना विचलनम्। –दशरूपक १/४८
८ महावीरचरितम् ६/१०–११, पृ० २५६

उत्पुष्यद्गलधमनिस्फुटप्रसर्पत्प्रत्यग्रक्षतजझरीनिवृत्तपाद्य ।
हर्षाश्रुप्रचुरमधुस्मितस्फुटश्रीवक्त्राब्जार्चितचरण शिव प्रमाणम्।।[1]

आदान[2]

इतिवृत्त सम्बन्धी कार्य को सगृहीत करने का प्रयत्न 'आदान' नामक सन्ध्यग है। नेपथ्य से देवगण राम को सीता–समागम, विभीषण का राज्याभिषेक आदि कार्यों का सस्मरण कराते हैं– भो भो रामभद्र ! किमद्याप्युपेक्षसे दुर्वृत्तमेनम्। कथ वैकक्रियासाध्यमेतावन्तमर्थम्। अवधत्स्व तावत्।

भवान्सीता लोकास्त्रिभुवनगत प्रीतिमुचिता
कनीयान्पौलस्त्य पुरममरता स्वा पुनरयम्।
किमत्रान्यत्साक्षात्कृतपरमतत्त्वोमुनिगण
प्रसादप्रोन्मीलन्मुदि मनसि शान्ति च लभताम्।।[3]

उपर्युक्त पद्य मे 'आदान' का स्पष्ट प्रयोग ध्वनित होता है।

निर्वहण सन्धि

इसके चतुर्दश अग परिगणित हैं– सन्धि, विबोध, ग्रथन, निर्णय, परिभाषण, प्रसाद, आनन्द, समय, कृति, भाषा, उपगूहन, पूर्वभाव, उपसहार एव प्रशस्ति।[4]

सन्धि[5]

बीजोद्भावना करने पर 'सन्धि' नामक सन्ध्यग की स्थिति होती है। अधिष्ठातृ देवता लका तथा अलका के वार्त्तालाप मे यह सन्ध्यग प्रयुक्त है। लका राम को शत्रु कहती हैं तथा अलका समस्त घटनाक्रम हेतु रावण को उत्तरदायी ठहराती हैं – अय्यननुसधाने किमेव भाषसे? श्रृणु –

रघुकुलतिलकेऽस्मिन्भ्रातृमात्रद्वितीये किमपि पितृनिदेशाद्दण्डका सप्रविष्टे।
यद्दुर्[illegible] ते राक्षसाना विनेत्रा विहितमयमशेष कर्मणस्तस्य पाक ।।[6]

---

१ महावीरचरितम् ६/१४
२ आदान कार्यसग्रह । –दशरूपक १/४८
३ महावीरचरितम् ६/६२
४ सधिर्विबोधो ग्रथन निर्णय परिभाषणाम्।।
प्रसादानन्दसमया कृतभाषोपगूहना।
पूर्वभावोपसहारौ प्रशस्तिश्च चतुर्दश।। –दशरूपक १/४९–५०
५ सन्धिर्बीजोपगमनम्। –वही १/५१
६ महावीरचरितम् ७/१

विबोध[1]

नायक द्वारा गुह्य कार्य का अन्वेषण 'विबोध' कहलाता है। विभीषण द्वारा पुष्पकविमान प्रदान करने पर राम प्रशसा करते हैं तथा सुग्रीव से अवशिष्ट कार्य विषयक प्रश्न करते हैं। सुग्रीव कहते हैं कि सीता का प्रतीकार, विभीषण का राज्याभिषेक आदि कार्य सम्पन्न हो चुका है, अतएव हनूमान् को भरतसूचनार्थ प्रेषित कर पुष्पक विमान पर आरूढ हो प्रस्थान करना चाहिए, राम उनका अनुमोदन करते हैं –

राम साधु लकेश्वर ! साधु सपादितम्। (सुग्रीव प्रति) सखे वैकर्तने ! किमत्रावशिष्यते।

सुग्रीव उत्खातस्त्रिभुवनकण्टकोऽतिदृष्यद्दोर्दण्डाञ्चितमहिमाप्यय निकार ।
देव्याश्च प्रतिशमितस्तथात्रसन्धा निर्व्यूढा प्रगुणविभीषणाभिषेकात्।।[2]

सप्रति तु द्रोणाद्रि प्रत्याहरतो हनूमत सविशेष गृहीतप्रवृत्तिर्दुर्मनायते किल कुमारभरत। त प्रति वार्ताहर प्रतिसृज्यता प्राभञ्जनि। स्वयमप्यलक्रियता विमानराज।

राम यदभिरुचित प्रियवयस्याय।[3]

राम ने समस्त करणीय कृत्यो का अनुसन्धान किया है, अतएव 'विबोध' नामक सन्ध्यग प्रयुक्त है।

ग्रथन[4]

कार्य का उपसहार 'ग्रथन' नामक सन्ध्यग है। पुष्पकविमान पर आरूढ होकर सीता लक्ष्मण से अयोध्या–प्रस्थान, वनवासावधिपरिसमाप्ति विषयक जिज्ञासा प्रकट करती हैं –

सीता (अपवार्य। लक्ष्मण प्रति) अस्माभि साप्रत क्व प्रस्थीयते ?

लक्ष्मण देवि ! रघुकुलराजधानीमयोध्या प्रति।

सीता अपि समाप्त स वनवासस्यावधि ?

लक्ष्मण देवि ! अद्यतनमेव दिन तत्।[5]

---

१ विबोध कार्यमार्गणम्। –दशरूपक १/५१
२ महावीरचरितम् ७/८
३ वही ७/८–६
४ ग्रथन तदुपक्षेपो। –दशरूपक १/५१
५ महावीरचरितम् ७/८–६ पृ० ३०५

यहाँ सीता एव लक्ष्मण के वार्त्तालाप के माध्यम से कार्य का उपसहार ध्वनित होता है अतएव ग्रथन नामक सन्ध्यग प्रयुक्त है।

निर्णय

नायकादिक द्वारा अनुभूत या सम्पादित कार्य का वर्णन 'निर्णय' कहलाता है।[1] लक्ष्मण सीतादिक का ध्यान जीर्णकन्दरा की ओर आकृष्ट करते हैं जहाँ उन्होने वर्षाकाल मे रात्रि व्यतीत की थी –

आक्षिष्यान्धयति द्रुमान्धतमसे चक्षु प्रविश्य क्षपा
यत्रासीत्क्षपिता क्षरज्जलधरे त्वक्सारलक्षीकृते।।[2]

राम सीता को स्मरण दिलाते हैं कि उनका अनुसूया नामाकित उत्तरीय वस्त्र गिर गया था जिसे उन्होने अभिज्ञानार्थ प्राप्त किया था– 'हे देवि ! तदा किल वैक्लव्यादपह्रियमाणायाभवत्या प्रभ्रष्टमनुसूयानामाकमुत्तरीयमस्माभि प्रथममभिज्ञानमासादितम्'।[3]

परिभाषा[4]

(कार्यसिद्धि से सम्बद्ध) पात्रो का परस्पर वार्त्तालाप 'परिभाषा' नामक सन्ध्यग कहलाता है। हनूमान् भरतागमन की सूचना देते हैं, राम हर्षित होते हैं। लक्ष्मण के पूछने पर हनूमान् भरत के ससैन्य–आगमन का सकेत करते हैं –

लक्ष्मण (सौत्सुक्यम्) सखे मारुते ! कुत्रार्य ?

हनूमान् य एते सैन्यस्य पुरत पञ्चषास्तन्मध्ये पुरसर सानुज स महात्मा भरत।[5]

यह वार्त्तालाप साभिप्राय है, इससे प्रियसमागम तथा रामराज्याभिषेक विषयक भावी कथानक का मार्ग प्रशस्त हो जाता है, अतएव 'परिभाषा' नामक सन्ध्यग प्रयुक्त है।

---

१ अनुभूताख्या तु निर्णय।। –दशरूपक १/५१
२ महावीरचरितम् ७/१२
३ वही ७/१६–१७ पृ० ३११
४ परिभाषा मिथो जल्प। –दशरूपक १/५२
५ महावीरचरितम् ७/३०–३१

आनन्द

इप्सित वस्तु की प्राप्ति 'आनन्द' नामक सन्ध्यग कहा जाता है।[1] राम भरत का परिरम्भण कर ब्रह्मास्वादसदृश आनन्द की अनुभूति करते हैं –

अनुभावयति ब्रह्मानन्दसाक्षात्क्रियामिव।
स्पर्शस्तेऽद्य वराम्भोजप्रस्फुरन्नालकर्कश।।[2]

कृति[3]

प्राप्त अर्थ का शमन करना 'कृति' नामक सन्ध्यग है। मुनि विश्वामित्र राम की सहायता से कार्यसम्पादन तथा राज्याभिषेक आदि से हर्षित होते हैं –

सत्रप्रत्यूहशान्त्यै दशरथकरत कर्षतैन मया यद्
यत्स्वान्ते सविमृष्ट तदनुगुणविधौ यच्च वैयग्र्यमासीत्।
तद्दैवस्यानुगुण्यात्प्रयतनविभवैश्चाद्य राज्येऽभिषिच्य
श्रीराम निर्वृताना फलितमिति मुहु सप्रमोदामहे न।।[4]

भाषण[5]

नायकादिक को सम्मान आदि की प्राप्ति का अभिव्यञ्जक वाक्य 'भाषण' नामक सन्ध्यग कहलाता है। वसिष्ठ तथा विश्वामित्र रामराज्याभिषेक विषयक वार्त्तालाप करते हैं –

विश्वामित्र — भगवन् मैत्रावरुणे ! किमद्यापि प्रतीक्ष्यते ?

वसिष्ठ — यथोचितमाह्रियताम्।

विश्वामित्र — (दिव्यर्षिगणमुद्दिश्य) निर्वर्त्यता रामभद्रस्याभिषेक।
(मुनयो यथोचितमाचरन्ति)
(नेपथ्ये दुन्दुभिध्वनि)
(सर्वे सविस्मय पुष्पवृष्टि रूपयन्ति)

---

१ आनन्दो वाञ्छितावाप्ति। –दशरूपक १/५२
२ महावीरचरितम् ७/३१
३ कृतिर्लब्धार्थशमनम्। –दशरूपक १/५३
४ महावीरचरितम् ७/३८
५ मानाद्याप्तिश्च भाषणम्। –दशरूपक १/५३

वसिष्ठ कथ सलोकपालो भगवान् पाकशासनो रामभद्रस्याभिषेकमनुमोदते।[1]

अतएव 'भाषण' नामक सन्ध्यग प्रयुक्त है।

प्रशस्ति[2]

कल्याणपरक आशसा 'प्रशस्ति नामक सन्ध्यग कहा जाता है। वसिष्ठ तथा विश्वामित्र राम को भ्रातृजन के साथ राज्यभारसम्भारण का आशीर्वाद देते हैं–

रामभद्र गुणाराम भ्रातृभिस्त्व पुरस्कृत ।
इक्ष्वाकुमुख्यैर्भूपालैश्चिरमूढा धुर वह।।[3]

यहाँ 'प्रशस्ति' नामक सन्ध्यग स्पष्टरूपेण उपन्यस्त है।

अर्थोपक्षेपक

अर्थोपक्षेपक की व्युत्पत्ति है– अर्थान् उपक्षिपन्ति इति' – अर्थात् जो अर्थ को उपक्षिप्त करे उन्हे अर्थोपक्षेपक कहते हैं। रूपक–प्रबन्ध मे अभिनेय इतिवृत्त के दो विभाग निर्दिष्ट हैं– सूच्य तथा दृश्यश्रव्य। कवि को नीरस तथा अनुचित प्रसगो को रगमच पर प्रदर्शित करना अभीष्ट नही होता किन्तु इतिवृत्त के पूर्वापर सम्बन्ध की दृष्टि से उन्हे सूचित करना अपरिहार्य है, इन्हे सूच्य अर्थ कहते हैं। कवि अनावश्यक अवधिविस्तारनिवारणार्थ उन अर्थों को पात्रो के वार्त्तालाप के माध्यम से सूचित करता है। अतएव अनिबन्धनीय इतिवृत्त के प्रत्यायक 'अर्थोपक्षेपक' मे इन सूच्याशो की योजना की जाती है। मधुर उदात्त एव रसानुकूल कथाभाग को अभिनय द्वारा दृश्यरूपेण प्रस्तुत किया जाता है।[4]

सूच्य अश के उपस्थापक अर्थोपक्षेपक पॉच प्रकार के होते हैं– विष्कम्भक चूलिका, अकास्य, अकावतार तथा प्रवेशक।[5] सुदूरप्रान्त की यात्रा, वध, युद्ध, राज्य तथा देशगत विद्रोह, नगरावरोध,

---

१ महावीरचरितम् ७/३६–४०
२ प्रशस्ति शुभशसनम्। –दशरूपक १/५४
३ महावीरचरितम् ७/४०
४ द्वेधा विभाग कर्त्तव्य सर्वस्यापीह वस्तुन ।
सूच्यमेव भवेत् किञ्चिद् दृश्यश्रव्यमथापरम्।।
नीरसोऽनुचितस्तत्र ससूच्यावस्तुविस्तर ।
दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरन्तर ।। – दशरूपक १/५६–५७
५ अर्थोपक्षेपकै सूच्य पञ्चभि प्रतिपादयेत्।
विष्कम्भचूलिकाकास्याकावतारप्रवेशकै । –वही १/५८

भोजन, स्नान, रतिक्रीडा, अनुलेपन, वस्त्रग्रहण प्रभृति को रगमच पर प्रत्यक्षरूपेण चित्रित करना उचित नही है, इनकी सूचना प्रवेशकादिक के माध्यम से देना चाहिए।[1]

विष्कम्भक

इसमे भूत तथा भविष्यवर्ती घटनाक्रम की सूचना दी जाती है, मध्यम पात्र सक्षिप्त रूप मे कथाशो को निर्दिष्ट करते हैं।[2] विष्कम्भक दो प्रकार का होता है– शुद्ध तथा सकीर्ण। एक अथवा दो मध्यम पात्रो द्वारा प्रयुक्त विष्कम्भक शुद्ध तथा मध्यम एव अधम पात्रो द्वारा प्रयुक्त विष्कम्भक सकीर्ण कहलाता है।[3] आचार्य विश्वनाथ के अनुसार इसकी योजना अक के आरम्भ मे होती है।[4] आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र के मत मे विष्कम्भक कथाभाग का अनुसन्धायक है।[5]

(१) मिश्रविष्कम्भक

प्रकृत रूपक के द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ एव सप्तम अक मे मिश्रविष्कम्भक की योजना की गयी है।

१– द्वितीय अक मे माल्यवान् राम द्वारा ताटका, सुबाहु प्रभृति राक्षसो के सहार, शिवधनुर्भंग, दिव्यास्त्र–प्राप्ति आदि कृत्यो पर विचार कर उद्विग्न हो जाता है। शूर्पणखा उसे राम–सीता–परिणय की सूचना देती है। इसी मध्य परशुराम का पत्र प्राप्त होने पर माल्यवान् परशुराम को रामवधार्थ प्रेरित करने हेतु महेन्द्र द्वीप की ओर प्रस्थान करता है। इसमे माल्यवान् (मध्यम पात्र) तथा शूर्पणखा (अधम पात्र) नीरस किन्तु अवश्य कथनीय घटनाक्रम विषयक विचार करते हैं, अतएव मिश्रविष्कम्भक है। (पृ० ५८–७१)

२– चतुर्थ अक मे भी मिश्रविष्कम्भक प्रयुक्त है। माल्यवान् शूर्पणखा को मन्थरा के छद्मवेष मे मिथिला जाकर पत्र प्रस्तुत करने की योजना बनाता है तथा रामवनवास, दण्डकारण्य मे

---

१ (क) दूराध्वान वध युद्ध राज्यदेशादिविप्लवम्।।
सरोध भोजन स्नान सुरत चानुलेपनम्।
अम्बरग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत्।। –दशरूपक ३/३४–३५
(ख) अकैर्नैवोपनिबध्नीत प्रवेशकादिभिरेव सूचयेदित्यर्थ। –वही वृत्तिभाग

२ वृत्तवर्तिष्यमाणाना कथाशाना निदर्शक।
सक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजित।। –वही १/५६

३ एकानेककृत शुद्ध सकीर्णो नीचमध्यमै। –वही १/६० का पूर्वार्ध

४ सक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावकस्य दर्शित। –साहित्यदर्पण ६/५५ का उत्तरार्ध

५ विष्कम्नात्यनुसन्धानेन वृत्तमुपष्टम्भयतीति विष्कम्भक। –नाट्यदर्पण १/२४ का वृत्तिभाग

विराध एव दनुकबन्ध से राम का युद्ध, सीताहरण, वाली द्वारा राम का वध इसके प्रतिकूल होने पर विभीषण–सुग्रीव–मित्रता, अन्तत रावणवध, विभीषण को राज्यप्राप्ति आदि सम्भावित घटनाक्रम की परिकल्पना करता है। (पृ० १४३–१५६)

३– षष्ठ अक मे माल्यवान् एव त्रिजटा के वार्त्तालाप के माध्यम से नीरस घटनाक्रम की सूचना दी गयी है। माल्यवान् वानरो द्वारा सीता का अन्वेषण हनूमान् द्वारा लका–दहन आदि पर विचार करता है। त्रिजटा उसे हनूमान् द्वारा अक्षकुमार–वध, लका–दहन, सीता से वार्त्तालाप आदि की सूचना देती है। माल्यवान् उसे रावण–पराक्रम के प्रति आश्वस्त करता है। त्रिजटा रावण द्वारा सीता का सौन्दर्यावलोकन, मन्दोदरी का रावणप्रबोधनार्थ गमन आदि वृत्तान्त बताती है। यहाँ आवश्यक घटनाक्रमो का सम्यक् उपनिबन्धन किया गया है।(पृ० २४४–२५३)

४– सप्तम अक मे अधिष्ठातृदेवता अलका तथा लका के वार्त्तालाप से सीता की अग्निपरिशुद्धि, दिव्यर्षिगण द्वारा विभीषण का राज्याभिषेक आदि की सूचना मिलती है। (पृ० २६६–३०२)

(२) शुद्ध विष्कम्भक

पञ्चम अक मे जटायु तथा सम्पाति के परस्पर सवाद के माध्यम से विस्तृत घटनाक्रम का सकेत मिलता है कि राम विराधवध के अनन्तर शरभग मुनि के आश्रम मे जाते हैं शरभग द्वारा अग्नि मे शरीरार्पण करने के पश्चात् सुतीक्ष्ण एव अगस्त्य से मिलकर सम्प्रति महर्षि अगस्त्य के निर्देशपूर्वक चित्रकूट मे निवास कर रहे हैं। राम के प्रति आकृष्ट शूर्पणखा का लक्ष्मण द्वारा अगविदीर्णन, राम द्वारा खरदूषणसहित चौदहसहस्र राक्षसो का सहार, रावण द्वारा सीताहरण आदि प्रसग भी इनके वार्त्तालाप से ज्ञात होते हैं। सम्पाति एव जटायु दोनो मध्यम पात्र हैं तथा सस्कृत मे वार्त्तालाप करते हैं, अतएव शुद्ध विष्कम्भक प्रयुक्त है।

चूलिका

जवनिका मे स्थित पात्रो द्वारा अर्थविशेष की सूचना देना 'चूलिका' कहलाता है।[1] कवि ने २४ स्थलो पर चूलिका की योजना की है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

१– राम मुनि विश्वामित्र से प्रार्थना करते हैं कि उन्हे एव लक्ष्मण को दिव्यास्त्र–प्राप्ति हो –

---

१ अन्तर्जवनिकासस्थै सूचनार्थस्य चूलिका। –साहित्यदर्पण ६/५८ का पूर्वार्ध

(नेपथ्ये)

एष प्रह्वोऽस्मि भगवन्नेषा विज्ञापना च न।
दिव्यास्त्रसप्रदायोऽय लक्ष्मणेन सहास्तु मे।।[1]

(नेपथ्ये)

२– क कोऽत्र भो ! प्रसाद्यतामय धवित्रनिर्धूत इवाभिप्रणीत पृषदाज्याभिघारघोरस्तनूनपात्स–मिध्यमानदारुणब्रह्मवर्चसज्योतिरागिरस।[2]

यहॉ परशुराम के प्रति शापोद्यत शतानन्द के कोपशमन का प्रयत्न वर्णित है।

अकास्य

जहॉ अक के अन्त मे स्थित पात्रो द्वारा विच्छिन्न परवर्ती अक से सम्बद्ध तथा प्रारम्भ मे प्रयुक्त अर्थ की सूचना दी जाती है[3] उसे अकास्य कहते हैं। अकास्य की व्युत्पत्ति है– अक का आस्य अथवा मुख अर्थात् आने वाले अक के आरम्भ मे प्रयुक्त अर्थ।

(१) प्रथम अक मे दूत सर्वमाय का कथन है –

हन्त साध्विव सम्पन्न विपर्यस्तो विधिर्भवेत्।
तद्वीक्ष्य कार्यपर्यन्त माल्यवत्युपवेदये।।[4]

यहॉ द्वितीय अक के आरम्भ मे समुपस्थित होने वाले पात्र माल्यवान् तथा उसकी भावी कूटनीति की ओर सकेत किया गया है।

(२) चतुर्थ अक के अन्त मे राम लक्ष्मण से गृध्रराज जटायु के पास जाने का निर्णय व्यक्त करते हैं –

ऋषिभिरुपजुष्टतीर्थां हन्तु रक्षासि दण्डका प्राप्य।
सनिहितगृध्रराज क्रमेण याया जनस्थानम्।।[5]

एतदनन्तर पञ्चम अक मे जटायु एव सम्पाति का सवाद वर्णित है।

---

१ महावीरचरितम् १/४७

२ वही ३/२०–२१

३ (क) अकान्तपात्रैरकास्य छिन्नाकस्यार्थसूचनात्। –दशरूपक १/६२
 (ख) अकास्यमन्तपात्रेण छिन्नाकमुखयोजनम्। –नाटयदर्पण १/२६

४ महावीरचरितम् १/६१

५ वही ४/६०

अकावतार

जहॉ पूर्व अक का विच्छेद किये बिना परवर्ती अक की कथावस्तु उपनिबद्ध हो वहॉ अकावतार नामक अर्थोपक्षेपक होता है।[1] द्वितीय अक के अन्त मे जनक एव शतानन्द जामदग्न्य को वसिष्ठ, दशरथ तथा विश्वामित्र के पास ले जाने के लिये सुमन्त्र समुपस्थित होते हैं –

	(प्रविश्य)
सुमन्त्र	भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ भवत सभार्गवानाह्वयत ।
इतरे	क्व भगवन्तौ।
सुमन्त्र	महाराजदशरथस्यान्तिके।
इतरे	गुरुवचनाद्गच्छाम ।[2]

एतदनन्तर उपर्युक्त समस्त्र पात्रो सहित तृतीय अक आरम्भ हो जाता है, अतएव अकावतार प्रयुक्त है।

वृत्तियॉ

नायकादिक का प्रवृत्तिरूप व्यापार 'वृत्ति' है।[3] वृत्ति का अर्थ है– मानसिक, वाचिक एव आगिक चेष्टा। नायक देशविशेष के अनुसार विभिन्न भाषाये बोलता है, तदनुसार वेष धारण करता है एव नाना प्रकार के कार्यकलापो मे व्यस्त रहता है, किन्तु ये सभी व्यापार नाट्यवृत्ति के अन्तर्गत नही आते। अपितु नायकादिक के कायिक, वाचिक एव मानसिक व्यापार विशेष ही नाट्य मे वृत्ति कहलाते हैं।[4] वृत्तियॉ चार प्रकार की होती हैं – कैशिकी, सात्त्वती, आरभटी एव भारती।[5] कैशिकी वृत्ति का सम्बन्ध श्रृगार रस से है, सात्त्वती वृत्ति का वीर रस से एव आरभटी वृत्ति का रौद्र एव वीर रसो से है। भारती वृत्ति समस्त रसो मे व्याप्त रहती है।[6]

---

१ अकावतारस्त्वकान्ते पातोऽङकस्याविभागत ।। –दशरूपक १/६२ का उत्तरार्ध
२ महावीरचरितम् पृ० १०४–५
३ प्रवृत्तिरूपो नेतृव्यापारस्वभावो वृत्ति । –दशरूपक २/४७ का वृत्तिभाग
४ नायकादिव्यापारविशेषा नाटकादिषु। –साहित्यदर्पण ६/१२३ का उत्तरार्ध
५ (क) तद्व्यापारात्मिका वृत्तिश्चतुर्धा। –दशरूपक २/४७ का पूर्वार्ध
(ख) सा च कैशिकी–सात्त्वती–आरभटी–भारती भेदाच्चतुर्विधा। –वही वृत्तिभाग
६ श्रृगारे कैशिकी वीरे सात्त्वत्यारभटी पुन ।
रसे रौद्रे च बीभत्से वृत्ति सर्वत्र भारती।। –साहित्यदर्पण ६/१२२

वृत्तियॉ नाट्य की माताऍ कही गयी हैं।[1] नाट्यदर्पणकार के अनुसार अभिनेय एव अनभिनेय द्विविध काव्यबन्धो की जननी 'वृत्ति' है। कविहृदय मे वर्ण्यरूप मे विद्यमान नायकादिक के व्यापार रूप वृत्तियो से ही काव्य का जन्म होता है।[2]

वृत्तियो का चतुर्विध विभाजन व्यापारविशेष के प्राधान्य पर आधारित है। सात्त्वती वृत्ति विशेषरूप से मानस व्यापाररूप होती है भारती वाचिक व्यापाररूप तथा आरभटी कायिक व्यापाररूप है। किन्तु इन व्यापारत्रय का असकीर्ण रूप से होना असम्भव है क्योकि कायिक और वाचिक चेष्टाये तो सदैव मानस चेष्टाओ पर आश्रित हैं। वस्तुत वृत्तितत्त्व एक है तथापि विश्लेषण की दृष्टि से चतुर्विध आभासित होता है।[3]

दशरूपककार के अनुसार कैशिकीप्रभृति वृत्तियो से भिन्न अन्य कोई अर्थवृत्ति नहीं है।[4] आचार्य धनिक के अनुसार इस प्रकार की पञ्चम वृत्ति न तो लक्ष्यग्रन्थो मे दृष्टिगोचर होती है और न रसादिक मे इनकी स्थिति हो सकती है। हास्यादिक रस भारती प्रभृति वृत्तियो मे ही अन्तर्भूत हैं। नीरस वस्तु को काव्य की सज्ञा नही दी जा सकती है। अतएव कैशिकी सात्त्वती एव आरभटी अर्थवृत्तियॉ हैं तथा भारती शब्दवृत्ति है।[5] रसार्णवसुधाकर मे भी कैशिकी आदि अर्थवृत्तिरूप मे समुपवर्णित हैं।[6]

प्रकृत रूपक मे कवि ने सात्त्वती एव आरभटी के समस्त भेदो का सुन्दर निरूपण किया है तथा कैशिकी का यथास्थान आशिक प्रयोग किया है, भारती वृत्ति तो सर्वत्र व्याप्त है।

---

१ चतस्रो वृत्तयो ह्येता सर्वनाटयस्य मातृका। —साहित्यदर्पण ६/१२३ का पूर्वार्ध

२ नाटयस्याभिनेयकाव्यस्य मातर इव मातर। आभ्यो हि वर्णनीयत्वेन कविहृदये व्यवस्थिताभ्य काव्यमुत्पद्यते। नाटय इति च प्रस्तावापेक्षम्। तेनानभिनेयेऽपि काव्ये वृत्तयो भवन्त्येव। —नाट्यदर्पण तृतीयविवेक पृ० ६८

३ चतस्र इति चतुर्भेदत्वमन्यतमचेष्टाशप्राधान्यविवक्षया अपरथाऽनेक व्यापारसवलितमेकमेव वृत्तितत्वम्। न नाम प्रबन्धेषु व्यापारान्तरासवलित कोऽप्येकाकी कायिको वाचिको मानसो वा व्यापारो लक्ष्यते। कायिक्यो हि व्यापृतयो मानसैर्वाचिकैश्च व्यापारै सभिद्यन्ते, अत सकीर्णत्वेऽप्यशप्राधान्यापेक्षया वृत्तयश्चतस्र।
—वही तृतीयविवेक पृ० २५४

४ एभिरगैश्चतुर्धेयम् नार्थवृत्तिरत परा।
चतुर्थी भारती सापि वाच्या नाटक लक्षणे।।
कैशिकी सात्त्वती चार्थवृत्तिमारभटीमिति।
पठन्त पञ्चमी वृत्तिमोद्भटा प्रतिजानते।। —दशरूपक २/६०–६१

५ सा तु लक्ष्ये क्वचिदपि न दृश्यते, न चोपपद्यते रसेषु, हास्यादीना भारत्यात्मकत्वात् नीरसस्य च काव्यार्थस्याभावात्। तिस्र एवैता अर्थवृत्तय। भारती तु शब्दवृत्तिरामुखागत्वात्तत्रैव वाच्या। —वही वृत्तिभाग

६ आसा तु मध्ये वृत्तीना शब्दवृत्तिस्तु भारती।
तिस्रोऽर्थवृत्तयश्शेषा तच्चतस्रो हि वृत्तय।। —रसार्णवसुधाकर १/२८६

सात्त्वती वृत्ति

सत्त्व अर्थात् मन, उसका व्यापार अतश्च मानस व्यापार को सात्त्वती वृत्ति कहते हैं। यह शोकहीन, सत्त्व, शौर्य, त्याग, दया, हर्ष, ऋजुता आदि भावो के अनन्तर होने वाला नायक का व्यापार है।[१] इसमे वीर रस मुख्य रूप से रहता है।[२] आचार्य विश्वनाथ के अनुसार सात्त्वती वृत्ति मे श्रृगार रस का अत्यल्प अवसर रहता है। अद्‌भुत रस का प्रकाशन एव करुण रस का अभाव रहता है।[३] सात्त्वती वृत्ति के चार अग हैं – सलापक उत्थापक, साड्घात्य तथा परिवर्तक।[४]

सलापक

नाना प्रकार के भावो तथा रसो से युक्त, पात्रो की गाम्भीर्यपूर्ण उक्ति को सलापक कहते हैं।[५] द्वितीय अक मे धनुर्भग के अनन्तर क्रुद्ध परशुराम राम का अन्वेषण करते हुए कन्यान्त पुर मे प्रविष्ट होते हैं। राम गम्भीरतापूर्वक परशुराम से शिव–प्रदत्त परशु के विषय मे पूछते हैं, जामदग्न्य भी उचित प्रत्युत्तर देते हैं –

राम — (सधैर्यबहुमान निर्वर्ण्य) अय स किल य सपरिवारकार्तिकेयविजयावर्जितेन भगवता नीललोहितेन सहस्रपरिवत्सरान्तेवासिने तुभ्य प्रसादीकृत परशु ।[६]

जामदग्न्य — आ दाशरथे। स एवायमाचार्यपादाना प्रिय परशु ।

अस्त्रप्रयोगखुरलीकलहे गणाना सैन्यैर्वृतोऽपि जित एव मया कुमार ।
एतावतापि परिरभ्य कृतप्रसाद प्रादादिम प्रियगुणो भगवान्गुरुर्मे।।[७]

उत्थापक

शत्रुपक्ष को उत्तेजित करने के लिये प्रयुक्त वाणी को उत्थापक कहते हैं।[८] इसमे एक पात्र दूसरे पात्र को पहले युद्ध के लिये उत्तेजित करता है।[९] द्वितीय अक मे जामदग्न्य राम से तिरस्कृत

---

१ विशोका सात्त्वती सत्त्वशौर्यत्यागदयार्जवै। –दशरूपक २/५३ का पूर्वार्ध
२ वीरे सात्त्वती । –वही २/६२
३ सहर्षा क्षुद्रश्रृगारा विशोका साद्‌भुता तथा। –साहित्यदर्पण ६/१२६ का पूर्वार्ध
४ सलापोत्थापकावस्या साडघात्य परिवर्तक ।। –दशरूपक २/५३ का उत्तरार्ध
५ (क) सलापो गभीरोक्तिर्नानाभावरसा मिथ । –दशरूपक २/५४ का पूर्वार्ध
(ख) सलाप स्याद्गभीरोक्तिर्नानाभावसमाश्रय ।। –साहित्यदर्पण ६/१३१ का उत्तरार्ध
६ महावीरचरितम् २/३३–३४
७ वही २/३४
८ उत्तेजनकरो शत्रोर्वागुत्थापक उच्यते।। –साहित्यदर्पण ६/१३० का उत्तरार्ध
९ उत्थापकस्तु यत्रादौ युद्धायोत्थापयेत्परम्।। –दशरूपक २/५४ का उत्तरार्ध

हो, क्रुद्ध होकर, उन्हे पहले प्रहार करने के लिये उत्तेजित करते हैं – आ निर्भर क्षत्त्रियबटो ! अति नाम प्रगल्भसे।

अपि च

प्रहर नमतु चाप प्राक्प्रहारप्रियोऽह मयि तु कृतनिघाते कि विदध्यात्परेण।
झटिति विततवह्न्यद्गारभास्वत्कुठारप्रविघटितकठोरस्कन्धबन्ध कबन्ध ।।[1]

साघात्य

मन्त्रशक्ति, अर्थशक्ति या दैवशक्ति आदि के द्वारा प्रतिपक्षी के सघ का भेदन साघात्य कहलाता है।[2] राक्षसराज रावण का अमात्य माल्यवान् परशुराम को राम के विरुद्ध प्रस्तुत करने की योजना शूर्पणखा के समक्ष बनाता है –

यदि प्रपद्येत धनु प्रमाथौ शिष्यस्य शभोर्न तितिक्षते स ।[3]

अपि च

अन्यतरविजयेऽपि क्षत्रियान्तकश्चेद्राजपुत्र विजयेत। यत नैनमनभिहत्यास्य मन्युर्विरमेत्। एव च सिद्ध न समीहित रामनिधनम्[4], 'परशुरामोत्तेजन कर्त्तव्यमिति'[5] 'तदुत्तिष्ठ ! मिथिलाप्रस्थापनाय जामदग्न्यमुत्तेजयितु महेन्द्रद्वीपमेव गच्छाव । द्रष्टव्यश्च तत्र भार्गव'।[6]

परिवर्तक

पराक्रम से सम्बद्ध आरम्भ किये गये कार्य का परित्याग कर, उससे भिन्न कार्य मे प्रवृत्त होना 'परिवर्तक' कहलाता है।[7]

---

१ महावीरचरितम् २/४६
२ (क) मन्त्रार्थदैवशक्त्यादे साङघात्य सघभेदनम्। –दशरूपक २/५४ का पूर्वार्ध
(ख) साहित्यदर्पण ६/१३१ का पूर्वार्ध
३ महावीरचरितम् २/१२ का पूर्वार्ध
४ वही २/१२–१३
५ वही २/१३–१४
६ वही २/१४–१५
७ प्रारब्धोत्थानकार्यान्यकरणात्परिवर्तक ।। –दशरूपक २/५५ का उत्तरार्ध

रामवधार्थ आगत जामदग्न्य राम के व्यक्तित्व से प्रभावित हो उनका आलिगन करना चाहते हैं–

हेरम्बदन्तमुसलोल्लिखितैकभित्ति वक्षो विशाखविशिखव्रणलाञ्छित मे।
रोमाञ्चकञ्चुकितमद्भुतवीरलाभात् सत्य ब्रवीमि परिरब्धुमिवेच्छति त्वाम्।।[१]

आरभटी

आरभटी वृत्ति माया इन्द्रजाल सग्राम क्रोध, उद्भ्रान्ति आदि कार्यकलापो से परिपूर्ण होती है।[२] आचार्य भरत मुनि के अनुसार आर अर्थात् अकुश के समान उद्धत योद्धा आरभट कहलाते हैं। आरभटीवृत्ति मे आरभट अर्थात् योद्धा के गुण अनृत, द्वन्द्व, वञ्चना आदि का प्राचुर्य रहता है।[३] यह वृत्ति आगिक, वाचिक, सात्त्विक एव आहार्य चतुर्विध अभिनयो से सम्बद्ध है। इसमे दीप्त रस तथा भावो का समन्वय रहता है – भयानके च बीभत्से रौद्रे चारभटी भवेत्।[४] आरभटी वृत्ति के चार अग होते हैं – सक्षिप्ति, सफेट, वस्तूत्थापन तथा अवपातन।[५]

सक्षिप्ति

शिल्पादिक के द्वारा किसी वस्तु की सक्षिप्त रूप मे सृष्टि कर देना सक्षिप्ति है।[६] कतिपय आचार्यों के अनुसार पूर्व नायक के हट जाने पर दूसरे नायक का आ जाना सक्षिप्ति है।[७] आचार्य धनिक नायक की एक अवस्था के हट जाने पर दूसरी अवस्था का आगमन सक्षिप्ति मानते हैं।[८]

राम द्वारा दर्प–दमन के अनन्तर परशुराम उद्धत स्वभाव को छोडकर अत्यन्त विनम्र हो जाते हैं। वह कृतज्ञता व्यक्त करते हैं –

---

१ महावीरचरितम् २/३८
२ आरभटीपुन।
मायेन्द्रजालसग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितै।। –दशरूपक २/५६
३ आरभटप्रायगुणा तथैव बहुकपटवञ्चनोपेता।
दम्भानृतवचनवती त्वारभटी नाम विज्ञेया।। –नाट्यशास्त्र
४ वही
५ (क) वस्तूत्थापनसफेटो सक्षिप्तिरवपातनम्।। इति भेदास्तु चत्वार आरभट्या प्रकीर्तिता।
–साहित्यदर्पण ६/१३३–३४
(ख) सक्षिप्तिका स्यात्सफेटो वस्तूत्थानावपातने। –दशरूपक २/५७
६ सक्षिप्तवस्तुरचना सक्षिप्ति शिल्पयोगत। –वही २/५७ का उत्तरार्ध
७ पूर्वनेतृनिवृत्त्याऽन्ये नेत्रन्तरपरिग्रह। –वही २/५८ का पूर्वार्ध
८ पूर्वनायकावस्थानिवृत्त्यावस्थान्तरपरिग्रहमन्ये सक्षिप्तिका मन्यन्ते। –वही २/५७–५८ का वृत्तिभाग

पुण्या ब्राह्मणजातिरन्वयगुण श्लाघ्य चरित्र च मे
येनैकेन हृतान्यमूनि हरता चैतन्यमात्रामपि ।
एक सन्नपि भूरिदोषगहन सोऽय त्वया प्रेयसा
वत्स ब्राह्मणवत्सलेन शमित क्षेमाय दर्पामय ।।[1]

परशुराम जनक द्वारा प्रदत्त आसन ग्रहण करते हैं[2] – यदभिरुचित सूर्यशिष्यान्तेवासिने राजन्यश्रोत्रियाय।[3] परशुराम राम से वनगमन की आज्ञा मॉगते हैं– 'रामभद्र ! अनुमोदस्व मामरण्यगमनाय[4] तथा प्रस्थान करते समय अश्रु प्रवाहित करते हैं– (सास्त्र परिक्रम्य) आयुष्मन् ! प्रतिनिवर्तस्व।[5]

वाली मरते समय सुग्रीव को वानरराज एव अगद को कुमार नियुक्त करता है। यहॉ पूर्वनायक वाली के स्थान पर सुग्रीव का आगमन सक्षिप्ति है– वत्स विभीषण ! पश्य पश्य। सुष्ठु शोभते वत्ससुग्रीवस्य वक्षसि सहस्रपुष्करमालागुण ।[6]

सफेट

क्रोध एव उत्तेजनावश दो व्यक्तियो का एक दूसरे पर प्रहार करना 'सफेट' कहलाता है।[7] मेघनाद एव रावण लक्ष्मण पर क्रमश नागपाशास्त्र एव शतघ्नी से प्रहार करते हैं–

यावन्मन्त्रप्रभावादनधिगतगतीन्मेघनादप्रणुन्ना–
न्दुर्भेद्यान्नागपाशान्विहगपरिवृढास्त्रप्रयोगाद्व्यधूनोत्।
तावद्रक्षोविनेत्रा पुनरतिरभस मर्मणि क्रोधभूम्ना
गाढ विद्ध शतघ्न्या हनुमति सहसा मोहनिघ्नो न्यपप्तत्।।[8]

वस्तूत्थापन

वस्तु को मायादिक के द्वारा उपस्थित कर देना वस्तूत्थापन है।[9]

---

१ महावीरचरितम् ४/२२
२ वही ४/२५
३ वही ४/२७–२८
४ वही ४/३१–३२
५ वही ४/३८–३६
६ वही ५/५६–५७
७ सफेटस्तु समाघात क्रुद्धसरब्धयोर्द्वयो ।। –दशरूपक २/५८ का उत्तरार्ध
८ महावीरचरितम् ६/४८
६ मायाद्युत्थापित वस्तु वस्तूत्थापनमिष्यते। –दशरूपक २/५६ का पूर्वार्ध

राम और लक्ष्मण रावण एव मेघनाद का शिरच्छेदन करते हैं किन्तु पुन अनन्त शिर प्रकट हो जाते हैं –

एताभ्या राघवाभ्या सकुतुकमिषुभिश्छिद्यमानेषु मूर्ध–
स्वेकस्यैकोऽप्यनन्त किमु सरसगुणो वर्णनीयोऽपरस्य।
एतत्सपश्यतोरप्यतिचिरमनयो कोऽप्यचिन्त्य प्रभावो
यत्रोत्साहौ न धैर्यं विरमति न शिरश्छेदत पत्त्रिणोऽपि।।[1]

अवपात

पात्रो के निष्क्रमण, प्रवेश, त्रास, विद्रव आदि के वर्णनस्थल मे अवपात नामक आरभटी वृत्ति होती है।[2]

हनूमान् द्वारा लका–दहन से राक्षसगण भयातुर हो इधर–उधर भागते हैं –

भ्रान्ती सप्ताधिकाना प्रविदधदरुणैरर्चिषा चक्रवालै–
र्द्राग्वीराणामलक्ष्यप्रसृतिरतिसमुत्तप्तरौक्मालयेषु।
अर्धप्लुष्टापसर्पद्रजनिचरभटोद्गाढकल्यान्तशक
लका प्रौढो हुताश सह परिदलितोऽब्धेस्त्रिकूटेन लीढे।।[3]

राम का अन्वेषण करते हुए परशुराम को कन्यान्त पुर मे प्रविष्ट होते देखकर परिजन उन्हे रोक नहीं पाते, उद्विग्न होकर भागते हैं –

अहो ! समन्तत एव 'हा देव चन्द्रमुख रामचन्द्र ! हा जामातृक' इति परिदेवनमुखर–कातरोद्विग्नसमस्तपरिजन पलायितमस्मद्राजकुलम्।[4]

भारती वृत्ति

नट द्वारा किया गया सस्कृतनिष्ठ वाचिक व्यापार भारती वृत्ति है।[5] आचार्य भरत के अनुसार भारती वृत्ति पुरुषो द्वारा सस्कृत भाषा मे प्रयुक्त वाचिक व्यापार है, स्त्री पात्रो का वाचिक व्यापार इसके अन्तर्गत नहीं आता। स्त्री पात्रो की वृत्ति सात्त्वती अथवा कैशिकी वृत्ति है। पुरुषो से तात्पर्य

---

१ महावीरचरितम् ६/६१
२ अवपातस्तु निष्क्रामप्रवेशत्रासविद्रवै ।। –दशरूपक २/५६
३ महावीरचरितम् ६/४
४ वही २/२०–२१
५ भारती सस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रय । –दशरूपक ३/५ का पूर्वार्ध

प्रधान पुरुषचरितो का वाग्व्यापार है।[1] भारती वृत्ति समस्त रसो मे प्रयुक्त होती है।[2] भारती वृत्ति के चार अग हैं – प्ररोचना, वीथी, प्रहसन और आमुख।[3] भारती वृत्ति के लक्षण मे प्रयुक्त प्राय पद का अभिप्राय यह है कि रूपको मे सस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत मे भी इस वृत्ति का प्रयोग मिलता है। किन्तु भवभूति ने प्राकृत मे भारती वृत्ति का प्रयोग न कर इसे शुद्ध सस्कृतमय रखा है। भवभूति का भारतीवृत्ति विषयक प्रेम प्रकृत नाटक की प्रस्तावना मे ही दृष्टिगोचर होता है–

महापुरुषसरम्भो यत्र गम्भीरभीषण ।
प्रसन्नकर्कशा यत्र विपुलार्था च भारती।।[4]

प्ररोचना

काव्यार्थ की प्रशसा के द्वारा सामाजिको को उन्मुख करना प्ररोचना है।[5] नान्दी पाठ के अनन्तर सूत्रधार कालप्रियानाथ की यात्रा के अवसर पर महावीरचरितम् नाटक के अभिनय की सूचना देता है जिसमे महावीरपुरुषो की गाम्भीर्य एव भयावह वीरता वर्णित है, वह प्रसादगुणयुक्त, गाढबन्ध एव अर्थबहुल है। उसमे अप्राकृत वीरपुरुषो का वीर रस वर्णित है। महावीरचरितम् रामचरित से सम्बद्ध है। इसमे वश्यवाक् कवि का वाक्समूह है तथा सामाजिक भी विदग्ध हैं –

सूत्रधार भगवत कालप्रियनाथस्य यात्रायामार्यमिश्रा समादिशन्ति –

महापुरुषसरम्भो यत्र गम्भीरभीषण ।
प्रसन्नकर्कशा यत्र विपुलार्था च भारती।।[6]

किञ्च

अप्राकृतेषु पात्रेषु यत्र वीर स्थितो रस ।
भेदै सूक्ष्मैरभिव्यक्तै प्रत्याधार विभज्यते।।[7]

---

१ या वाक्प्रधाना पुरुषप्रयोज्या स्त्रीवर्जिता सस्कृतवाक्ययुक्ता।
स्वनामधेयैर्भरतै प्रयुक्ता सा भारती नाम भवेत्तु वृत्ति ।। –नाटयशास्त्र २२/२५

२ वृत्ति सर्वत्र भारती।। –दशरूपक २/६२

३ भेदै प्ररोचनायुक्तैर्वीथीप्रहसनामुखै ।। –वही ३/५ का उत्तरार्ध

४ महावीरचरितम् १/२

५ (क) उन्मुखीकरण तत्र प्रशसात प्ररोचना। –दशरूपक ३/६ का पूर्वार्ध
(ख) प्रस्तुतार्थप्रशसनेन श्रोतृणा प्रवृत्त्युन्मुखीकरण प्ररोचना। –वही वृत्तिभाग

६ महावीरचरितम् १/२

७ वही १/३

'स सदर्भोऽभिनेतव्य' इति। (सहर्षम्) महावीरचरित प्रयोक्तव्यमत्यादिष्टमर्थतोऽत्रभवद्भि ।[1]

अपि च

वश्यवाच कवेर्वाक्य सा च रामाश्रया कथा।
लब्धश्च वाक्यनिष्यन्दनिष्पेषनिकषो जन ।।[2]

एतदनन्तर सूत्रधार कवि के निवासस्थान पद्मपुर पितामह भट्टगोपाल, पिता नीलकण्ठ, माता जतुकर्णी आदि का परिचय तथा गुरु ज्ञाननिधि के विषय मे विस्तृत वर्णन करता है।[3]

महावीरचरितम् मे वीर एव अद्भुत रस का समावेश है, धर्मद्वेषियो के शत्रु राम का चरित उपनिबद्ध है, इसमे जगत्त्रय का दु ख एव उद्धार वर्णित है –

तेनेदमुदधृयजगत्त्रयमन्युमूलमस्तोकवीरगुरुसाहसमद्भुत च।
वीराद्भुतप्रियतया रघुनन्दनस्य धर्मद्रुहो दमयितुश्चरित निबद्धम्।।[4]

उपर्युक्त वर्णन मे 'कालप्रियानाथ' से देश का निर्देश किया गया है। महापुरुषसरम्भ' आदि से प्रयोज्य, 'अस्ति दक्षिणापथे ' से कवि–परिचय तथा 'तेनेदमुदधृय निबद्धम्' से काव्य की प्रशसा वर्णित है।

आमुख

जहॉ सूत्रधार (स्थापक) नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक (सूत्रधार का अनुचर नट) आदि को प्रस्तुत अर्थ का आक्षेप करने वाला अपना कार्य बतलाता है, उसे आमुख या प्रस्तावना कहते हैं।[5] प्रस्तावना के चार अग होते हैं – कथोद्घात, प्रवृत्तक, प्रयोगातिशय एव वीथी मे होने वाले १३ अग।[6]

---

१ महावीरचरितम् १/३–४
२ वही १/४
३ वही १/४–५, ५
४ वही १/६
५ सूत्रधारो नटी ब्रूते मार्षं वाऽथ विदूषकम्।।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्यायत्तदामुखम्। प्रस्तावना वा। –दशरूपक ३/७–८
६ तत्र स्यु कथोद्घात प्रवृत्तकम्।।
प्रयोगातिशयश्चाथ वीथ्यङ्गानि त्रयोदश। –वही ३/८–९

प्रयोगातिशय

यह वह है' इस प्रकार के सूत्रधार के कथन से सूचित होकर जहाँ पात्र प्रविष्ट होता है, उसे प्रयोगातिशय कहते हैं।[1]

सूत्रधार प्रस्तावना के अन्त मे राजा कुशध्वज के सीता–उर्मिला–सहित विश्वामित्र के यज्ञावसर पर उपस्थित होने की सूचना देता है। तदनन्तर इन पात्रो का प्रवेश होता है अत प्रयोगातिशय है –

सूत्रधार –

निमन्त्रितस्तेन विदेहनाथ स प्राहिणोद् भ्रातरमात्तदीक्ष ।
कुशध्वजो नाम स एष राजा सीतोर्मिलाभ्या सहितोऽभ्युपैति ।।[2]

(इति निष्क्रान्तौ)

(तत प्रविशति रथस्थो राजा सूत कन्ये च)[3]

कैशिकी वृत्ति

जिसमे विशेष प्रकार की वेश–भूषा एव स्त्री पात्रो का बाहुल्य रहता है, नृत्य एव गीत की सुन्दर योजना एव श्रृगारप्रधान व्यवहार तथा कामोपभोग से सम्बद्ध व्यापारो का प्राधान्य रहता है, उसे कैशिकी वृत्ति कहते हैं।[4] कैशिकी वृत्ति के चार प्रकार हैं – नर्म, नर्मस्फिञ्ज, नर्मस्फोट एव नर्मगर्भ।[5]

नर्मस्फोट

जहाँ भय, हास, हर्ष, त्रास, रोष आदि भावो के कुछ अशो द्वारा अल्प रस सूचित होता है, उसे नर्मस्फोट कहते हैं।[6]

---

१ एषोऽयमित्युपक्षेपात्सूत्रधारप्रयोगत ।
पात्रप्रवेशो यत्रैष प्रयोगातिशयो मत ।। –दशरूपक ३/११

२ महावीरचरितम् १/६

३ वही १/६–१०

४ या श्लक्ष्णनेपथ्यविशेषचित्रा स्त्रीसकुला पुष्कलनृत्यगीता।
कामोपभोगप्रभवोपचारा सा कैशिकी चारुविलासयुक्ता।। –साहित्यदर्पण ६/१२४

५ नर्मतत्स्फिञ्जतत्स्फोटतद्गर्भैश्चतुरङ्गिका। –दशरूपक २/४८ का पूर्वार्ध

६ नर्मस्फोटस्तु भावाना सूचितोऽल्परसो लवै ।। –वही २/५१ का उत्तरार्ध

रामवधार्थ परशुराम के आगमन से सीता भयाक्रान्त हो जाती हैं, वह राम को परशुराम के समक्ष प्रस्तुत होने से रोकना चाहती हैं। राम एव सखियाँ सीता को आश्वस्त करना चाहते हैं –

राम प्रिये ! स्वस्था सती निवर्तस्व ।

सख्य उद्वर्तितमिदानी प्रियसख्या रसान्तरेण लज्जालुत्वम्।

राम जित स्नेहेन। तर्हि मुक्त्वा धनुर्गच्छामि।

सीता ततो बलादेव धारयिष्यामि।[1]

यहाँ राम एव सीता के भावो से श्रृगार रस की पुष्टि हुयी है, अत नर्मस्फोट है।

■

---

१ महावीरचरितम् २/२०–२२

पञ्चम अध्याय

चरित्र चित्रण

पञ्चम अध्याय

चरित्र–चित्रण

वस्तु तत्त्व के विश्लेषण के अनन्तर रूपक के द्वितीय भेदक तत्त्व 'नेता' अर्थात् नायक–नायिका एव अन्य पात्रो के चारित्रिक वैशिष्ट्यो पर प्रकाश डालना अपरिहार्य हो जाता है। रूपक मे प्रधान फल का सम्बन्ध नायक के साथ होता है, अत मुख्य रूप से नायक तथा फलप्राप्ति मे सहायक अन्य पात्रो का चरित्राकन रूपक प्रबन्ध मे अपरिहार्य है। आचार्य धनञ्जय के अनुसार प्रख्यात इतिवृत्त मे नायक के प्रतिकूल अथवा रसविरुद्ध प्रसग का परिहार कर देना चाहिये अथवा उसे परिमार्जित कर सर्वथा नवीन रूप मे प्रस्तुत करना चाहिये –

> यत्तत्रानुचित किञ्चिन्नायकस्य रसस्य वा।।
> विरुद्ध तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत्।[1]

कवि ने रामचरित से सम्बद्ध लोकविश्रुत कथानक को सर्वथा मौलिक रूप देकर पात्रो की चारित्रिक विसगतियो का सम्यक् परिहार किया है। भवभूति ने विभिन्न कोटियो के पात्रो का सन्निवेश किया है– देव, मानव, राक्षस, वानर, पक्षी आदि। महावीरचरितम् मे राम–सीता–परिणय से लेकर राज्याभिषेक पर्यन्त घटनाक्रम उपनिबद्ध है, जिसमे समस्त पात्र व्यक्तिगत माहात्म्य से सुशोभित हैं। अत उनके गुण–शील का निरूपण समीचीन होगा।

राम

प्रकृत नाटक के नायक राम हैं। आचार्य धनञ्जय के अनुसार नाटक का नायक उत्कृष्ट गुणो से समन्वित, धीरोदात्त, प्रसिद्ध वश मे समुत्पन्न, प्रतापवान्, यश कामी, उत्साहयुक्त, वेदपरित्राता, पृथ्वीपालक, राजर्षि अथवा दिव्य नायक हो सकता है।[2] साहित्यदर्पणकार के मत मे नायक दिव्य,

---

१ दशरूपक ३/२४–२५

२ अभिगम्यगुणैर्युक्तो धीरोदात्त प्रतापवान् ।।
कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यास्त्राता महीपति ।
प्रख्यातवशो राजर्षिर्दिव्यो वा यत्र नायक ।। – वही ३/२२–२३

अदिव्य अथवा दिव्यादिव्य तीनो मे से कोई भी हो सकता है।[1] उनके अनुसार राजर्षि यथा दुष्यन्त प्रभृति, दिव्यचरित यथा–भगवान् श्रीकृष्ण तथा दिव्यादिव्य यथा रामचन्द्र प्रभृति सुस्पष्ट हैं।[2]

आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार 'राजा' पद से तात्पर्य समस्त क्षत्रिय जाति से है, चाहे वह अभिषिक्त हो अथवा अनभिषिक्त। क्षत्रिय भी मर्त्य लोक का हो, देव लोक का नहीं। वस्तुत नाटक का मूलभूत उद्देश्य रामवद् वर्त्तितव्य, न रावणवद्–विषयक सरस उपदेश करना है। किन्तु देव गण तो इच्छामात्र से ही दुष्कर कार्य सम्पन्न करने मे सक्षम हैं, अतएव उनका चरित मर्त्यों के लिये उपदेशपरक नहीं है। अत नाटक मे दिव्य नायक का चित्रण युक्तिसगत नहीं माना जा सकता है।[3]

आचार्य धनञ्जय ने नायक के सामान्य गुणो का निर्देश किया है, उनके अनुसार नायक विनम्र, मधुर, त्यागशील, चतुर, प्रिय बोलने वाला, रक्तलोक, पवित्र, वाक्पटु , प्रख्यात वश मे उत्पन्न, स्थिर, युवा, बुद्धि–उत्साह–स्मृति–प्रज्ञा–काल तथा मान से युक्त, दृढ, तेजस्वी, शास्त्रज्ञ एव धार्मिक होता है।[4] नायक के चार भेद हैं– ललित, शान्त, उदात्त तथा उद्धत।[5] दशरूपककार ने आचार्य भरत[6] का अनुसरण करते हुये इन नायक–भेदो के पूर्व 'धीर' पद प्रयुक्त किया है। यहॉ 'धीर' पद से तात्पर्य है जो दृढ सकल्पवाला हो, दृढसकल्पवान् नायक ही फलप्राप्ति के प्रति प्रयत्नशील हो सकता है।[7] आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार धीरव्यक्ति महासकट मे अविचलित रहता है।[8]

---

१ दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मत ।। –साहित्यदर्पण ६/६ का उत्तरार्ध

२ राजर्षयो दुष्यन्तादय। दिव्या श्रीकृष्णादय। दिव्यादिव्य यो दिव्योऽप्यात्मनि नराभिमानी। यथा श्रीरामचन्द्र –वही ६/६ का वृत्तिभाग

३ राजेति क्षत्रियमात्रम्। न पुनरभिषिक्त एव राम–जीमूतवाहन–पार्थादीनाम्–नभिषिक्तानामपि दर्शनात्। क्षत्रियो मर्त्य एव तेन न देवनेतृक नाटकमित्युक्त भवति। नाटक हि – 'रामवद् वर्त्तितव्य न रावणवद् इति उपदेशपरम्। देवताना तु दुरुपपादस्याप्यर्थस्येच्छा मात्रत एव सिद्धिरिति तच्चरितमशक्यानुष्ठानत्वात् न मर्त्यानामुपदेशयोग्यम् , तेन ये दिव्यमपि नेतार मन्यन्ते न ते सम्यगमसतेति। –नाट्यदर्पण १/५ का वृत्तिभाग

४ नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्ष प्रियवद । रक्तलोक शुचिर्वाग्मी रूढवश स्थिरो युवा ।।
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वित । शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिक ।। –दशरूपक २/१–२

५ भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम्। –वही २/३ का पूर्वार्ध

६ धीरोद्धता धीरललिता धीरोदात्तास्तथैव च ।
धीरप्रशान्तकाश्चैव नायका परिकीर्तिता ।। –नाट्यशास्त्र २४/१७

७ नाट्यस्यान्त गच्छति तस्माद्वै नायकोऽभिहित । –वही ३५/३२

८ धीरोधैर्यं महाव्यसनेऽप्यकातर्यं विशेषण येषाम् उद्धतादीना धीरोद्धत–धीरोदात्त–धीरललित–धीरशान्ता इत्यर्थ। –नाट्यदर्पण १/६ का वृत्तिभाग

आचार्य भरत के अनुसार देव गण धीरोद्धत, राजा धीरललित, सेनापति तथा अमात्य धीरोदात्त तथा ब्राह्मण एव वणिक् धीरप्रशान्त प्रकृति के होते हैं –

'देवा धीरोद्धता ज्ञेया स्युर्धीरललिता नृपा ।
सेनापतिरमात्यश्च धीरोदात्तो प्रकीर्त्तितौ।।
धीरप्रशान्ता विज्ञेया ब्राह्मणा वणिजस्तथा'।[1]

भरतमुनिकृत यह वर्गीकरण युक्तिसगत नही माना जा सकता है। नाट्यदर्पणकार के अनुसार देव गण धीरोद्धत सेनापति, मन्त्री प्रभृति धीरोदात्त, वणिक् एव ब्राह्मणादिक धीरशान्त तथा राजा चतुर्विध हो सकते हैं।[2] इस सन्दर्भ मे आचार्य धनञ्जय ने नायक–भेदो की विशेषताओ का सम्यक् निरूपण किया है। उनके मत मे धीरललित नायक सर्वथा निश्चिन्त, नृत्य एव गीत प्रभृति कलाओ मे आसक्त, सुखी तथा कोमल स्वभाव का होता है।[3] धीरप्रशान्त नायक सामान्य गुणो से युक्त ब्राह्मण, वैश्य अथवा मन्त्री–पुत्र आदि होता है।[4] धीरोदात्त नायक महासत्त्वसम्पन्न अर्थात् शोकक्रोधादिक से अनभिभूत, गम्भीर, क्षमाशील, आत्मप्रशसा न करने वाला, अहकारनिगूढ तथा दृढव्रत होता है।[5] धीरोद्धत नायक दर्प एव मात्सर्य से परिपूर्ण, माया एव छद्म से युक्त, अहकारी, चञ्चल, क्रोधी तथा आत्मश्लाघा करने वाला होता है।[6]

राम धीरोदात्त प्रकृति के नायक हैं। कवि ने राम मे नायकोचित समस्त गुणो का समावेश किया है। नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से शील–गुण प्रभृति का विवेचन करने के पूर्व राम की शरीराकृति एव सौन्दर्य पर विचार करना उपयुक्त होगा।

राम के असाधारण व्यक्तित्व, रूप, आकृति से स्वपक्ष तथा परपक्ष के लोग प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते हैं। राजा कुशध्वज बाल्यावस्था की रमणीय मूर्ति राम को देखते ही 'क्षत्रिय' होने का

---

१ नाट्यशास्त्र २४/१८ १६

२ देवा धीरोद्धता धीरोदात्ता सेन्येशमन्त्रिण ।
धीरशान्ता वणिग्विप्रा राजानस्तु चतुर्विधा ।। –नाट्यदर्पण १/७

३ निश्चिन्तो धीरललित कलासक्त सुखी मृदु –दशरूपक २/३ का उत्तरार्ध

४ सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिक । –वही २/४ का पूर्वार्ध

५ महासत्त्वोऽतिगम्भीर क्षमावानविकत्थन ।।
स्थिरो निगूढाहकारो धीरोदात्तो दृढव्रत । –वही २/४–५

६ दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायण
धीरोद्धतस्त्वहकारी चलश्चण्डो विकत्थन । –वही २/५–६

अनुमान करते हैं।[1] राम का रूप अप्रतिम है– वे पृष्ठभाग पर तरकस रखे हुए हैं, वक्षस्थल पर भस्मावलेप है, रुरुमृग का चर्म धारण किये हैं। मूँज की मेखला से नियन्त्रित मजीठ रग का वस्त्र है, हाथो मे अक्षसूत्र तथा पिप्पल दण्ड है।[2] सीता प्रथम दर्शन मे ही राम की सौम्य आकृति पर मुग्ध हो जाती हैं– 'सौम्यदर्शनौ खल्वेतौ'।[3] परशुराम यत्र–तत्र विस्तीर्ण केश–श्रृखला, विमुग्धकारी मुख, स्वाभाविक शोभा सम्पन्न, धीर–गम्भीर राम से अत्यधिक प्रभावित होते हैं।[4] शूर्पणखा नेत्रो के लिये प्रीतिकर, सौम्य शरीर वाले राम को देखकर विचलित हो जाती है, यद्यपि वह चिरकालीन वैधव्य दु ख से पूर्णतया परिचित है।[5] वाली के कथन से इस तथ्य की अभिव्यञ्जना होती है कि राम का दर्शन कर उसकी ऑखे तृप्त नहीं हो पा रही हैं।[6]

राम मे असाधारण तेजस्विता निहित है। राम के तेजप्रभाव से प्रस्तरभूत अहल्या शापमुक्त हो जाती हैं। मुनि विश्वामित्र इस घटना से कुशध्वज प्रभृति को अवगत कराते हैं– 'तस्या पाप्म–नाशरीरमन्धतामिस्रमभ्ययात्। सेयमद्य रामभद्रतेजसा तस्मादेनसो निरमुच्यत'।[7] राम प्रत्यञ्चाकर्षणमात्र से धनुर्भंग करते हैं, तो दूत सर्वमाय आश्चर्यचकित होकर विचार करता है– 'अहो ! दुरात्मनो रामहतकस्य सर्वंकष प्रभाव।[8]

राम समदर्शी हैं, वे शोक एव क्रोधादिक विकारो से अभिभूत नहीं होते हैं। राम सीता के प्रति आसक्त हैं, किन्तु रावण का सीता–परिणय विषयक प्रस्ताव सुनकर वे विचलित नहीं होते, अपितु

---

१ प्रकृत्या पुण्यलक्ष्मीकौ कावेतौ ज्ञायते त्विदम्। राजन्यदारकौ नून कृतोपनयनाविति ।।
द्वितीयस्य च वर्णस्य प्रथमस्याश्रमस्य च। अहो रम्यानयोर्मूर्तिर्वयसो नूतनस्य च ।। –महावीरचरितम् १/१६ १७

२ चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वय पृष्ठतो
भ[illegible]लाञ्छनमुरो धत्ते त्वच रौरवीम्।
मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितमधोवासश्च माञ्जिष्ठिक
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलय दण्डोऽपर पैप्पल ।। –वही १/१८

३ वही १/१८–१६ पृ० १८

४ चञ्चत्पञ्चशिखण्डमण्डनमसौ मुग्धप्रगल्भ शिशु–
र्गम्भीर च मनोहर च सहजश्रीलक्ष्म रूप दधत्।
द्राग्दृष्टोऽपि हरत्यय मम मन सौन्दर्यसारश्रिया। –वही २/३२

५ अहो समग्रसौभाग्यलक्ष्मीपरिग्रहेण लोचनरसायन सौम्यमस्य शरीरनिर्माणम् यदिदानी
चिरकालवैधव्यदु खप्रमुषितससारसौख्यस्यापि जनस्य चारित्र हृदये समाक्षिपति। –वही ४/४०–४१, पृ० १७७

६ आनन्दाय च विस्मयाय च मया दृष्टोऽसि दु खाय वा
वैतृष्ण्य तु ममापि सम्प्रति कुतस्त्वद्दर्शने चक्षुष। –वही ५/४६ का पूर्वार्ध

७ वही (पृ० २४–२५) १/२६–२७

८ वही १/५३–५४ पृ० ४६

लोकाचार बताकर रावण की प्रशसा करते हैं।[1] राम अत्यन्त उदार प्रकृति के हैं सौजन्यप्रकाशन की भावना उनमे कूट–कूट कर भरी हुयी है। राम की रावण विषयक प्रशसोक्ति सुनकर लक्ष्मण उसे सौजन्यप्रकाशन बताते हैं।[2]

सीता की सखियो से राम परशुराम के पराक्रम, कार्त्तिकेय–विजय, कश्यप मुनि को पृथ्वी–दान तपस्या आदि की प्रशसा करते हैं।[3] परशुराम अत्यन्त रोषपूर्वक राम का अन्वेषण करते हुए कन्यान्त पुर मे प्रविष्ट होते हैं तथा क्षत्रियो की उच्छृखलता, आधिपत्य विषयक आक्षेप करते हैं तथापि राम उनकी चरणवन्दना की अभिलाषा रखते हैं।[4]

• राम गाम्भीर्य एव धैर्य की प्रतिमूर्ति हैं। उनमे दृढता, स्वाभिमान तथा वीरता विषयक आत्मविश्वास स्थान–स्थान पर परिलक्षित होता है। वे भयाक्रान्त सीता से कहते हैं– परशुराम वीर हैं, तो मैं भी युद्धोद्यत के समक्ष प्रस्तुत होने मे सक्षम रघुवशी क्षत्रिय हूँ।[5] राम अत्यन्त निर्भीक होकर परशुराम के सम्मुख उपस्थित होते हैं–'अयमह भो। इत इतो भवान्'।[6] वह जामदग्न्य की कुठार–प्रहार विषयक गर्वोक्ति सुनकर उपहास–सा करते हुए उत्तर देते हैं– 'अय स किल य सपरिवार–कार्तिकेयविजयावर्जितेन भगवता नीललोहितेन सहस्त्रपरिवत्सरान्तेवासिने तुभ्य प्रसादीकृत परशु'।[7] परशुराम गर्भस्थशिशुसहार, इक्कीस बार क्षत्रिय जाति का वध आदि पराक्रम की प्रशसा करते हैं तो राम निर्भीक होकर इसे 'नृशसता' की सज्ञा देते हैं– 'नृशसता हि नाम पुरुषदोष तत्र का विकत्थना'?[8]

---

१ साधारण्यान्निरातक कन्यामन्योऽपि याचते।
किं पुनर्जगता जेता प्रपौत्र परमेष्ठिन ।। –महावीरचरितम् १/३१

२ अति हि सौजन्यमार्यस्य तस्मिन्नपि निसर्गवैरिणि निशाचरे बहुमान। –वही १/३१–३२

३ वही २/१६ २३ २४ २५

४ अभिनवधनुर्विद्यादर्पक्षमाय च कर्मणे
स्फुरति रभसात्पाणि [illegible] च। –वही २/३० का उत्तरार्ध

५ मुनिरयमथ वीरस्तादृशस्तत्प्रिय मे विरमतु परिकम्प कातरे क्षत्रियासि।
तपसि विततकीर्तेर्दर्पकण्डूलदोष्ण परिचरणसमर्थो राघवक्षत्रियोऽहम् ।। –वही २/२७

६ वही २/३०–३१

७ वही २/ ३३–३४, पृ० ८६

८ वही २/४८–४६

राम अत्यन्त विनम्र हैं। परशुराम–दमन के अनन्तर वह जामदग्न्य से अविनयव्यवहारार्थ क्षमा प्रार्थना करते हैं[1] तथा अनवरत प्रणाम करते हैं,[2] यहाँ राम की क्षमाशीलता ध्वनित होती है।

राम असाधारण पराक्रम से सम्पन्न हैं। वह भीषणाकृति[3], तालवृक्ष के समान ऊँची[4] ताटका का सहार करते हैं[5] तथा यज्ञविघ्नस्वरूप उपस्थित सुबाहु का वध करते हैं, मुनि विश्वामित्र ब्रह्मद्रोही–सहारक राम के पराक्रम की प्रशसा करते हैं।[6] जटायु सम्पाति को राम द्वारा चौदह सहस्र चौदह राक्षस तथा खर, दूषण, त्रिशिरा प्रभृति का अकेले ही सहार विषयक वृत्तान्त से अवगत कराते हैं। राम अतुलनीय पराक्रम सम्पन्न वाली का एक ही बाण से प्रहार कर वध कर देते हैं।[7] षष्ठ अक मे मन्दोदरी रावण से बताती है कि राम ने सागर पर अस्त्र प्रयुक्त किया, फलस्वरूप समुद्र का जल रक्तिम हो गया, ग्राह, कच्छप प्रभृति चेतनाशून्य हो गये, समुद्र मूर्च्छित होने लगा, शख–शुक्ति प्रभृति प्रस्फुटित होने लगे।[8] राम कुम्भकर्ण को बाणो से आवृत कर देते हैं[9] तथा दिव्यर्षि गण से आदिष्ट हो ब्रह्मास्त्र का स्मरण कर रावण का वध कर देते हैं।[10]

राम अविकत्थन हैं, अपने कृत्यो की प्रशसा करना उन्हे अभीप्सित नहीं है। वह ताटका प्रभृति राक्षस–सहार का वर्णन नहीं करते हैं। सप्तम अक मे अयोध्या–प्रत्यावर्तन के समय सीता खरदूषणादिक का नाम श्रवण कर भयाक्रान्त हो जाती हैं। राम सकल कार्यनिष्पादनार्थ लक्ष्मण की प्रशसा करते हैं– देवि अल शकया अभिधानमात्रमवशिष्यते।

> शरासनस्य टकारात्सौमित्रे केवल किल।
> रक्षसा प्रलय सिहगर्जनाद्दन्तिना यथा।।[11]

---

१ दैवात्कृतस्त्वयि मया विनयापचार तत्र प्रसीद भगवन्नयमञ्जलिस्ते ।। – महावीरचरितम् ४/२१ का उत्तरार्ध

२ (क) कोऽहमुक्तिप्रत्युक्तिकाया भगवता। तस्मादित इतो भगवन् । –वही ४/२३–२४
(ख) एष वो रामशिरसा प्रणामपर्याय । –वही ४/२४–२५

३ वही १/३५

४ उत्तालताटकोत्पात । –वही १/३७ का प्रथमार्ध

५ वही १/३६

६ राजन्नितो ह्येहि सहानुजस्य रामस्य पश्यप्रतिमानमोज । –वही १/६२ का पूर्वार्ध

७ एष वालिकायदुन्दुभिकरकसप्ततालगिरिमहीतलान्यवदार्य रामतूणीरमधिशयित शर । –वही ५/५४–५५

८ वही ६/१२

६ वही ६/४६

१० वही ६/६३

११ वही ७/२०

राम स्थिरचित्त, प्रत्युत्पन्न बुद्धि से सम्पन्न हैं। वह शूर्पणखा द्वारा रामवनवाससम्बन्धी प्रस्तुत लेख का अविलम्ब पालन करते हैं तथा माता कैकेयी की आज्ञा शिरोधार्य कर वनगमनार्थ सहर्ष स्वीकृति प्रदान करते हैं– अहो प्रसादोत्कर्ष ।

तत्रैव गमनादेशो यत्र पर्युत्सुक मन
न चेष्टविरहो जात स च वत्सोऽनुजोऽनुग ।[1]

पिता दशरथ मृतप्राय से हो जाते हैं। जनक युधाजित् प्रभृति निवेदन करते हैं, किन्तु राम सत्यनिष्ठ इक्ष्वाकुवशी हैं, वनगमनार्थ अपने निर्णय पर अटल रहते हैं।

राम दृढप्रतिज्ञ हैं। अपने वचन को सर्वत्र पूर्ण करते हैं। वह सीता को ऋषिगण द्वारा इन्द्राणी के तुल्य होने के आशीर्वाद को राक्षस–सहार के अनन्तर ही सम्भाव्य मानते हैं।[2] वह रावण प्रभृति का सहार कर अपना वचन सिद्ध करते हैं। राम रावणवध के पश्चात् विभीषण को 'लकाधीश्वर' पद पर अभिषिक्त करते हैं, अधिष्ठातृ देवता अलका लका को उक्त कृत्यसम्पादन की सूचना देती हैं।[3]

राम अत्यन्त त्यागी हैं। वह मुनि विश्वामित्र से निवेदन करते हैं कि दिव्यास्त्र–ज्ञान लक्ष्मण को भी प्राप्त हो।[4]

राम कृत्यसम्पादन मे दक्ष हैं। उनकी क्षिप्रकारिता अनेक स्थलो पर दृष्टिगत होती है। सीता, कुशध्वज प्रभृति के समक्ष राम प्रत्यञ्चाकर्षणमात्र से शिवधनुष् तोडकर सबको आश्चर्यचकित कर देते हैं।[5] वह दुन्दुभि के अस्थिसमूह को पादागुष्ठ से स्पर्श कर विन्ध्य से सुदूर प्रान्त मे प्रक्षेपित करते हैं,[6]

---

१ महावीरचरितम् ४/४२

२ अचिरात्समूलककाष कषितेषु राक्षसेष्वेव स्यात्। –वही ४/३५–३६

३ दिव्यर्षिगणैश्च रामभद्रनिदेशेन निष्पादिताभिषेककल्याणो विभीषण । –वही ७/४–५

४ एष प्रह्वोऽस्मि भगवन्नेषा विज्ञापना च न ।
दिव्यास्त्रसप्रदायोऽय लक्ष्मणेन सहास्तु मे।। –वही १/४७

५ स्फूर्जद्वज्रसहस्रनिर्मितमिव प्रादुर्भवत्यग्रतो
रामस्य त्रिपुरान्तकृद्दिविषदा तेजोभिरिद्ध धनु ।
शुण्डार कलभेन यद्वदचले वत्सेन दोर्दण्डक–
स्तस्मिन्नाहित एव गर्जितगुण कृष्ट च भग्न च तत्।। –वही १/५३

६ तत्ककालमकालपाण्डुरघनप्रस्पर्धि रुन्धन्नभ
पादागुष्ठविवर्तनादयमितो निर्विन्ध्यमाविध्यति।। –वही ५/३६ का उत्तरार्ध

श्रमणा आश्चर्यपूर्वक इस कृत्य का वर्णन करती है। राम प्रियभाषी हैं। द्वितीय अक मे राम–परशुराम–सवाद वर्णित है जिसमे वह परशुराम से कहते हैं–आपके जन्मदाता जमदग्नि हैं शिव गुरु हैं, आपके पराक्रम एव कार्यनिष्पादन से स्पष्ट है, वह वर्णन की अपेक्षा नही रखता है, आपका सप्तसमुद्रवेष्टित पृथ्वी का निर्व्याज दान त्याग का द्योतक है, क्षात्र एव ब्रह्मतेज के आश्रयभूत आपका सब कुछ अलौकिक है।[1]

राम प्रजावत्सल हैं। राम विषयक यह तथ्य भरत एव युधाजित् के माध्यम से स्पष्ट होता है जहॉ वे राजा दशरथ से राम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव रखते हैं– देव ! श्रूयताम्। यदेकायनीभूय सर्वा प्रकृतयस्त्वा विज्ञापयन्ति–

त्रय्यास्त्राता यस्तवाय तनूजस्तेनाद्यैव स्वामिनस्ते प्रसादात्।
राजन्वन्तो रामभद्रेण राज्ञा लोका सर्वे पूर्णकामाश्च सन्तु।।[2]

राम उच्च वश मे उत्पन्न हुये हैं। उनका जन्म सावित्र मनु के वश मे हुआ है, वसिष्ठ जैसे उपदेष्टा हैं, मानवरक्षार्थ अनवरत सलग्न हैं।[3] इक्ष्वाकुवशी प्रथितकीर्ति तथा रक्षाव्रती हैं,[4] वे सदाचारी होते हैं।[5] रघुवशी सत्यप्रतिज्ञ हैं, राजा दशरथ राम से कहते हैं कि वे प्राणोत्सर्ग कर सकते हैं, किन्तु सत्य की रक्षा अवश्य करेगे।[6]

राम वस्तुत शूरवीर हैं। महर्षि विश्वामित्र का यज्ञप्रत्यूहनिवारणार्थ ताटका–वध का आदेश श्रवण कर राम स्त्री पर प्रहार करना उचित नहीं मानते हैं– 'भगवन् ! स्त्री खल्वियम्'।[7] विश्वामित्र से

---

१ उत्पत्तिर्जमदग्नित स भगवान् देव पिनाकी गुरु
शौर्यं यत्तु न तद्गिरा पथि ननु व्यक्त हि तत्कर्मभि।
त्याग सप्त समुद्रमुद्रितमहीनिर्व्याजदानावधि
क्षत्त्रब्रह्मतपोनिधेर्भगवत कि वा न लोकोत्तरम्।। –महावीरचरितम् २/३६

२ वही ४/४४

३ वही १/२५

४ नन्वद्यैव प्रथितयशसामूढरक्षाव्रताना। –वही ३/४७ का प्रथमार्ध

५ भिद्यते न सद्वृत्तमिक्ष्वाकुगृहेषु। –वही ४/१–२

६ वही ४/४८

७ वही १/३६–३७

ब्राह्मणरक्षार्थ पुन आदिष्ट हो राम वेदतुल्य एव पापपुण्यव्यवस्था विषयक उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर ताटका का वध करते हैं।[1] वह शस्त्रविहीन वाली पर प्रहार करना उचित नही मानते हैं।[2]

राम धर्मपरिपालनार्थ सचेष्ट रहते हैं। वनगमन के पूर्व वह मामा युधाजित् से धर्मरक्षार्थ निवेदन करते हैं– मातुल मातुल ! गुरुभिरेव शिशवो धर्मलोपात्पालयितव्या। तत्प्रसीद न। प्रतिनिवर्त्यतामय महाजन ।[3] रावण–अमात्य माल्यवान् राम को धर्मरक्षक कहता है।[4]

राम गुरु के प्रति असाधारण आदरभाव रखते हैं। वे विश्वामित्र का आदेश सम्पादित करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।[5] सप्तम अक मे अयोध्या–प्रत्यावर्तन के समय विश्वामित्र के आश्रम प्रान्त मे राम विमान पर आरूढ होकर जाना उचित नहीं समझते हैं– 'वत्स!' ता एवैता गुरुणा कौशिकपदाना सचरेण पवित्रितपर्यन्तास्तपोवनभूमय, 'लकेश्वर! नोचितमिदानीं गुरुचरणपकजपवित्रितेषु परिसरेषु विमानाधिरोहणम्'[6], विश्वामित्र से आदिष्ट होने पर वे प्रस्थित होते हैं–'यथाज्ञापयन्ति गुरव'।[7] कुलगुरु वसिष्ठ का दर्शन कर राम आह्लादित होते हैं।[8]

राम का मातृ–प्रेम अनन्य है। चतुर्थ अक मे मन्थरा के छद्मवेष मे शूर्पणखा कैकेयी–पत्र लेकर समुपस्थित होती है। राम माताओ की प्रवासजन्य व्यथा ज्ञात करने हेतु उत्सुक होते हैं– 'साधु यदीदमस्या प्रवृत्त्या शिशुप्रवासदौर्मनस्य विच्छद्येत'।[9] वह माताओ का कुशलक्षेम पूछते हैं– अयि मन्थरे ! अपि कुशलमम्बाया।[10] राम राजा दशरथ से मध्यम माता के वरद्वय को पूर्ण करने का निवेदन करते हैं।[11]

---

१ सर्वदोषानभिष्वगादाम्नायसमता गता ।
युष्माकमभ्युपगमा प्रमाण पुण्यपापयो ।। –महावीरचरितम् १/३८

२ वही ५/५०

३ वही ४/५७–५८

४ निसर्गेण स धर्मस्य गोप्ता । –वही २/७ का प्रथमार्ध

५ वही १/३८

६ वही ७/२७–२८

७ वही ७/२८–२९

८ यद्दर्शनात्किमप्येव द्रवीभवति मे मन ।
राकासुधाकारलोकादिन्दुकान्तोपलो यया।। –वही ७/३४

९ वही ४/४०–४१

१० वही

११ योऽसौ वरद्वयन्यासस्त माता मेऽद्य मध्यमा।
यथेष्ट नाथते तात तत्प्रसादार्थिनो वयम् ।। –वही ४/४७

राम का भ्रातृ–प्रेम अनुकरणीय है। विश्वामित्र–प्रदत्त जृम्भकास्त्र को वह अनुज लक्ष्मण के साथ ही प्राप्त करना चाहते हैं।[1] राम भरत–समागम के इच्छुक हैं किन्तु भरत की प्रवासजन्य व्यथा देखना उन्हे सह्य नहीं है।[2] षष्ठ अक मे चित्ररथ–वासव–सवाद से ज्ञात होता है कि राम का हृदय लक्ष्मण के मूर्च्छित होने का वृत्तान्त ज्ञात होने पर वीर एव करुण रस से परिपूर्ण हो गया है, वह कुम्भकर्ण एव सेना का सहार करते हुए लक्ष्मण के निकट जा रहे हैं।[3] सप्तम अक मे राम अयोध्या पहुँचने पर भरत का देहालिगन कर ब्रह्मास्वाद सदृश सुख की अनुभूति करते हैं।[4]

राम एकपत्नीव्रती हैं। वह अनुकूल नायक की कोटि मे आते हैं।[5] परशुराम के आगमन पर सीता भयातुर हो उन्हे रोकना चाहती हैं। राम सीता के प्रेम के समक्ष किकर्त्तव्यविमूढ हो विचार करते हैं– जित स्नेहेन । तर्हि मुक्त्वा धनुर्गच्छामि।

> वैदेहीपरिरम्भ एष च मुहुश्चैतन्यमामीलय–
> न्नानन्दी हरिचन्दनेन्दुशिशिरस्निग्धोरुणद्धयन्यत ।।[6]

सीतावियोगजन्य दु ख से राम मर्माहत हैं –

> मर्माणीव पुनश्छिनत्ति करुणा सीता वराकीं प्रति।।[7]

वह अन्तर्निगूढ कोपानल से विदग्ध हो लक्ष्मण को सहायतार्थ पुकारते हैं।[8] राम शरणागत के प्रति कर्त्तव्य का पूर्णतया निर्वाह करते हैं। श्रमणा विभीषण का आत्मसमर्पण विषयक लेख अर्पित करती है, विभीषण को प्रियमित्र तथा लकेश्वर कहकर राम सहर्ष स्वीकृति प्रदान करते हैं – 'वत्स ।

---

१ एष प्रह्वोऽस्मि भगवन्नेषा विज्ञापना च न ।
दिव्यास्त्रसप्रदायोऽय लक्ष्मणेन सहास्तु मे।। –महावीरचरितम् १/४७

२ अपरिष्वज्य भरत नास्ति मे गच्छतो धृति ।
अस्मत्प्रवासदु खार्त न त्वेन द्रष्टुमुत्सहे ।। –वही ४/४३

३ यदा तु भ्रातुर्मोहमधिगम्य भाविलकेश्वरादक्रममेव करुवीरनुभावभावितचित्तवृत्तिस्तथाविधस्यापि दर्शनोत्सुक समवारुध्यत परित कुम्भकर्णप्रमुखया रक्ष पृतनया तदा पुनरिदमेव प्रत्यकार्षीत्। –वही ६/४८–४६

४ अनुभावयति ब्रह्मानन्दसाक्षात्क्रियामिव।
स्पर्शस्तेऽद्य वराम्भोजप्रस्फुरन्नालकर्कश ।। –वही ७/३१

५ अनुकूल एकनिरत । साहित्यदर्पण ३/३७ का प्रथमार्ध

६ महावीरचरितम् २/२२ का उत्तरार्ध

७ वही ५/२२ का उत्तरार्ध

८ वही ५/२६

ब्रूहि कि सदिश्यतामेववादिन प्रियसुहृदो लकेश्वरस्य महाराजविभीषणस्य ?[1] तथा रावणवध के अनन्तर विभीषण को लका का राज्य प्रदान करते हैं। राम तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। उन्हे शिष्टाचार का अतिक्रमण सह्य नही, वे परशुराम के अव्याहत गति से कन्यान्त पुर–प्रवेश की निन्दा करते हैं।[2]

आचार्यों ने नायक मे आठ सात्त्विक गुणो का उल्लेख किया है–शोभा, विलास, माधुर्य गाम्भीर्य, स्थैर्य, तेज, ललित तथा औदार्य।[3]

राम शोभा नामक गुण से सम्पन्न हैं। नायक मे शौर्य तथा दक्षता, नीच व्यक्ति के प्रति घृणा आदि होने पर शोभा नामक सात्त्विक गुण की स्थिति होती है।[4] प्रथम अक मे तालवृक्ष के समान ऊँची ताटका को देखकर उसके स्त्री होने के कारण विचिकित्सा करते हैं।[5]

उपर्युक्त विवेचन से यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है कि राम धीरोदात्त प्रकृति के नायक हैं जिनमे नायकोचित समस्त गुण वर्तमान हैं। राजा कुशधवज राम के वश, गुरु आदि की प्रशसा करते हैं।[6] परशुराम उन्हे अनन्त सारमय पदार्थ, तेजस्वी, धर्म, मान, विजय पराक्रम आदि से युक्त मानते हैं।[7]

राम सम्पूर्ण भुवन के रक्षक साक्षात् अस्त्रवेद हैं, ब्रह्माण्डपरित्राणार्थ जन्म ग्रहण किया है, गुण की खान हैं, पुण्यकर्मा हैं।[8] वाली राम को गुणनिधि तथा सत्यधर्मा कहता है।[9] अलका लका से

---

१ महावीरचरितम् ५/३०–३१

२ नन्वेत एव शिष्टाचारपद्धते प्रणेतार । तत्कथमय विद्वान्प्रमाद्यति। –वही २/२०–२१

३ शोभा विलासो माधुर्यं गाम्भीर्यं स्थैर्यतेजसी।
ललितौदार्यमित्यष्टौ सात्त्विका पौरुषा गुणा ।। –दशरूपक २/१०

४ नीचे घृणाधिके स्पर्धा शोभाया शौर्यदक्षते। –वही २/११ का पूर्वार्ध

५ उत्तालताटकोत्पातदर्शनेऽप्यप्रकम्पित ।
नियुक्तस्तत्प्रमाथाय स्त्रैणेन विचिकित्सति।। –महावीरचरितम् १/३७

६ वही १/२५

७ (क) कोऽप्येष वीरशिशुकाकृतिरप्रमेयसामर्थ्यसारसमुदायमय पदार्थ । –वही २/३६ का उत्तरार्ध
(ख) सम्भाव्यसप्तभुवनाभयदानपुण्यसम्भारमस्य वपुरत्र हि विस्फुरन्ति।
लक्ष्मीश्च सात्त्विकगुणज्वलित च तेजो धर्मश्च मानविजयौ च पराक्रमश्च।। –वही २/४०

८ वही २/४१

९ विजितपरशुराम सत्यधर्माभिराम गुणनिधिमभिराम द्रष्टुमभ्यागतोऽस्मि। –वही ५/४७ का पूर्वार्ध

कहती हैं कि राम तो परम तत्त्व एव पुराण पुरुष हैं।[1] सप्तम अक मे अयोध्या–प्रत्यावर्तन के समय किन्नरयुगल मार्ग मे राम का दर्शन कर यशगान करते हैं –

आपन्नवत्सल जगज्जनतैकबन्धो विद्वन्मरालकमलाकर रामचन्द्र।
जन्मादिकर्मविधुरै सुमनश्चकोरैराचम्यता तव यश शरदा सहस्रम्।।[2]

सीता

प्रकृत नाटक की नायिका सीता हैं। आचार्य धनञ्जय के अनुसार नायिका तीन प्रकार की होती हैं– स्वीया अन्या तथा साधारण स्त्री, वह नायक के समान ही सामान्य गुणो से युक्त होती है।[3] सीता स्वीया नायिका की कोटि मे आती हैं। स्वीया नायिका अच्छा आचरण, पातिव्रत्य कुटिलतारहित, सलज्ज तथा पतिशुश्रूषा मे तत्पर आदि शीललज्जादिक गुणो से युक्त होती है।[4] स्वीया नायिकाके तीन भेद हैं– मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा।[5] मुग्धा नायिका अवस्था तथा कामभावना मे नूतन, रतिक्रीडा से वाम, मानप्रकाशन मे कोमल होती है।[6] मध्या नायिका यौवन एव कामवासना मे परिपूर्ण तथा सुरतक्रीडा को अन्त तक सहन करने मे सक्षम होती है।[7] प्रगल्भा नायिका कामभावना मे उन्मत्त, निर्लज्ज, रतिक्रीडा के समय आनन्द–निमग्न तथा प्रणय के आरम्भ मे चेतनाशून्य–सी होती है।[8]

महाकवि भवभूति ने सीता का स्वीया नायिका के रूप मे चित्रण किया है। प्रकृत नाटक का अगी रस 'वीर' है, जिसमे स्त्री पात्रो के चारित्रिक गुणो के प्रकाशन के अत्यल्प स्थल रहते हैं तथापि कतिपय वक्तव्यो के माध्यम से सीता के वैशिष्ट्यो पर प्रकाश डाला जा सकता है।

---

१ इद हि तत्त्व परमार्थभाजामय हि साक्षात्पुरुष पुराण।
त्रिधा विभिन्ना प्रकृति किलैषा त्रातु भुवि स्वेन सतोऽवतीर्णा।। –महावीरचरितम् ७/२

२ वही ७/२५

३ (क) स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा। –दशरूपक २/१५ का पूर्वार्ध
(ख) यथोक्तसम्भवे नायक सामान्यगुणयोगिनी नायिकेति स्वस्त्री परस्त्री साधारणस्त्रीत्यनेन विभागेन त्रिधा। –वही वृत्तिभाग

४ (क) स्वीया शीलार्जवादियुक्। –वही २/१५ का उत्तरार्ध
(ख) विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया। –साहित्यदर्पण ३/५७ का पूर्वार्ध

५ साऽपि कथिता त्रिभेदा मुग्धा मध्या प्रगल्भेति।। –वही ३/५७ का उत्तरार्ध

६ मुग्धा नववय कामा रतौ वामा मृदु क्रुधि। –दशरूपक २/१६ का पूर्वार्ध

७ मध्योद्यद्यौवनानङ्गा मोहान्तसुरतक्षमा। –वही २/१६ का उत्तरार्ध

८ यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयितागके।
विलीयमानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्यचेतना ।। –वही २/१८

प्रथम अक मे राम लक्ष्मण तथा मुनि विश्वामित्र के परस्पर वार्त्तालाप से ज्ञात होता है कि सीता अयोनिजा कन्या हैं[1] वह यज्ञभूमि से समुत्पन्न हैं, वह ब्रह्मवेत्ता राजा जनक की दुहिता हैं प्रसन्नचित्त एव कान्तिमती हैं।[2]

सीता अतीव सुन्दर ललना हैं। परशुराम–आगमन से भयातुर सीता के सौन्दर्य का राम वर्णन करते हैं जिससे स्पष्ट है कि उनके अग सुन्दर मधूकपुष्पवत् लावण्यमय हैं स्तनद्वय अतीव उन्नत हैं कटिप्रदेश त्रिवली युक्त हैं।[3] षष्ठ अक मे रावण सीता के अग–प्रत्यग का अवलोकन करता है तथा प्रसिद्ध उपमानो से उनके अतिशयता पर विचार करता है– सीता के मुख, चञ्चल नेत्रप्रान्त, भ्रू एव केशपाश, देहयष्टि के रहने पर चन्द्रमा, नीलकमल, कामबाण, मेघसमूह, लक्ष्मी आदि व्यर्थ हैं।[4]

महावीरचरितम् मे राम एव सीता का पूर्वानुराग वर्णित है। सीता विश्वामित्र के सिद्धाश्रम मे राम को देखते ही अनुरक्त हो जाती हैं– 'सौम्य दर्शनौ खल्वेतौ'।[5] अहल्योद्धार–प्रसग ज्ञात होने पर वह अत्यन्त प्रभावित होती हैं– 'शरीरनिर्माणसदृशोऽस्यानुभाव'।[6] महर्षि विश्वामित्र द्वारा राम को ताटकावधार्थ नियुक्त किये जाने पर वह चिन्ताग्रस्त हो जाती हैं– 'हा धिक् हा धिक्। एष एवात्र नियुक्त'।[7] परिणयोपरान्त उनका स्नेह प्रगाढ हो जाता है। परशुराम के कन्यान्त पुर मे प्रविष्ट होने पर वह स्वाभाविक लज्जा, मुग्धता का परित्याग कर देती हैं। वह राम को बलात् रोकना चाहती हैं– 'का गति, (धनुषि धारयन्ती) आर्यपुत्र ! न तावद्युष्माभिर्गन्तव्य यावत्तातो नागच्छति',[8] 'ततो बलादेव

---

१ श्रूयते किलान्यदपि तत्राश्चर्यं यदयोनिजा कन्येति। –महावीरचरितम् १/१४–१५

२ उत्पत्तिर्देवयजनाद् ब्रह्मवादी नृप पिता।
सुप्रसन्नोज्ज्वला मूर्तिरस्या स्नेह करोति मे।। –वही १/२१

३ वही २/२१

४ मुख यदि किमिन्दुना यदि चलाञ्चले लोचने
किमुत्पलकदम्बकैर्यदि तरगभगी भ्रुवौ।
किमात्मभवधन्वना यदि सुसयता कुन्तला
किमम्बुवहडम्बरैर्यदि तनूरिय किं श्रिया।। –वही ६/६

५ वही १/१८–१६

६ वही १/२६–२७

७ वही १/३६–३७

८ वही २/२१–२२

धारयिष्यामि ।[1] सखियो के वार्त्तालाप से स्पष्ट होता है कि सीता का स्नेह लज्जा से प्रबल हो रहा है – 'उद्वर्तितमिदानीं प्रियसख्या रसान्तरेण लज्जालुत्वम्' ।[2]

गुरुजनो के समुपस्थित होने पर सखियाँ सीता को अन्त पुर मे चलने के लिये कहती हैं, सीता सग्रामश्री से राम के मगल की प्रार्थना करती हैं– 'भगवति ! सग्रामश्रीरेष तेऽञ्जलि ।[3] सीता आदर्श सहधर्मिणी हैं, वह राम के सुख–दुख मे साथ रहना चाहती हैं। वनगमनार्थ राम की स्वीकृति ज्ञात होने पर वह कृतकृत्य हो जाती हैं– दिष्ट्यानुमोदितास्म्यार्येण'[4] पिता जनक उन्हे धन्य समझते हैं– 'वत्से धन्यासि यस्यास्ते गुरुनियोगत एव भर्तुरनुगमन जातम्।[5]

सीता मे नारीसुलभ लज्जा के कतिपय स्थल द्रष्टव्य हैं। राम द्वारा शिवधनुर्भंग करते ही वह हर्षित एव लज्जित हो जाती हैं, उर्मिला उनका परिरम्भण करती हैं– हृष्टा लज्जिता सीताम् आलिग्य ।[6] सप्तम अक मे अयोध्या–प्रत्यावर्तन के समय राम सीता से अनुसूया नामाकित उत्तरीय–वस्त्रजन्य आनन्द का वृत्तान्त बताते हैं, फलस्वरूप सीता लज्जा का अनुभव करती हैं।[7]

कवि ने सीता के भय, शका, व्यग्रता आदि नारीसुलभ गुणो का यथास्थान चित्रण किया है। वह सर्वमाय से रावण–परिणय प्रस्ताव सुनकर उद्विग्न हो जाती हैं– हा धिक् हा धिक्। राक्षसो मामभ्यर्थयते' ।[8] वे भीषणाकृति ताटका को देखकर भयभीत हो उठती हैं– 'तात ! भीषणा हताशा' ।[9] राम के ताटकावधार्थ गमन करने पर वह कहती हैं– 'अहो ! परागत एव। हा धिक् हा धिक्। उत्पातपातावलिरिव सा हताशा महानुभावमभिद्रवति' ।[10] परशुराम के कन्यान्त पुर–प्रवेश से वह सत्रस्त हो जाती हैं– 'आर्यपुत्र ! परित्रायस्व साहसिक' ।[11]

---

१ महावीरचरितम् २/२१–२२
२ वही
३ वही २/४२–४३
४ वही ४/५२–५३
५ वही ४/५१–५२
६ वही १/५२–५३
७ (सीता लज्जा नाटयति)। –वही ७/१७–१८
८ वही १/३०–३१
९ वही १/३६–३७
१० वही १/३८–३९
११ वही २/२६–२७

सीता का भगिनी–प्रेम अनुकरणीय है। रामादिक चारो भाइयो से ही सीतादिक के विवाह–निश्चय से उन्हे हार्दिक प्रसन्नता होती है। वह भगिनियो के आजीवन साहचर्य से हर्षित होती हैं[1]– 'दिष्ट्या अविप्रवास इदानीं भगिनीना भविष्यति ।

सीता का स्वभाव अत्यन्त कोमल है। उनमे तनिक भी कुटिलता नहीं है। सप्तम अक मे अयोध्या–प्रत्यावर्तन के समय राम एव लक्ष्मण जीर्ण कन्दरा को देख वहॉ वर्षाकाल मे रात्रियापन विषयक घटना का सस्मरण करते हैं, सीता एतदर्थ स्वय को दोष देती हैं– 'अहो प्रमाद । कथ मम मन्दभागिन्या दुष्टदेवैरेतेऽपि महानुभावा ईदृशमवस्थान्तरमनुभाविता ।'[2] लक्ष्मण द्वारा जटायु का प्राणत्याग–स्थल निर्दिष्ट करने पर वह उद्विग्न होकर कहती हैं– कथ मम कारणात्तादृशानामपि महानुभावानामीदृशोऽवस्थाविशेषो निशम्यते' ?[3]

सीता का सदाचरण लोकविश्रुत है। नेपथ्य से सूचना दी जाती है कि वसु, सूर्य, रुद्र, इन्द्र प्रभृति देव गण अग्निपरिशुद्ध सीता का स्वागत कर रहे हैं, राम आप सीता का आदर करे–

> अग्निप्रवेशपरिनिर्गमशुद्धभावा सीता रघूत्तम भवस्थितिमाद्रियस्व।।[4]

सीता तो पातिव्रत्य की साक्षात् मञ्जुल मूर्ति हैं, अग्निपरिशुद्धि तो लोकमर्यादानिर्वाहार्थ है –

> पतिव्रतामय ज्योतिर्ज्योतिषान्येन शोध्यते।
> इदमाश्चर्यमथवा लोकस्थित्यनुवर्तनम्।।[5]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सीता मे स्वीया नायिका के सकल गुण समाविष्ट हैं। वह एक आदर्श भारतीय पतिव्रता नारी हैं।

लक्ष्मण

प्रकृत नाटक मे कवि ने प्रचलित कथानक मे वर्णित लक्ष्मण के उग्र व्यक्तित्त्व से सर्वथा भिन्न रूप मे उसका चरित्राकन प्रस्तुत किया है।

---

१ महावीरचरितम् १/५८–५६
२ वही ७/१२–१३
३ वही ७/१८–१६
४ वही ७/३
५ वही ७/४

लक्ष्मण का हृदय प्रेम से परिपूर्ण है। विश्वामित्र के सिद्धाश्रम मे वह उर्मिला को देखकर सानन्द हो जाते हैं– 'तत्किमियममृतवर्त्तिरिव मे चक्षुराप्याययति ।'[1]

लक्ष्मण एक प्रखर आलोचक हैं। राम तथा राजा कुशध्वज रावण के पराक्रम तपस्या आदि की प्रशसा करते हैं, लक्ष्मण वीरता के प्रतिकूल आचरण करने वाले रावण की निन्दा करते हैं– निरस्तवीरपुरुषाचारस्य का वीरता।[2] लक्ष्मण कृतज्ञ हैं। वह राम–कृपा से दिव्यास्त्र–ज्ञान प्राप्त होने पर विलक्षण आनन्द की अनुभूति करते हैं, एतदर्थ राम के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं– 'अहो प्रसाद ।'[3] लक्ष्मण अप्रतिम वीर हैं। वह आज्ञाकारी, निर्भीक, साहसी तथा पराक्रमी हैं। शत्रु–वधार्थ वह सद्य तत्पर रहते हैं। विश्वामित्र का सुबाहु–मारीच–वधार्थ आदेश श्रवण कर राम के साथ वेगपूर्वक गमन करते हैं– यदाज्ञापयति। (इति विकट परिक्रामत)'।[4] माल्यवान् के स्वगत भाषण से सकेत मिलता है कि लक्ष्मण ने सुबाहु प्रभृति के अनुचरो का अकेले ही वध कर दिया– 'तदनुप्लवाना भूयसा लक्ष्मणेनैकेन वध इति किमेतदाश्चर्यम् ।'[5] माल्यवान् लक्ष्मण को रामवत् वीर तथा धनुर्विद्या मे प्रवीण मानता है –

वीरोऽस्त्रपारगश्चिन्त्यो यथा रामस्तथैव स ।[6]

लक्ष्मण शबरतपस्विनी श्रमणारक्षार्थ राम–निदेशपूर्वक कबन्ध राक्षस का वध करते हैं, श्रमणा सूचना देती है– लक्ष्मणेन योजनबाहोश्चितेयमभिसृष्टा'।[7] राम–वाली–युद्ध के समय सुग्रीव, विभीषण प्रभृति के युद्धस्थल की ओर अग्रसर होने पर लक्ष्मण धनुर्प्रयोगार्थ उद्यत होते हैं– 'तेन हि सम्प्रति मयाप्यारोपयितव्य धनु'।[8] षष्ठ अक मे दूत अगद रावण के समक्ष लक्ष्मण के पराक्रम का वर्णन करता है –

---

१ महावीरचरितम् १/२८–२६
२ वही १/३२–३३
३ वही १/४७–४८
४ वही् १/६०–६१
५ वही २/१–२
६ वही ४/२ का पूर्वार्ध
७ वही ५/३२–३३
८ वही ५/५४–५५

तत्पादाब्जनख कि वा तत्तीक्ष्णेषुमुख नता ।
स्प्रष्टारस्तेऽद्य मूर्धानस्तयोरभिमत वद ।।[1]

लक्ष्मण का भ्रातृ–प्रेम अनुकरणीय है। उनमे लेशमात्र भी ईर्ष्या नहीं है। विश्वामित्र का राम को दिव्यास्त्रज्ञान–प्रदानार्थ निर्णय सुनकर वह सहर्ष कहते हैं– 'दिष्ट्या देवदुन्दुभिध्वनि पुष्पवृष्टिश्च'।[2] वनगमनार्थ राम की स्वीकृति प्राप्त होने पर वह स्वय को धन्य समझते हैं– दिष्ट्यानुमोदितोऽहमार्येण [3] वह भरत को आदरपूर्वक प्रणाम करते हैं।[4] सीता के विरह से आतुर राम को देखकर उन्हे अत्यधिक कष्ट होता है– हा आर्ये ! क्वासि। कष्ट दशापरिणाममनुभवत्यार्यो मारीचशत्रु'[5] शोकविह्वल राम को वह धैर्य बँधाते हैं– 'आर्य आर्य ! न खलु लोकोत्तरकर्माणस्त्वादृशा कृच्छ्रेषु प्रमुह्यन्ति'।[6] सप्तम अक मे अयोध्या पहुँचने पर भरत–समागमार्थ व्यग्र होकर लक्ष्मण हनूमान् से प्रश्न करते हैं– (सौत्सुक्यम्) 'सखे मारुते ! कुत्रार्य ?'[7]

लक्ष्मण कर्त्तव्यनिर्वाह मे तत्पर तथा व्यवहारकुशल हैं। वनवास–प्रस्ताव से दशरथादिक के चेतनाशून्य होने पर राम स्नेह के वशीभूत हो जाते हैं, किन्तु लक्ष्मण राम को अविलम्ब प्रस्थान करने के लिये प्रेरित करते हैं– 'इदृशोऽयमापातकरुणस्नेहसवेग। किमत्र क्रियते? प्रतिषिद्ध च न कालहरणमम्बया। तदलमतिस्नेहकातर्येण'।[8] राम उन्हे आचारपरायण तथा हृदयशून्य कहते हैं– 'साध्वाचारनिष्ठ ! साधु। अमनुष्यसदृशस्ते चित्तसार। तद्वत्स ! वैदेहीमानय'।[9]

लक्ष्मण की परगुणग्राहिता असाधारण है। वह हनूमान् की वीरता आदि की प्रशसा करते हैं– 'हनूमान्हनूमानिति महानय वीरवाद। अत्रभवतो जातमात्रस्य सततपरिभ्रान्तदेवासुराण्याश्चर्याणि

---

१ महावीरचरितम् ६/२१
२ वही १/४२–४३
३ वही ४/४२–४३
४ आर्य भरत ! लक्ष्मण· प्रणमति। –वही ४/५४–५५
५ वही ५/१६–२०
६ वही ५/२२–२३
७ वही ७/३०–३१

श्रूयन्ते'।[1] वह वाली की युद्धप्रियता की प्रशसा करते हैं– आर्य ! आर्य ! दिष्ट्या प्राप्त स वीरगोष्ठी विनोदप्रदान प्रियसुहृन्माघवत ।[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि ने लक्ष्मण के दोषो– उग्रता, तिरस्कार–भावना आदि का परिहार किया है। वह भरत के प्रति दुर्भावना से ग्रस्त नहीं हैं। लक्ष्मण वस्तुत आदर्श भ्राता पराक्रमी, शक्तिसम्पन्न तथा परगुणग्राही हैं।

विश्वामित्र

महर्षि विश्वामित्र सूत्रधारवत् प्रकृत नाटक मे साद्यन्त विद्यमान हैं जिनके सरक्षण मे रामादिक सकल कार्य सम्पन्न करते हैं। वस्तुत इन समस्त कार्यों के पीछे मुनि की लोकहित की भावना अन्तर्निहित है।[3] विश्वामित्र रामार्थ इष्टसिद्धि, स्वयज्ञसकल्प आदि के प्रति निश्चय करते हैं–

रक्षोघ्नानि च मगलानि सुदिने कल्याणि दारक्रिया
वैदेह्याश्च रघूद्वहस्य च कुले दीक्षाप्रवेशश्च न ।
आस्थेयानि च तानि तानि जगता क्षेमाय रामात्मनो[4]।

विश्वामित्र तेज तथा ज्ञान, धर्म एव सत्य से समन्वित ऋषि हैं। राजा कुशध्वज के शब्दो मे वह साक्षात् पञ्चमवेद या धर्म हैं।[5] सूत की प्रशसोक्ति से स्पष्ट है कि ब्रह्मा आदि देव गण की प्रार्थना पर विश्वामित्र उग्र तपस्या से विरत हुये, वह तपजन्य तेज के आश्रय, ज्ञाता तथा स्वय प्रतिभात ब्रह्म हैं –

तदस्मिन् ब्रह्माद्यैस्त्रिदशगुरुभिर्नाथितशमे
तपस्तेजोधाम्नि स्वयमुपनतब्रह्मणि गुरौ।
निवासे विद्यानाम् ।[6]

---

१ महावीरचरितम् ५/३०–३१
२ वही ५/४४–४५
३ वही १/८
४ वही १/१३
५ वही १/१०
६ वही १/११

महर्षि विश्वामित्र योग्य गुरु हैं जिनके आदेश का रामादिक सद्य पालन करते हैं। वह राम को ताटकावधार्थ नियुक्त करते हैं– हन्यतामियम् ।[1] वह यज्ञप्रत्यूहनिवारणार्थ राम एव लक्ष्मण को सुबाहु तथा मारीच का वध करने के लिये आदेश देते हैं– तद्वत्सौ ! हन्युतामेष यज्ञप्रत्यूह ।[2] सप्तम अक मे वह रामादिक को अविलम्ब अयोध्या पहुँचने के लिये आदेश देते हैं, जहाँ वसिष्ठ प्रतीक्षारत हैं।[3] विश्वामित्र असुर–सहारार्थ अनवरत प्रयत्नशील रहते हैं, साथ ही ब्राह्मणरक्षार्थ वे तत्पर रहते हैं, एतदर्थ वह राम को ताटकावधार्थ आदेश देते हैं– त्वरस्व वत्स ! कि न पश्यसि ब्राह्मणजनस्य सघातमृत्युमग्रत ।[4] ताटका–वध को वह राक्षस–सहार का आरम्भ मानते हैं– एष तावदो–कार सकलराक्षससहारनिगमाध्ययनस्य ।[5]

विश्वामित्र एक कुशल निर्णयकर्त्ता हैं। वह राजा जनक तथा राजा दशरथ के कुल पर अनुग्रह रखते हैं जनकादिक की अनुपस्थिति मे ही वह रामादिक के साथ सीतादिक बहनो का विवाह–निश्चय राजा कुशध्वज से परामर्श कर करते हैं। वह आकाशस्थ शुन शेप से दशरथादिक को मिथिलागमनार्थ निमन्त्रित करने हेतु प्रेषित करते हैं, वह राम का राज्याभिषेक देखकर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।[6]

विश्वामित्र कुशल राजनीतिज्ञ एव दूरदर्शी हैं। राक्षसदूत सर्वमाय रावण का सीता–परिणय विषयक प्रस्ताव प्रस्तुत करता है, विश्वामित्र उसकी उपेक्षा करते हुए राम को ताटकावधार्थ नियुक्त करते हैं, सर्वमाय के पुन निवेदन करने पर वह एतदर्थ जनक एव कुशध्वज को निर्णयकर्त्ता बताते हैं –

अत्र सीरध्वजो वेत्ता कनिष्ठो हि कुशध्वज ।
अस्या पिता स कन्याया कुलज्येष्ठ प्रभुश्च स ।।[7]

---

१ महावीरचरितम् १/३६–३७
२ वही १/६०–६१
३ वही ७/२८
४ वही १/३७–३८
५ वही १/४०–४१
६ वही ७/३८
७ वही १/४१

वह राम एव लक्ष्मण को दिव्यास्त्र प्रदान करते हैं, वे प्रकारान्तर से सर्वमाय को समुचित प्रत्युत्तर देते हैं। विश्वामित्र शान्तिप्रिय हैं, वह कोपशमनार्थ परशुराम से आतिथ्य ग्रहण करने के लिये कहते हैं –

सञ्ज्ञप्यते वत्सतरी सर्पिष्यन्न च पच्यते।
श्रोत्रिय श्रोत्रियगृहानागतोऽसि जुषस्व न ।।[1]

विश्वामित्र का स्वभाव अत्यन्त कोमल है। परशुराम के दर्पयुक्त वचन श्रवण कर उन्हे मर्मान्तक पीडा होती है –

सपूजित हि माहात्म्यमुद्गिरन्त्य पदे पदे।
अपि मर्माविधो वाच सत्य रोमाञ्चयन्ति माम्।।[2]

विश्वामित्र सदुपदेष्टा हैं। वह परशुराम को वसिष्ठ, शतानन्द का आदर करने के लिये प्रेरित करते हैं– 'यदि गुरुष्वनुरुध्यसे चेतयस्वेमावपि तत किचित्'।[3] वह परशुराम को ज्ञानप्राप्त्यर्थ वसिष्ठ–सपर्या का परामर्श देते हैं।[4] किन्तु वसिष्ठ प्रभृति पर आक्षेप, राम पर कुदृष्टि के कारण विश्वामित्र परशुराम से रुष्ट हो जाते हैं, उनका दक्षिण हाथ शापोदक तथा वाम हाथ धनुष् का अन्वेषण करता है– अरे जामदग्न्य ! अब्रह्मवर्चसमिव भ्रशितशस्त्रसामर्थ्यमिव जीवलोक मन्यसे।

ब्रह्मक्षत्त्रसमाजमाक्षिपसि यद् वत्से च घोराशय–
स्तेनातिक्रमणेन दु खयसि न पाल्योऽपि सबन्धत ।
आतस्त्वा प्रति कोपनस्य तरल शापोदक दक्षिण
प्राक्सस्कारवशेन चापमितर पाणिर्ममान्विष्यति।।[5]

इस प्रसग से विश्वामित्र का तेज एव पराक्रम व्यञ्जित होता है। विश्वामित्र परगुणग्राही हैं। वह पुरोहित शतानन्द की प्रशसा करते हैं– 'साधु गौतम वत्स ! साधु। कृतकृत्य एष राजा

---

१ महावीरचरितम् ३/२
२ वही ३/१०
३ वही ३/६–७
४ वही ३/३६
५ वही ३/४३

सीरध्वजस्त्वया पुरोहितेन'।[१] वह सत्यनिष्ठ वसिष्ठ से प्रशसित हो स्वय को प्रशसा का पात्र मानते हैं– भगवन् मैत्रावरुण !

सनत्कुमारगिरसोर्गुरुविद्यातपोमय ।
स्तौषि चेत्स्तुत्य एवास्मि सत्यशुद्धा हि ते गिर ।।[२]

विश्वामित्र नित्यदैनन्दिक अनुष्ठान के प्रति पूर्णतया निष्ठावान् हैं, एतदर्थ वह प्रस्थित होना चाहते हैं– (सास्र राममालिग्य) अहमेव सौम्य ! न त्वा मोक्तुमुत्सहे।

कि त्वनुष्ठाननित्यत्व स्वातन्त्र्यमपकर्षति।
सकटा ह्याहिताग्नीना प्रत्यवायैर्गृहस्थता।।[३]

विश्वामित्र गम्भीर प्रकृति के हैं। राम से पराभूत परशुराम को वह उपदेश देते हैं। राम विश्वामित्र की गम्भीरोक्ति की प्रशसा करते हैं– 'एतानि भगवता साक्षात्कृतब्रह्मणामृषीणा प्रसन्न–गम्भीरपावनानि वचनानि'।[४] विश्वामित्र शिष्ट परिहास मे भी निपुण हैं। मिथिला से प्रस्थान करते समय वह मुनि वसिष्ठ को साथ चलने का आग्रह करते हैं– 'भगवन् ! यद्यनुरुध्यसे तदेहि सिद्धाश्रमपदमुभौ गच्छाव । त्वा पुरस्कृत्य गच्छन्मधुच्छन्दसो मातु सत्कार्यो भविष्यामि।'[५]

वसिष्ठ

महर्षि वसिष्ठ का माहात्म्य अनिर्वचनीय है। विश्वामित्र एव परशुराम के सवाद से स्पष्ट है कि वसिष्ठ ब्रह्मा की सन्तति हैं–

हिरण्यगर्भादृषयो बभूवूर्वासिष्ठभृग्वागिरसस्त्रयो ये।
सोऽय वसिष्ठो ।[६]

---

१ महावीरचरितम् ३/१७–१८
२ वही ४/१६
३ वही ४/३३
४ वही ४/२६–२७
५ वही ४/३३–३४
६ वही ३/७ का पूर्वार्ध

विश्वामित्र की प्रशसोक्ति से ज्ञात होता है कि वसिष्ठ सनत्कुमार तथा अगिरा के गुरु हैं विद्या तथा तपस्या की मूर्ति हैं– सनत्कुमारगिरसोर्गुरुविद्यातपोमय।[1] परशुराम वसिष्ठ को ब्रह्मविद्या मे पारगत निर्दिष्ट करते हैं– 'ब्रह्मैकतानमनसो हि वसिष्ठमिश्रा '।[2] वह सनातन जगद्गुरु हैं– जगत्सनातनगुरौ वसिष्ठेऽपि '।[3] वसिष्ठ रघुवशियो के कुलगुरु हैं, उन्हे वेदविहित कर्म विषयक परिज्ञान कराते हैं–

यान्मैत्रावरुणि प्रशास्ति भगवानाम्नायपूते विधौ।[4]

महर्षि वसिष्ठ शास्त्रवेत्ता हैं, वह परशुराम को योगशास्त्रसकुल उपदेश देते हैं[5] परशुराम के कथन से सकेत मिलता है कि महर्षि वसिष्ठ ने धर्म का सर्वप्रथम साक्षात्कार किया था, कालान्तर मे उनसे ज्ञान प्राप्त होने पर स्मृतियो की सर्जना की।[6] वसिष्ठ लोकव्यवहार के ज्ञाता हैं। वह स्वगृह से स्वगृह मे गमन को 'कामचार सज्ञा देते हैं– स्वगृहात्स्वगृह गन्तुमागन्तु च कामचार।[7] वह नीतिशास्त्रज्ञ हैं, राम एव लक्ष्मण को नीतिधर्म, ज्ञानव्यवहार तथा सदसद्विवेक का उपदेश देते हैं।[8] वसिष्ठ अत्यन्त तेजस्वी हैं, वह दृष्टिक्षेप मात्र से परशुराम का अनिष्ट कर सकते हैं–

सदूषितेन च मया सकृदीक्षितश्चेद्
वत्सस्य भार्गवशिशोर्दुरित हि तत्स्यात्।।[9]

वसिष्ठ सदाचारी हैं, परशुराम का वचन श्रवण कर कुलपरम्परागत आचार के ह्रास से उन्हे अत्यधिक कष्ट होता है।[10] वसिष्ठ अहकारशून्य हैं, परशुराम से पराभव उनके लिये आनन्ददायक है– 'भृगुप्रसवात्पराजय इति प्रिय न'।[11]

---

१ महावीरचरितम् ४/१६
२ वही ३/११ का प्रथमार्ध
३ वही ३/३६ का पूर्वार्ध
४ वही १/२५ का प्रथमार्ध
५ वही ३/४–५
६ वही ४/२५ का उत्तरार्ध
७ वही ४/३३–३४
८ वही ७/३५
९ वही ३/४२ का उत्तरार्ध
१० वही ३/३८
११ वही ३/३७–३८

वह क्षमाशील हैं, परशुराम के दमन के अनन्तर उन्हे क्षमा कर देते हैं, सम्प्रति श्रोत्रिय कुल मे उनका जन्म मानते हैं– 'वत्स ! अद्य न श्रोत्रियाणा कुले जातोऽसि,'[१] 'तत्परिपूत एवासि ।'[२] वसिष्ठ परगुणग्राही हैं। वह विश्वामित्र से लोकख्यात राम के माहात्म्य की प्रशसा करते हैं।[३] वह ब्रह्मतेज से दीप्त, दुर्धर्ष विश्वामित्र के प्रकर्ष का वर्णन करते हैं।[४] वह क्षमाशील गुणशाली, शरणागत–रक्षक राम से अत्यधिक स्नेह करते हैं, राम को देख अत्यधिक आनन्दित होते हैं–

कृतारामो रामो बहिरिह दृशोपास्यत इति
प्रमोदाद्वै तस्याप्युपरि परिवर्तामह इमे।।[५]

वसिष्ठ भाग्यवादी हैं। रामादिक के सकुशल अयोध्यागमन को वह भाग्य की अनुकम्पा मानते हैं– दिष्ट्याक्षतप्रतिनिवृत्तवत्से स्त ।[६]

दशरथ

मुनि विश्वामित्र एव वसिष्ठ के सवाद से ज्ञात होता है कि सूर्यपुत्र मनु के वश मे राजा दशरथ का जन्म हुआ है, दशरथ वीर तथा योग्य शासक हैं।[७] दशरथ ने दर्शपूर्णमास आदि यज्ञ सम्पन्न किया है, देवेश्वर इन्द्र के मित्र हैं, इन्द्रवत् पृथ्वी के योग्य शासक हैं–

इष्टापूर्त्तविधे सपत्नशमनात्प्रेयान्मघोन सखा
येन द्यौरिव वज्रिणा वसुमती वीरेण राजन्वती।[८]

असुरो के साथ युद्ध करते समय इन्द्र ने उन्हे सेनापति नियुक्त किया था।[९] दशरथ शान्तिप्रिय हैं, धैर्य तथा उदारता की प्रतिमूर्ति हैं। वह शापोदक ग्रहण कर परशुराम को भस्म करने

---

१ महावीरचरितम् ४/२५–२६
२ वही ४/२६–२७
३ वही ४/१३
४ वही ४/१५
५ वही ७/३३
६ वही ७/३३–३४
७ वही ४/१७
८ वही ३/१ का पूर्वार्ध
९ वही ४/१८ का उत्तरार्ध

के लिये तत्पर शतानन्द को विरत करने का प्रयत्न करते हैं– भगवन् ! प्रसीद। गृहानुपगते प्रशाम्यतु दुरासद तेज ।[1]

दशरथ विकट परिस्थिति मे भी धैर्यच्युत नहीं होते हैं परशुराम की रामादिक–सहारार्थ घोषणा से क्रुद्ध हो युद्धोद्यत जनक से वह निवेदन करते हैं कि वह बाणप्रयोग न करे–

तव पलित निरन्तर पृषत्क स्पृशति पुराणधनुर्धरस्य पाणि ‘।।[2]

दशरथ कर्त्तव्यपरायण तथा योग्यशासक हैं। वह परशुराम से कहते हैं–

नि सदेहविपर्यये सति पुनर्ज्ञाने विरुद्धक्रिय
राजा चेत्पुरुष न शास्ति तदय प्राप्त प्रजाविप्लव ।।[3]

कुलगुरु वसिष्ठ के तिरस्कृत होने पर उनका क्रोध प्रवृद्ध हो जाता है।[4] दशरथ विनम्र, उदार तथा क्षमाशील हैं। वह अहकार–दमन के अनन्तर विनम्र परशुराम को स्वभावत पवित्र बताते हैं।[5] वह व्यवहारकुशल हैं। परशुराम–समागम को वह चिरप्रतीक्षित कहकर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हैं।[6]

दशरथ का वात्सल्य प्रेम दर्शनीय है। वह अपत्य राम के प्रति अगाध स्नेह रखते हैं। परशुराम–निग्रहार्थ समुपस्थित राम के प्रति वह अनिष्ट–कल्पना से उद्विग्न हो जाते हैं– ‘कथ प्राप्तो राम । कष्ट हि नामैतत्।[7] जनकादिक द्वारा प्रशसित राम का वह आज ही रक्षाव्रती वश मे वास्तविक जन्म मानते हैं।[8] वह सत्यनिष्ठ हैं, एतदर्थ वह प्राणोत्सर्ग भी कर सकते हैं–

सत्यसन्धा हि रघव कि वत्स विचिकित्ससि।
त्वयि दूतेऽपि कस्तस्या प्राणानपि धनायति।।[9]

१ महावीरचरितम् ३/२१–२२
२ वही ३/३० का उत्तरार्ध
३ वही् ३/३५ का उत्तरार्ध
४ वही ३/३६
५ वही ४/२७
६ वही ४/२८
७ वही ३/४५–४६
– वही ३/४७

दशरथ का स्वभाव अत्यन्त कोमल है। अभिनवपरिणीता सीता का अवधान कर उन्हे कष्ट होता है– 'हा वत्से जानकि ! ककणधरैव रक्षसामुपहारीकृतासि'।[1] रामादिक के वनगमनार्थ उद्यत होने पर वह मर्माहत हो विलाप करते हैं– 'वत्स रामचन्द्र ! न गन्तव्य न गन्तव्यम्।[2] राम–विरह मे वह प्राण त्याग देते हैं। सम्पाति एव जटायु के सवाद से दशरथ के मृत्यु की सूचना मिलती है।[3] दशरथ वसिष्ठादिक का अत्यधिक आदर करते हैं, युधाजित् एव भरत का प्रजाभिलषित रामराज्याभिषेक प्रस्ताव श्रवण कर वह जनक से सम्प्रति करणीय उचितानुचित विषयक परामर्श करते हैं।[4] जामदग्न्य की प्रशसापरक उक्ति द्रष्टव्य है, जिससे ज्ञात होता है कि दशरथ का धनुष् इन्द्र को युद्ध मे भयरहित करता है, उनका शासन अप्रतिहत है, सप्तद्वीप पर्यन्त भूमि, यशरूप गगा सागर उनके माहात्म्य के द्योतक हैं।[5]

जनक

मिथिलानृपति जनक निमि के वश मे समुत्पन्न हैं। मुनि विश्वामित्र रामादिक को जनक का परिचय देते हैं– 'श्रूयन्त एव निमिजनकसभवा राजर्षयो विदेहेषु।

तेषामिदानीं दायादो वृद्ध सीरध्वजो नृप।[6]

जनक राजर्षि हैं। सूत्रधार के कथन से सकेत मिलता है कि वह यज्ञादिक कार्यों मे अनवरत सलग्न रहते हैं, अतएव विश्वामित्र के यज्ञावसर पर उपस्थित नहीं हो पाते हैं–

निमन्त्रितस्तेन विदेहनाथ स प्राहिणोद् भ्रातरमात्तदीक्ष।[7]

उन्होने यज्ञ मे सहस्र गोदान किया है– 'अविरतयज्ञवितीर्णगोसहस्र'।[8] जनक ब्रह्मज्ञानी हैं। राम उन्हे ब्रह्मवादी कहते हैं– 'ब्रह्मवादी नृप पिता'।[9] उन्होने सूर्यशिष्य याज्ञवल्क्य से परब्रह्म विषयक

---

१ महावीरचरितम् ४/५१–५२
२ वही ४/५४–५५
३ वत्स जटायो ! कालविप्रकर्षान्मन्दीभूतपितृशोको रामभद्र। –वही ५/६–७
४ वही ४/४५
५ वही ४/३१
६ वही १/१४ का पूर्वार्ध
७ वही १/६ का पूर्वार्ध
८ वही ३/३० का पूर्वार्ध
६ वही १/२१ का पूर्वार्ध

ज्ञान प्राप्त किया है– आदित्यशिष्य किल याज्ञवल्क्यो यस्मै मुनिर्ब्रह्म पर विवव्रे ।[1] जामदग्न्य उन्हे वेदमार्गी, वृद्ध तथा धर्मपरायण कहते हैं– भो जनक ।

त्व ब्रह्मण्य किल परिणतश्चासि धर्मेण युक्त ।[2]

जनक राजोचित व्यवहार मे निष्णात हैं। परशुराम के मर्यादातिक्रमण कर कन्यान्त पुर मे प्रवेश करने पर वह शतानन्द को द्विविध सत्कार का परामर्श देते हैं– अतिथि रूप मे आने पर पाद्य अर्घ्य तथा मधुपर्क आदि प्रदान किया जाय अथवा शत्रु रूप मे आने पर धनुष् का प्रयोग हो।[3] जनक अप्रतिम वीर हैं। परशुराम के दर्पपूर्ण वचन श्रवण कर उनका नैसर्गिक क्षात्र तेज पुन दीप्त हो जाता है, वह धनुर्प्रयोगार्थ प्रेरित होते हैं–

क्षात्त्र तेजो विजयसहज यद्व्यरसीदिद तत्
प्रत्युद्भूय त्वरयति पुन कर्मणे कार्मुक न ।।[4]

जनक राम से अत्यधिक स्नेह करते हैं। वह दशरथ से कहते हैं कि परशुराम की राम के प्रति अकल्याणप्रद कामना उन्हे सह्य नहीं है।[5] उन्हे राम द्वारा परशुराम–विजय पर पूर्ण विश्वास है– हन्त भो । प्रशस्तमभ्यनुजानीत। विजयता रामभद्र ।[6]

जनक व्यवहारकुशल हैं। परशुराम के अहकार–दमन के अनन्तर उनसे आसन–ग्रहणार्थ निवेदन करते हैं– 'भगवन् । यदि प्रसन्नोऽसि तद्विस्रब्धोपवेशनात्परिपुनीहि नो गृहान् एतत्पूतमासन भगवत ।[7] वह परिस्थिति का सम्यक् विश्लेषण करते हैं, उन्हे इक्ष्वाकु वश की राजपत्नी तथा पवित्र सन्तति कैकेयी के रामादिक–वनवास सम्बन्धी प्रस्ताव से आश्चर्य होता है।[8] जनक का स्वभाव अत्यन्त कोमल है। वह रामादिक का बाल्यावस्था मे ही वनगमन वृत्तान्त ज्ञात होने पर शोकातुर हो

---

१ महावीरचरितम् २/४३ का उत्तरार्ध
२ वही ३/२६ का प्रथमार्ध
३ वही २/४४
४ वही ३/२५ का उत्तरार्ध
५ वही ३/३१ का उत्तरार्ध
६ वही ३/४५–४६
७ वही ४/२७–२८
८ वही ४/४६

विलाप करते हैं– हा वत्स रामभद्र ! हा लक्ष्मण[1] ! किन्तु सीता का पति के साथ वनगमन ज्ञात होने पर गर्वान्वित होते हैं– वत्से धन्यासि यस्यास्ते गुरुनियोगत एव भर्तुरनुगमन जातम् ।[2]

शतानन्द

मुनि विश्वामित्र के कथन से ज्ञात होता है कि शतानन्द महर्षि गौतम तथा अहल्या के अपत्य हैं– 'अहल्या नाम गौतमस्य महर्षेरौचथ्यस्य धर्मपत्नी यस्या शतानन्द आगिरसोऽजायत'।[3] वह विद्वान् अगिरा के पौत्र हैं– 'पुरोहितेनागिरसेनगुप्त'[4] तथा राजा जनक के राजपुरोहित हैं– 'गौतमश्च शतानन्दो जनकाना पुरोहित'।[5] परशुराम के कथन से स्पष्ट है कि शतानन्द राजपुरोहित एव आचारनिष्ठ तथा गृहस्थ हैं, उन्होने याज्ञवल्क्य से अध्ययन ग्रहण किया है– त्व पुरोहित सुचरितो गृहमेधी याज्ञवल्क्यशिष्य'।[6] शतानन्द ब्राह्मण तथा राज्यरक्षार्थ तत्पर पुरोहित हैं, ऐसे व्यक्ति का राष्ट्र आपत्तिग्रस्त नहीं हो सकता है। इस सन्दर्भ मे विश्वामित्र की प्रशसोक्ति द्रष्टव्य है– 'साधु गौतम वत्स ! साधु । कृतकृत्य एष राजा सीरध्वजस्त्वया पुरोहितेन।

न तस्य राष्ट्र व्यथते न रिष्यति न जीर्यति।
त्व विद्वान् ब्राह्मणो यस्य राष्ट्रगोप पुरोहित ।।[7]

वह राज्य सम्बन्धी आचार व्यवहार से पूर्णतया परिचित हैं, अत परशुराम के अन्त पुर मे प्रवेश को उचित नहीं मानते–

कन्यान्त पुरमक्रमात्प्रविशता सदूषिता न स्थिति ।[8]

शतानन्द कर्त्तव्यनिष्ठ हैं, वह राजा जनक एव राज्य के प्रति पूर्णतया निष्ठावान् हैं। परशुराम की रामवधार्थ घोषणा श्रवण कर वह कहते हैं– राजर्षि जनक की छाया का कोई स्पर्श नहीं कर

---

१ महावीरचरितम् ४/५०–५१
२ वही ४/५१–५२
३ वही १/२६–२७
४ वही २/४३ का पूर्वार्ध
५ वही २/४२ का उत्तरार्ध
६ वही २/४६–५०, पृ० १०२
७ वही ३/१८
८ वही २/४६–५०, पृ० १०२

सकता, राम का तो कदापि नही– आ ! शक्तिरस्ति कस्य वा विदेहराजन्यस्य राजर्षेर्याज्यस्य मे प्रेयसश्छायामप्यवस्कन्दितुम्, कि पुनर्जामातरम्।'[1]

शतानन्द प्रखर आलोचक हैं। वह परशुराम के ब्राह्मणविरुद्ध आचरण पर आक्षेप करते हैं उनके प्रति कटूक्तियो का प्रयोग करते हैं– (सक्रोधम्) अरे अनड्वन् ! पुरुषाधम ! निरपराधराजन्य–कुलकदन'।[2]

शतानन्द अपराधकर्त्ता को दण्डित करने के पक्षधर हैं, अत शापार्थ कमण्डलु–जल का स्पर्श करते हैं।[3] वह अत्यन्त विनम्र एव गुरुभक्त हैं, महर्षि वसिष्ठ का जाबालि आदि के शान्ति होम–निष्पादन विषयक आदेश श्रवण कर वह सद्य प्रस्थान करते हैं।

रावण

प्रकृत नाटक का प्रतिनायक रावण है। महाकवि भवभूति ने रावण का अत्यन्त प्रतिकूल चित्रण किया है, मूल कथानक से सर्वथा भिन्न चरित्राकन उपलब्ध होता है। रावण प्रत्यक्ष रूप से षष्ठ अक मे उपस्थित होता है। इसके पूर्व अन्य पात्रो के माध्यम से रावण–व्यक्तित्व का पर्याप्त परिचय प्राप्त हो जाता है। प्रतिनायक द्वारा करणीय समस्त योजनाये रावण–अमात्य माल्यवान् की दूरदृष्टि, बुद्धिवैभव का परिणाम है। रावण के चरित्र का विश्लेषण इस प्रकार है –

आचार्य धनञ्जय के अनुसार प्रतिनायक नायक का शत्रु होता है। वह लोभी, उद्धत स्वभाव का, अहकारी, पापनिष्ठ तथा विलासी प्रवृत्ति का होता है।[4] नाट्यदर्पणकार ने भी इसी प्रकार का लक्षण प्रस्तुत किया है।[5]

---

१ महावीरचरितम् ३/१५–१६

२ वही ३/१८–१६

३ वही ३/२०

४ लुब्धो धीरोद्धत स्तब्ध पापकृद्व्यसनी रिपु –दशरूपक २/६ का उत्तरार्ध

५ (क) लोभी धीरोद्धत पापी व्यसनी प्रतिनायक ।। –नाटयदपर्ण ४/१३ का उत्तरार्ध

(ख) मुख्य नायकस्य प्रतिपन्थी नायक प्रतिनायक ।
यथा रामयुधिष्ठिरयो रावणदुर्योधनवदिति। –वही वृत्तिभाग

रावण ब्रह्मा का प्रपौत्र है– 'प्रपौत्र परमेष्ठिन'[1], माता केकसी की सन्तान है[2] रावण के पूर्वज पुलस्त्य प्रभृति वेदाध्यायी थे, रावण ने स्वय वेदो का अध्ययन किया था।[3] वह असाधारण वीर्य तथा तपस्या से युक्त है, राम की प्रशसोक्ति द्रष्टव्य है– 'न पुनरतिवीर्यमप्रमेयतपसमप्राकृत ।[4]

रावण अप्रतिम बल एव पराक्रम से सम्पन्न वीर है। राम विश्वजित् रावण की प्रशसा करते हैं– कि पुनर्जगता जेता [5], अपि च निर्विघ्नप्रतिपन्नविश्वविजयो वीरस्तु कस्तादृश ।[6] रावण का उरस्थल वज्रवत् कठोर है जिस पर इन्द्रप्रेरित वज्र खण्ड–खण्ड हो नभ मे बिखर जाता है।[7] माल्यवान् के कथन से स्पष्ट है कि रावण रिपुपक्ष का दमन करने मे सक्षम है– "दोर्दण्डा एव दृप्यद्रिपुदलनमहासत्रदीक्षा प्रतीक्ष्या ।[8]

रावण स्वाभिमानी है। सम्पाति के शब्दो मे–वह शूर्पणखा का अनादर सहन नहीं कर सकता।[9] वह अधार्मिक है, पापाचरण करता है। पञ्चम अक मे जटायु के कथन से ज्ञात होता है कि रावण सीता को हठात् रथारूढ कर ले जाता है।[10] रावण कुत्सित आचरण के कारण निन्दा का पात्र बनता है। लक्ष्मण वेदनाशक, पूर्वज अनरण्यहन्ता रावण के पराक्रम का प्रत्याख्यान करते हैं–

> यो नस्त्रयीपरिध्वसात्क्षात्र तेजोऽपकर्षति।
> अस्माक यश्च राजानमनरण्य किलावधीत्।।[11]

अपि च

> 'निरस्तवीरपुरुषाचारस्य का वीरता।[12]

---

१ महावीरचरितम् १/३१ का उत्तरार्ध
२ वही ४/११ का उत्तरार्ध
३ वही ५/१८ का पूर्वार्ध
४ वही १/३२–३३
५ वही १/३१ का उत्तरार्ध
६ वही १/३३ का उत्तरार्ध
७ वही १/४५
८ वही ६/७ का पूर्वार्ध
९ वही ५/१४ का पूर्वार्ध
१० वही ५/१७
११ वही १/३२
१२ वही १/३२–३३

जटायु रावण की पापबुद्धि एव दुराचार की निन्दा करता है –

निन्द्या दुश्चरितावतारजननी जाता कथ दुर्मति ।[1]

मरणासन्न वाली भी रावण को मित्रता के लिये अयोग्य मानता है–

यदासक्त दैवादनभिमतसख्येऽपि हि जने
मया सख्य प्राणैरनृण इव तस्याहमधुना।[2]

वह सीता के शारीरिक सौन्दर्य का अवलोकन करता है।[3] सम्प्रति वह स्वय को पूर्णकामी एव भाग्यशाली समझता है– 'अहो ! हलमुखविनिर्भिन्नविश्वम्भराविर्भूतयोषिद्रत्नमनुभवतो मम मनोरथेन चिराय फलितम्'।[4] रावण विकत्थन है। उसे अपने पराक्रम पर गर्व है। वह मन्दोदरी के रामाक्रमण विषयक सूचना पर विश्वास नहीं करता है। वह कहता है कि दिक्पतियो पर विजय करने वाले रावण का कोई शत्रु नहीं हो सकता– 'कथ रिपुस्तत्पक्षस्तदभियोगश्चेत्यश्रुत श्राव्यते देव्या।[5] रावण राम द्वारा समुद्र पर अस्त्र–प्रहार, वानरो द्वारा सेतु–निर्माण को असम्भव मानता है। उसे अपने साहस पर गर्व है, वह शिव को अपना मस्तक अर्पित कर चुका है।[6] वह अपने ज्ञान, पराक्रम आदि की प्रशसा करता है– मेरे शास्त्रज्ञान को वेदस्रष्टा ब्रह्मा, आदेश को इन्द्र, धैर्य को वज्र, यश को तीनो लोक तथा बल को कैलास पर्वत एव साहस को शिव हृदयस्थ करते हैं।[7] रावण विलासी एव अदूरदर्शी है। वह शत्रुकृत आक्रमण से अनभिज्ञ तथा राजकार्य से विमुख रहता है। मन्दोदरी को रावण के वैरस्यभाव से कष्ट होता है।[8]

रावण अत्यन्त उद्धत प्रकृति का है रामदूत अगद का सीता एव स्वसमर्पण विषयक प्रस्ताव श्रवण कर वह क्रोधित हो जाता है तथा अगद के मुखरञ्जनार्थ आदेश देता है– (सक्रोधम्) क कोऽत्र भो ? यत्किचिद्वादिनोऽस्य मुख सस्कुर्यात्,' 'एतन्मुखसस्कार एव तपस्विन प्रत्युत्तरीकरणम्' ।[9]

---

१ महावीरचरितम् ५/१८ का उत्तरार्ध
२ वही ५/५८ का पूर्वार्ध
३ वही ६/६
४ वही ६/६–१०
५ वही ६/१०–११
६ वही ६/१४
७ वही ६/१५
८ वही ६/१०–११
९ वही ६/२१–२२

रावण के कार्यों से स्वबन्धु–बान्धव उसके शत्रु हो गये हैं। विभीषण उसका सहज शत्रु है। रावण ने निधि एव पुष्पक विमान बलात् ग्रहण कर कुबेर से वैरभाव प्रवृद्ध कर लिया है ससार के सकल जन उसके दुराचारो से सत्रस्त हैं। चित्ररथ के कथन से उपर्युक्त तथ्य का परिज्ञान होता है– कि चित्र सहजा किल ते मिथ शत्रव। कृत्रिमतापि निधिपुष्पकादिहरणवृत्तेर्दुर्वृत्तस्य सुप्रथिता। अथवा –

यावत्त्रिलोक्या किल जन्तुजात तत्सर्वमस्योद्धतदुश्चरित्रै।[1]

रावण युद्धनीति मे निपुण है। वह सेनापति प्रहस्त से राम एव वानरसैन्य का लकागमन वृत्तान्त ज्ञात होने पर राक्षस सेना द्वारा अर्गला तोडने, वानरो का अगविदीर्णन, अस्त्रसज्जा आदि विषयक आदेश देता है।[2] चित्ररथ इन्द्र से रावण के रणनैपुण्य की प्रशसा करता है– परिजन, भ्रातृगण, पुत्र मेघनाद, कुम्भकर्ण प्रभृति से आवृत, मध्य मे रथारूढ हो, रावण युद्धभूमि मे प्रविष्ट होता है– देवराज ! अपूर्वोऽय रक्षपते सग्रामावतरणसर्ग।[3] मेघनाद के साथ युद्धरत लक्ष्मण पर वह शतघ्नी से प्रहार कर देता है, वासव चित्ररथ को इस घटना की सूचना देते हैं –

तावद्रक्षोविनेत्रा पुनरतिरभस मर्मणि क्रोधभूम्ना गाढ विद्ध शतघ्न्या ।[4]

लक्ष्मण के मूर्च्छित होने से रामादिक को शोक–सन्तप्त देख वह राक्षस सेना के साथ शत्रु की ओर अग्रसर होता है, चित्ररथ आश्चर्यान्वित होकर देखते हैं– (दक्षिणतो विभाव्य) कथमेष लकेश्वर। कल्पावसाननिर्मर्याद पाथ इव पाथोनाथस्य राक्षसबलमाकर्षन्पुनरभ्यमित्रमेति'।[5]

रावण पुत्रवत्सल है। वह अपत्य मेघनाद से अगाध स्नेह रखता है। कतिपय पुत्रो के वध–वृत्तान्त से अनिष्टाशकावश मेघनाद के निकट पहुँचता है।[6] जामदग्न्य के कथन से ज्ञात होता है कि

---

१ महावीरचरितम् ६/२६
२ वही ६/२३
३ वही ६/३४–३५
४ वही ६/४८ का उत्तरार्ध
५ वही ६/५२–५३
६ वही ६/४२ का उत्तरार्ध

रावण कैलास पर्वत को उठाने मे समर्थ तथा त्रिलोकजित् है, किन्तु वह दुर्धर्ष कार्त्तवीर्य से परास्त हुआ था।[1] वह युद्ध मे दिव्यास्त्र का प्रयोग करता है–

दिव्यास्त्राणा प्रयोगप्रतिकृतिमुचिता ।[2]

वह मदान्ध, मायावी, समर्थ, वीर तथा समीपस्थ शत्रु है, सम्पाति के शब्दो मे द्रष्टव्य है– मदान्धो मायावी प्रभुरमितवीर्योऽन्तिकचर ।[3] रावण आलसी है, वह स्वय इस तथ्य को स्वीकार करता है।[4] अन्तत वह अपने कुकृत्यो का दुष्परिणाम भोगता है। राम ब्रह्मास्त्र का स्मरण कर रावण का शिरश्छेदन कर वध कर देते हैं। कवि ने रावण का अनेक स्थलो पर निष्प्रभ वर्णन किया है, किन्तु सप्तम अक मे उसे चारित्र्योत्कर्ष प्रदान किया है। अलका लका से कहती है कि रावण ने शापवश समस्त कृत्य सम्पादित किया– 'अयि सरले ! शापमहिम्ना किल मूर्च्छन्मोह सोऽपि नापराध्यति ।[5]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रावण मे प्रतिनायक के समस्त गुण विद्यमान हैं।

माल्यवान्

माल्यवान् प्रतिनायक रावण का अमात्य, मातामह तथा प्रधान सहायक पात्र है। वह एक कुशल कूटनीतिज्ञ है, समस्त राजनीतिक घात–प्रतिघात, नाटकीय घटनाक्रम उसकी योजना के परिणाम हैं, फलस्वरूप वह एक सूत्रधार की भॉति कार्य करता है। वह लकारक्षार्थ अनवरत प्रयत्नशील रहता है, स्वपक्ष तथा परपक्ष की गतिविधियो पर तीक्ष्ण दृष्टि रखता है। धर्मप्रतिकूल होने के कारण उसकी योजनाये निष्फल हो जाती हैं, तथापि वह नयी योजना की सृष्टि मे सलग्न रहता है।

माल्यवान् लका राज्य के प्रति पूर्णतया निष्ठावान् है, अतएव राम द्वारा ताटका एव सुबाहु का वध, शिवधनुर्भंग एव विश्वामित्र से अस्त्रप्राप्ति आदि वृत्तान्त सर्वमाय से ज्ञात होने पर चिन्तित हो जाता है। वह राम को सहज शत्रु मानता है –

---

१ महावीरचरितम् २/१६ का पूर्वार्ध

२ वही ६/५६

३ वही ५/१४

४ न्न स्यादालस्यदोष सकरुणमथवा कोऽनुकम्प्येषु कोप ।। –वही ६/१०

५ वही ७/२–३

अर्थ्यो विरोध शक्तेन जातो न प्रतियोगिना।।[1]

माल्यवान् परगुण की प्रशसा करता है। वह शूर्पणखा से कहता है कि राम अद्भुत प्राणी हैं, देव तथा असुर द्वारा वन्द्य, भय के हेतु तथा धर्मरक्षक हैं –

'निसर्गेण स धर्मस्यगोप्ता '।[2]

वह त्रिजटा से पतिव्रता सीता की प्रशसा करता है– वत्से ! युज्यतेऽपि।

पतिव्रतामय ज्योति शान्त दीप च घुष्यते।[3]

माल्यवान् मन्दोदरी के बुद्धिकौशल की प्रशसा करता है– वत्से ! स्त्रीत्वेऽपि वर सा खलु देवी मन्दोदरी यन्मति प्रतिबोधनायोत्ताम्यति।[4] वह शूर्पणखा से परशुराम के गुणो का वर्णन करता है।[5] माल्यवान् कूटनीतिज्ञ है। वह शूर्पणखा के समक्ष शिवभक्त परशुराम को रामविरुद्ध करने की योजना बनाता है– या तो परशुराम राम का वध कर देगे अथवा राम से पराभूत हो परशुराम नि श्रेयससिद्धि मे रत होगे।[6] उसे परशुराम–विजय पर पूर्ण विश्वास है, अत उन्हे प्रेरित करने के लिये महेन्द्र द्वीप जाने का विनिश्चय करता है।[7] माल्यवान् परशुराम–पराभव से उद्विग्न होकर छद्म योजना बनाता है। वह शूर्पणखा को मन्थरा के छद्मवेष मे मिथिला जाकर कैकेयी का सवाद 'रामवनवास तथा भरतराज्य' विषयक पत्र प्रस्तुत करने की योजना निर्दिष्ट करता है।[8] वह इस योजना के सफल होने पर दण्डकारण्य मे राम का विराधदनुकबन्ध से युद्ध[9], रावण को सीता–प्राप्ति[10], सीता–हरण[11],

---

१ महावीरचरितम् २/७ का उत्तरार्ध
२ वही २/७
३ वही ६/६
४ वही ६/८–६
५ वही २/११
६ वही २/१२–१३
७ वही २/१४–१५
८ वही ४/१–२
६ विराधदनुकबन्धप्रभृतयस्तीक्ष्णा दण्डकारण्यसत्रेषु चरिष्यन्ति। –वही ४/१–२
१० अनिवर्तनीयश्च रावणस्य सीतास्वीकारग्रह। –वही
११ तथा सति सीतापहारत किमपर कुर्यात्। –वही ४/४–५

राम–रावण–सन्धि[1], वाली द्वारा राम का वध[2] आदि सभावनाओ पर विचार करता है, छद्मदण्ड के प्रयोग की सार्थकता बताता है।[3]

माल्यवान् दूरदर्शी है। वह राजकुल मे व्याप्त मत वैभिन्न्य पर विचार करता है, खरदूषण प्रभृति धनलोभवश रावण के साथ हैं, कुम्भकर्ण निद्रालु है, विभीषण सहज शत्रु है, वह बालसखा सुग्रीव के पास ऋष्यमूक पर्वत पर जायेगा, वाली–वध के अनन्तर विभीषण ही एकमात्र अवशिष्ट वशधर होगा तथा लका राज्य का स्वामी होगा।[4]

माल्यवान् एक प्रखर आलोचक अथवा समीक्षक है। षष्ठ अक मे वह सीताहरण, शूर्पणखा का अगविदीर्णन, अक्षकुमार का वध, राम–विभीषण–मैत्री प्रभृति कृत्यो हेतु रावण को उत्तरदायी ठहराता है– अहह, रक्ष पतेर्दुर्विनयविटपिकोरका परित प्रकीर्णा इव।[5]

दुष्कर्मणा परीपाक स्वयमेवैष दीप्यते।[6]

वह राजाओ की स्वेच्छाचारिता की निन्दा करता है तथा सोचता है कि मन्त्रियो का उत्तरदायित्व बढ जाता है एव प्रतीकार पर विचार करना पडता है[7]– '(सानुतापम्) साचिव्य नाम महते सतापाय'।[8] वह रावण की सीता विषयिणी अभिलाषा की निन्दा करता है, परिणामस्वरूप उसके मान, यश का ह्रास होगा।[9]

माल्यवान् भाग्यवादी है, वह समस्त कार्यों की विफलता के लिये भाग्य को दोष देता है– (नि श्वस्य) 'अहो वामता भागधेयानाम्' ।[10], वामनेत्रस्पन्दन से उसे कष्ट होता है।[11] वह बुद्धिमान् है, शूर्पणखा से मिथिलागमन व कार्यसम्पादन हेतु कहता है, विश्वामित्र तथा वसिष्ठ की अनुपस्थिति मे

---

१ म्रदितो मृत एव निष्प्रताप परितप्तो यदि वा घटेत सन्धौ।। – महावीरचरितम् ४/५
२ किन्तु प्राक[illegible]भावेन भीमौजसा शत्रुर्वज्रधरात्मजेन हरिणा घोरेण घानिष्यते।। –वही ४/६
३ वही ४/४
४ वही ४/७–८ ६ १०
५ वही ६/०–१
६ वही ६/६ का उत्तरार्ध
७ वही ६/२
८ वही ६/२–३
९ वही २/६
१० वही ६/१–२
११ (वामाक्षिस्पन्दन सूचयन्, सव्यथम्)। –वही ६/६–७

ही इस कार्य को सुकर मानता है– 'गम्यतामिदानी यत्र प्रेषितासि। सुकर चैतत्प्रयोजन यदि जनकदशरथान्तिके वसिष्ठविश्वामित्रौ न स्याताम्।'[1]

माल्यवान् कुशल अमात्य है। उसने चारगणो को सर्वत्र नियुक्त कर दिया है, अतएव उसे शत्रुकृत कार्यों की अनवरत सूचना मिलती है, चारगण उसे वानरो द्वारा सीतान्वेषण का वृत्तान्त ज्ञापित करते हैं– 'उक्त च किष्किन्धात प्रतिनिवृत्तेन चारकेण । यत्सीतामन्वेष्टुमनुदिशमभिदुद्रुवु कपिपुगवा इति ।'[2] माल्यवान् नीतिनिपुण है। वह त्रिजटा से कहता है कि विभीषण दूरदर्शी है, एकमात्र अवशिष्ट वशधर है।[3] त्रिजटा माल्यवान् के नीतिपूर्ण कथन से अनिष्ट की आशका करती है– 'कनिष्ठमातामहस्याय नयवचनोपन्यासोऽन्यस्मिन्नेव कस्मिन्नमगल एव विश्रान्त'।[4]

माल्यवान् का स्वभाव अत्यन्त कोमल है। वह राक्षसवश के विनाश की सकल्पना कर विलाप करता है।[5] माल्यवान् धैर्यशाली है। भयाक्रान्त त्रिजटा को वह सप्तधातुप्राकार से अवच्छिन्न, अलघ्य परिखायुक्त लका नगरी तथा रावण के पराक्रम का विश्वास दिलाता है– 'वत्से ! किमेव–मतिकातरासि ? पश्य –

'दुर्गोऽय चित्रकूटस्तदुपरि नगर सप्तधातुप्रकारप्राकार
दुस्तरैषा निरवधिपरिखाप्यब्धिरभ्रकषोर्मि ।

(विमृश्य) अथवा किमनेन।

'दोर्दण्डा एव दृप्यद्रिपुदलनमहासत्रदीक्षा प्रतीक्ष्या रक्षोनाथस्य '।[6]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि माल्यवान् एक कुशल अमात्य, कूटनीतिज्ञ एव दूरदर्शी है। वह स्वाभिमानी भी है, उसे रावण–विजय पर विश्वास नहीं है। वह रावण की आलोचना भी करता है।

---

१ महावीरचरितम् ४/१०–११
२ वही ६/३–४
३ वही ६/७–८
४ वही
५ वही ४/११
६ वही ६/७

परशुराम

परशुराम अप्रतिम वीर हैं, जिनके महावीरत्व का कवि ने सम्यक् प्रतिपादन किया है वस्तुत उनका व्यक्तित्व विभिन्न रूपो मे प्रकट हुआ है, कहीं वे रावण के प्रति धीरोदात्त हैं तो राम, वसिष्ठ प्रभृति के प्रति धीरोद्धत तथा अहकार–दमन के अनन्तर धीरशान्त। आचार्य धनिक के अनुसार अगभूत नायक मे भिन्न–भिन्न अवस्थाओ का चित्रण हो सकता है।[1] द्वितीय अक मे राम की प्रशसोक्ति है – कार्त्तिकेय–विजय के उपलक्ष्य मे शिवप्रदत्त परशु के कारण परशुराम नामख्यात आपके पिता जमदग्नि हैं, महादेव गुरु हैं, आपका पराक्रम अनिर्वचनीय है, आपने पृथ्वी का कश्यप मुनि को दान किया है, आप मे क्षत्रियोचित तेज तथा ब्राह्मणोचित तपस्या, तेजभाव समाविष्ट है।[2] सखियॉ परशुराम की शारीरिक कान्ति तथा वेश–भूषा का वर्णन करती हैं– हाथ मे परशु है, जटाये यत्र–तत्र विस्तीर्ण हैं, उरु के आघात से पृथ्वी तक प्रकम्पित हो जाती है।[3]

राम दुर्धर्ष तेजपुञ्ज तथा साक्षात् यश रूप वीररसवत् मण्डित परशुराम की प्रशसा करते हैं।[4] परशुराम धार्मिक तथा कठोरकार्यवश भयकर व्रतनिधान, अथर्ववेदतुल्य अपरिमित शक्ति से सम्पन्न हैं–

> पुण्योऽपि भीमकर्मा निधिर्व्रताना चकास्त्यमितशक्ति।
> मूर्तिमभिरामघोरा बिभ्रदिवाथर्वणो निगम ।।[5]

वह ब्राह्मण के रूप मे क्रोध कठोर शक्तिपुञ्ज शिव हैं –

> कल्पापायप्रणयि दधत कालरुद्रानलत्व
> सरब्धस्य त्रिपुरजयिनो देवदेवस्य तिग्म ।[6]

इनकी आकृति उग्र एव शान्त द्विविध रूप मे अवलोकनीय है– कण्ठ मे कुठार, स्कन्ध प्रदेश पर तरकस, शरीर मे जटा, वल्कल तथा मृगचर्म है, हाथ मे बाण है।[7] राम उनकी मेघसदृश वाणी

---

१ न चावस्थान्तराभिधानमनुचितम् अगभूतनायकाना नायकान्तरापेक्षया महासत्त्वादेरण्यवस्थिततत्वात्।
–दशरूपक २/६ का वृत्तिभाग, पृ० ८६

२ महावीरचरितम् २/३५,३६

३ वही २/२२–२३

४ वही २/२३

५ वही २/२४

६ वही २/२५ का पूर्वार्ध

७ वही २/२६

की प्रशसा करते हैं– 'तस्यानरालसाहसप्रचण्डकर्मण पुष्करावर्तकस्तनितमासलो वाङ्निर्घोष कर्ण–विवरमाप्याययति।'[1]

जामदग्न्य स्वय तपस्वी हैं तथा तपस्वियो का अत्यधिक ध्यान रखते हैं। वह विराधदनुकबन्ध से सत्रस्त तपस्वीजनपरित्राणार्थ रावण को पत्र प्रेषित करते हैं, प्रतिकूल आचरण करने पर वह प्रतीकार करने के लिये तत्पर होगे –

ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये।
जामदग्न्यश्च वो मित्रमन्यथा दुर्मनायते।।[2]

यहॉ परशुराम की निर्भीकता अभिव्यञ्जित होती है। परशुराम असाधारण बल, पराक्रम एव तेज से सम्पन्न हैं। माल्यवान् का दृढ विश्वास है कि पञ्च तत्त्व तथा शक्तियो के यथावत् विद्यमान रहने पर परशुराम–विजय अवश्यभावी है–

तान्येव यदि भूतानि ता एव यदि शक्तय।
तत परशुरामस्य न प्रतीम पराभवम्।।[3]

वह गम्भीर, शान्त एव पवित्र हैं, तपस्या से दर्शको के सत्त्व गुण का वर्धन तथा पाप का नाश करने मे समर्थ हैं।[4] राम सीता से गर्वोद्धत, तप एव पराक्रम सम्पन्न परशुराम की प्रशसा करते हैं–

'उत्सिक्तस्य तप पराक्रमनिधेरस्यागमादेकत'।[5]

दशरथ उन्हे स्वभावत पवित्र मानते हैं–

निसर्गत पवित्रस्य [illegible] तव।
तीर्थोदक च वह्निश्च नान्यत शुद्धिमर्हत।।[6]

---

१ महावीरचरितम् २/२१–२२
२ वही २/१०
३ वही २/१४
४ वही २/१५
५ वही २/२२ का प्रथमार्ध
६ वही ४/२७

परशुराम अरण्यवासी हैं– 'जामदग्न्यस्तावदारण्यकव्रत'।[1] वह शतानन्द से लोकव्यवहार के प्रति अनभिज्ञता प्रकट करते हैं– 'अरण्यवासी ब्राह्मणोऽहमनभिज्ञ परमेश्वरगृहव्यवहारस्य'।[2] परशुराम ककणमोचनार्थ जाने वाले राम से अतिशीघ्र आने के लिये कहते हैं क्योकि अरण्यवासी जनपद मे अधिक काल तक नहीं रुक सकते– क्रियता लोकधर्म। पश्यन्तु त्वा ज्ञातय। किन्तु जनपदेषु न चिरमारण्यकास्तिष्ठन्ति। गन्तुकामोऽस्मि। अतो न काल परिक्षेप्तव्य।[3]

जामदग्न्य धीरोद्धत, विकत्थन तथा क्रोधी प्रकृति के व्यक्ति हैं। वह शिवधनुर्भंग वृत्तान्त ज्ञात होने पर मिथिला पहुँचते हैं तथा राजकर्मचारियो से अत्यन्त रोषपूर्वक अपने वीरोचित कृत्यो कार्त्तवीर्य–विजय, इक्कीस बार क्षत्रियसहार, क्रौञ्च पर्वत का भेदन कर हस का पृथ्वी पर आगमन स्कन्द–विजय आदि की प्रशसा कर राम का अन्वेषण करते हैं।[4]

वह राम को धनुर्विद्याभ्यास मे स्कन्दविजय के कारण शिवप्रदत्त कुठार की प्राप्ति विषयक वृत्तान्त बताते हैं।[5] उन्हे अपने बल एव पराक्रम पर दृढ विश्वास है, अतएव वह राम को धनुर्प्रहारार्थ प्रेरित करते हैं तथा कहते हैं कि मेरे प्रहार करने पर कबन्धमात्रावशिष्ट रहेगा।[6] वह रामवधार्थ समर्थ हैं –

एकस्य राघवशिशो कृतचापलस्य कृत्वा शिरो मयि वनाय पुन प्रयाते।[7]

वह शतानन्द के प्राकृत तेज का शमन करना चाहते हैं– "गौतम ! त्वयेव बहुभि क्षत्त्रियपुरोहितैर्ब्रह्मतेजसा स्फुरितमासीत्। किन्तु प्राकृतानि तेजास्यप्राकृते ज्योतिषि शाम्यन्ति"।[8] परशुराम गुरु शिव के अनन्य भक्त हैं। वह शिवधनुर्भंगकर्त्ता राम के प्रति क्रोधभाव प्रकट करते हैं।[9] रामवधार्थ दृढ रहना उनकी शिवभक्ति का द्योतक है–

---

१ महावीरचरितम् २/१२–१३
२ वही पृ० १०२
३ वही पृ० १०३
४ वही २/१७
५ वही २/३६
६ वही २/४६
७ वही ३/१६ का पूर्वार्ध
८ वही ३/१८–१६
६ वही २/२८

शत्रुमूलमनुत्खाय न पुनर्द्रष्टुमुत्सहे।
त्र्यम्बक देवमाचार्यमाचार्यानीं च पार्वतीम्।।[1]

जामदग्न्य स्वाभिमानी हैं। वह वसिष्ठ एव विश्वामित्र से कहते हैं– राम द्वारा गुरु–तिरस्कार का उचित प्रतीकार आवश्यक है, गुरुजनो के प्रति समादरभाववश शान्त रहने पर इस तथ्य को कौन जानेगा –

को विद्याद् गुरुगौरवादिति भवेज्ज्ञातापि वक्ता पुन–
र्नत्वेवास्ति तथास्थितस्य सुलभद्वेष हि वीरव्रतम्।[2]

परशुराम को मानरक्षा मोक्ष से भी बढकर प्रिय है–

यतो विमुक्तेरपि मानरक्षण प्रिय निसर्गेण तथा च पश्य मे।[3]

परशुराम की परगुणग्राहिता श्लाघनीय है। वह राम की गम्भीरोक्ति से प्रभावित हो आलिगन की अभिलाषा प्रकट करते हैं।[4] जामदग्न्य अहकारी हैं। वे वसिष्ठ को प्रतिस्पर्धी नहीं मानते –

सबन्धस्तु वसिष्ठमिश्रविषये मान्यो जराया न तु
स्पर्धायामधिक समश्च तपसा ज्ञानेन चान्योऽस्ति क ।।[5]

वह विश्वामित्र के ब्रह्मतेज को उग्र तपस्या से दग्ध करने अथवा कुठार–प्रयोग हेतु तत्पर होते हैं –

'उग्रेण भोस्तव तपस्तपसा दहामि पक्षान्तरे च सदृश परशु करोतु ।[6]

वह परशुराम–पराभव विषयक राम की घोषणा का उपहास करते हैं– एहि मन्ये राजपुत्र ! जामदग्न्य विजेष्यसे, (सस्मितम्) न हि विजेष्यसे ! दुर्दान्तो हि रेणुकातनयस्त्वदन्तक ।[7] जामदग्न्य क्षत्रियो के प्रबल शत्रु हैं। जनक क्षत्रिय हैं, अत उन्हे शिरोवेदना होने लगती है–'सद्वृत्त एष।

१ महावीरचरितम् ३/६
२ वही ३/३
३ वही ३/६
४ वही २/३८ का उत्तरार्ध
५ वही ३/३७
६ वही ३/४४ का उत्तरार्ध
७ वही ३/४७–४८

तथापि क्षत्त्रिय इति शिर शूलमुत्कोपयति ।[1] वह राम एव दशरथ के समूल नाश की घोषणा करते हैं।[2] वह जनक को सगर्व, अभिमानी तथा वृद्ध कहकर उपहास करते हैं, क्षत्रियो को देखकर उपहास करने वाले तथा शत्रुओ का मस्तक काटने वाले कुठार की प्रशसा करते हैं।[3]

वह क्षत्रियसहार रूप द्वादश महाप्रलय की घोषणा करते हैं।[4] जनक को खण्ड–खण्ड कर देना चाहते हैं।[5] परशुराम दृढप्रतिज्ञ हैं। वह गुरुजनो के प्रति किये गये तिरस्कार का कालान्तर मे प्रायश्चित कर सकते हैं, किन्तु शस्त्र–परित्याग नहीं –

प्रायश्चित्त चरिष्यामि पूज्याना तो व्यतिक्रमात् ।
न त्वेव दूषयिष्यामि शस्त्रग्रहमहाव्रतम् ।।[6]

वह विश्वामित्र से अस्त्रग्रहणौचित्य विषयक प्रश्न करते हैं– भगवन् कुशिकनन्दन !

वशे विशुद्धिमतियेन भृगोर्जनित्वा
शस्त्र गृहीतमथ तस्य किमत्र युक्तम्।[7]

वह कहते हैं कि मैंने च्यवन प्रभृति वृद्ध जन के कहने पर कोपशमन किया था, परशु को भी नियन्त्रित कर लिया, किन्तु शिवधनुर्भंग से मैं विवश हो गया।[8] परशुराम उग्र प्रकृति के हैं किन्तु दया, करुणा आदि भावो से युक्त हैं। राम अभिनव परिणीत हैं, अत उनके हृदय मे सुख का सञ्चार होता है, नेत्र स्नेह प्रकाशित करते हैं, राम हन्तव्य हैं, अतएव कष्ट होता है।[9] वसिष्ठ के स्वगत भाषण से ज्ञात होता है कि परशुराम गुणसम्पन्न होने पर भी आसुरी प्रवृत्ति से युक्त हैं –

काम गुणैर्महानेष प्रकृत्या पुनरासुर ।
उत्कर्षात्सर्वतोवृत्ते सर्वाकार हि दृष्यति।।[10]

---

१ महावीरचरितम् २/४३–४४
२ वही ३/२४ का उत्तरार्ध
३ वही ३/२८
४ वही ३/४१
५ वही ३/३२
६ वही ३/८
७ वही ३/११ का उत्तरार्ध
८ वही ३/१५
६ वही २/४५
१० वही ३/१२

परशुराम अहकारदमन के अनन्तर धीरशान्त प्रकृति के प्रतीत होते हैं वह दर्पव्याधि विनष्ट करने हेतु राम के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं– अपराद्ध कि त्वया जामदग्न्यस्य। ननूपकृतम्।[१] वसिष्ठादिक के निकट जाने के लिये राम के निवेदन को वह स्वीकार करते हैं– 'इदमिदानीम–शक्यम्। अनतिक्रमणीयो रामनिदेश'।[२]

परशुराम वसिष्ठ, विश्वामित्र के प्रति आदरावनत रहते हैं, वसिष्ठ की प्रशसा करते हैं तथा जनक–प्रदत्त आसन ग्रहण करते हैं– 'यदभिरुचित सूर्यशिष्यान्तेवासिने राजन्यश्रोत्रियाय।'[३] वह दशरथ के कुल, गुरु आदि की प्रशसा करते हैं।[४] राम से वनगमनार्थ स्वीकृति चाहते हैं– 'रामभद्र ! अनुमोदस्व मामरण्यगमनाय'[५] तथा राम को दण्डकारण्य मे निवास करने वाले तपस्वी जन की रक्षा हेतु धनुष् प्रदान करते हैं।[६]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि परशुराम वस्तुत वीर पुरुष हैं। उनका धीरोद्धत रूप अकारण नहीं है, स्वाभिमान से ओत–प्रोत है। स्वभाव–परिवर्तन भी वीरोचित है। वह वस्तुत प्रशसा के पात्र हैं। कवि ने प्रकारान्तर से राम का चारित्र्योत्कर्ष किया है। राम–परशुराम–सवाद इसका प्रबल साक्ष्य है।

शूर्पणखा

राक्षसी शूर्पणखा का प्रकृत नाटक मे विशिष्ट महत्त्व है। वह प्रतिनायक रावण की सोदर बहन, प्रीतिपात्र तथा कर्त्तव्यनिष्ठ है, माल्यवान् का कथन द्रष्टव्य है– 'रावणप्रियासि वत्से ! कार्यज्ञा च'।[७] अतएव विश्वासपात्र है– 'ततो नि शकमावेद्यते हृदयखेद'।[८] शूर्पणखा आरम्भ मे ही रावण के हाव–भाव से कष्टप्रद भविष्य की सकल्पना कर लेती है।[९]

---

१ महावीरचरितम् ४/२१–२२
२ वही ४/२३–२४
३ वही ४/२७–२८
४ वही ४/३० ३१
५ वही ४/३१–३२
६ वही ४/३८
७ वही ४/६–७
८ वही
९ वही २/७–८

शूर्पणखा राजनीति मे निपुण है तथा राज्यसम्बन्धी आचार–व्यवहार से पूर्णतया परिचित है। वह परशुराम–पत्र मे रावण का प्रथम निर्देश न देखकर माल्यवान् से कहती है– कथ प्रभुपद दु शिलष्टक्रम लिखितम्'।[1] शूर्पणखा दूरदर्शी है। वह माल्यवान् की परशुराम को रामविरुद्ध प्रेरित करने को दोषपूर्ण बताती है– 'पक्षान्तरे महादोष,'[2] वह दूरस्थ राम को शत्रु बनाने को युक्तिसगत नही मानती है।[3]

वह परशुराम–पराजय, वाली–वध के अनन्तर राम एव विभीषण के सयोग की आशका करती है।[4] शूर्पणखा कोमलहृदया है। परशुरामजित् राम का देव गण द्वारा अभिनन्दन देखकर वह भयभीत हो जाती है।[5] माल्यवान् की रावणादिकनाशसकल्पना–श्रवण कर वह विलाप करती है– 'हा अम्ब ! त्वयापि दु ख प्रेक्षितव्यम्'।[6]

वह कार्य–सम्पादन मे दक्ष है, छद्मवेष मे मिथिला पहुँचकर पत्र अर्पित करती है।[7] शूर्पणखा दुश्चरित्र है। राम के सौम्य व्यक्तित्त्व से प्रभावित हो उसका चरित्र स्खलित हो जाता है।[8] इस दुष्कृत्य का उसे परिणाम भुगतना पडता है। जटायु सम्पाति को लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के अगविदीर्णन की सूचना देता है।[9] शूर्पणखा परगुणग्राही है। वह वनगमनार्थ उद्यत राम की प्रशसा करती है।[10]

---

१ महावीरचरितम् २/६–१०
२ वही २/१३–१४
३ वही ४/२–३
४ वही ४/६–१०
५ वही ४/१–२
६ वही ४/१०–११
७ वही ४/४०–४१
८ वही
६ वही ५/१२
१० वही ४/४२–४३

षष्ठ अध्याय

सा[illegible] व्यक्ति

षष्ठ अध्याय

रसाभिव्यक्ति

रस तो प्राणी मात्र मे अन्तर्निविष्ट तत्त्व है, रसानुकूल प्रवृत्ति उसकी स्वभावगत विशेषता है। उपनिषदो मे रस वस्तुतत्त्वरूपेण वर्णित है[1], – कहीं ब्रह्म को ही रसमय कहा गया है[2], अन्यत्र भूतादिक के रसरूप मे पृथ्वी आदि निर्दिष्ट हैं।[3] कामसूत्रकार ने इसे रति, प्रीति, भाव, राग, वेग आदि अनेक अर्थों मे प्रयुक्त किया है।[4]

दृश्यकाव्य अथवा रूपक–प्रबन्ध के भेदक तत्त्वो मे 'रस' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। दृश्यकाव्य न केवल बाह्य जगत से सम्बद्ध है, अपितु यह भाव जगत एव काव्य की आत्मा 'रस का मूल स्रोत है। रस ही नाट्य अथवा काव्य का प्राणभूत तत्त्व है, जब कविप्रतिभा शब्दगत चातुर्य का आश्रयण कर काव्यसर्जना करती है, तभी रस की सुन्दर अभिव्यक्ति होती है। वस्तुत रससिद्ध कवि ही उत्तम कवि की श्रेणी मे आता है जिसकी कृति का अध्ययन कर मर्त्यलोक के वासी मनुष्य काव्यसुधामृत का पान करते हैं, जिसकी वाणी रसोर्मियो मे घूर्णन करती हुयी नाट्य मे नृत्य करती है।[5] परिमित काव्य भी रसान्वित होकर अनन्तता को प्राप्त हो जाता है।[6] अतएव कथावस्तु के उचित सघटन एव आकर्षक सृजन हेतु घटनाक्रम का सरस होना अपरिहार्य है। रसपरिग्रहणवश पूर्वदृष्ट अर्थ भी नूतन प्रतीत होते हैं।[7] आचार्य मम्मट ने भी रसास्वादन से समुद्भूत विगलित वेद्यान्तर आनन्द को

---

१ प्राणो वा अगाना रस । –बृहदारण्यकोपनिषद्

२ रसो वै स । –तैत्तिरीयोपनिषद् २/७

३ एषा भूताना पृथिवी रस। पृथिव्या आपो रस। अपामोषधयो रस। ओषधीना पुरुषो रस। पुरुषस्य वाग्रस। वाच ऋग् रस। ऋच साम रस। साम उद्गीथो रस। –छान्दोग्योपनिषद् १/१/२–३

४ रस रति, प्रीति भाव, राग, वेग समाप्तिरिति रतिपर्याया। –कामसूत्र, पृ० ६१

५ स कविस्तस्य काव्येन मर्त्या अपि सुधान्धस।
रसोर्मिघूर्णिता नाट्ये यस्य नृत्यति भारती।। –नाट्यदर्पण १/५

६ युक्त्याऽनयानुसर्तव्यो रसादिर्बहुविस्तर।
मिथोऽप्यनन्तता प्राप्त काव्यमार्गो यदाश्रयात्।। –ध्वन्यालोक ४/३

७ दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्था काव्ये रसपरिग्रहात्।
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमा।। –वही ४/४

'सकलप्रयोजनमौलिभूतम्' कहकर रस को ही परम प्रयोजन स्वीकार किया है– 'सकलप्रयोजन–मौलिभूत समनन्तरमेव रसास्वादनसमुद्भूत विगलितवेद्यान्तरमानन्दम् '।[1] रस काव्य का आत्मतत्त्व है[2] तथा गुण अलकार प्रभृति रस के अगभूत हैं[3], उसके अभाव मे अलकारादिक हास्यास्पद हो जाते हैं।[4]

रसससृष्ट्यर्थ अनवरत प्रयत्नशीलता ही काव्य का रूप ले सकती है।[5] अन्य सम्प्रदाय[6] के विद्वानो ने भी रस का प्राधान्य या महत्त्व प्रतिपादित किया है।

आचार्य भरत मुनि का रसनिष्पत्तिविषयक सूत्र है – 'विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद्रस–निष्पत्ति'– अर्थात् विभावादिक रसनिष्पत्ति हेतु अपरिहार्य हैं। विभाव, अनुभाव, सचारी भाव से परिपुष्ट

---

१ काव्यप्रकाश १/२ का वृत्तिभाग

२ (क) काव्ये रसयिता सर्वो न बोद्धा न नियोगभाक्। (भट्टनायक ध्वन्यालोकलोचन) –द्रष्टव्य अभिनवगुप्त ध्वन्यालोकलोचन प्रथम उद्योत पृ० ६०

(ख) तेन रस एव वस्तुत आत्मा। वस्त्वलकार ध्वनि तु सर्वथा रस प्रति पर्यवस्येते इति।
–अभिनवगुप्त ध्वन्यालोकलोचन, प्रथम उद्योत, पृ० १४२

(ग) [illegible], सञ्ज्ञिनि रसादिरूपे न कस्यचिद् विमति । –हिन्दीव्यक्तिविवेक, पृ० १६३

(घ) रस आत्मा । –काव्यमीमासा, पृ० २७

(ङ) ये रसस्याङ्गिनो धर्मा । –काव्यप्रकाश ८/६६

(च) वाक्य रसात्मक काव्यम् । –साहित्यदर्पण १/४

३ (क) उपकुर्वन्ति त सन्त येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलकारास्तेऽनुप्रासोपमादय ।। –काव्यप्रकाश ८/६७

(ख) रसभावादितात्पर्यमाश्रित्य विनिवेशनम्।
अलकृतीना सर्वासामलकारत्वसाधनम्।। –ध्वन्यालोक, पृ० ७१

४ [illegible]लेषालकारभाजाऽपि रसानिष्यन्दकर्कशा ।
दुर्भगा इव कामिन्य प्रीणन्ति न मनोगिर ।। –नाट्यदर्पण १/७

५ तस्य रसात्मताभावे मुख्यवृत्तया काव्यव्यपदेश एव न स्यात् किमुत विशिष्टत्वम्। –हिन्दीव्यक्तिविवेक पृ० १५४

६ (क) मधुर रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थिति ।
येन माद्यन्ति धीमन्तो मधुनेव मधुव्रता।। –काव्यादर्श १/५१

(ख) [illegible]सोन्मिश्र शास्त्रमप्युपयुजते।
प्रथमालीढमधव पिबन्ति कटुभेषजम्।। –भामह काव्यालकार ५/३

(ग) ननु काव्येन क्रियते सरसानामवगमचतुर्वर्गे।
लघुमृदु च नीरसेभ्यस्ते हि त्रस्यन्ति शास्त्रेभ्य ।। –रुद्रट काव्यालकार १२/१

(घ) दीप्तरसत्त्व कान्ति । –काव्यालकारसूत्रवृत्ति ३/२/१५

(ङ) कुर्वन्सर्वाशये व्याप्तिरौचित्यरुचिरो रस ।
मधुमास इवाशोक [illegible]त मन ।। –औचित्यविचारचर्चा १६

(च) रसादिपरमार्थज्ञमन सवादसुन्दर । –व[illegible] १/२६

स्थायी भाव 'रस कहा जाता है।[1] स्थायी भाव मन मे वासना अथवा सस्कार–रूप मे सर्वदा विद्यमान रहते हैं। आचार्यों ने आठ स्थायी भावो का प्रतिपादन किया है –

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयन्तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायी भावा प्रकीर्तिता ।।[2]

अन्यत्र निर्वेद अथवा वैराग्य को मिलाकर नौ स्थायी भाव स्वीकार किया गया है।[3]

भाव का हेतु, कारण, निमित्त 'विभाव' है जिसके द्वारा वाचिक, आगिक एव सात्त्विक अभिनय विभावित किये जाते हैं।[4] विभाव के दो प्रकार हैं – आलम्बन तथा उद्दीपन। जिन पात्रो का आश्रय लेकर रत्यादिक स्थायी भाव उद्बुद्ध होते हैं वे ललनादिक आलम्बन विभाव हैं तथा उन रत्यादिक भावो को उद्दीपित करने वाले दृश्य कौमुदी, उद्यान, नदी, तीरादिक उद्दीपन विभाव हैं। जिस पात्र के हृदय मे रत्यादिक स्थायी भाव व्यक्त होता है, वह उस भाव का आश्रय कहलाता है। इन आलम्बन एव उद्दीपन विभाव के आधार पर पात्रो के मनस्थित भाव जिन विकारो अर्थात् शारीरिक परिवर्तनो द्वारा बाहर प्रकाशित होते हैं, उन्हे 'अनुभाव' कहते हैं। ये शारीरिक चेष्टाये कायिक, वाचिक एव मानसिक होती हैं, तदनुसार त्रिविध अनुभाव भी होते हैं। विभाव रत्यादिक स्थायी भाव को उद्बुद्ध करने वाले 'कारण' हैं तथा अनुभाव कार्य। अतएव अनुभाव की व्युत्पत्ति है – 'अनु पश्चात् भवन्तीति अनुभावा'। पात्रो के द्वारा प्रदर्शित चिन्ता, उग्रता, धैर्यादिक भाव नानाविध भावो के प्रकाशक हैं, इन्हे सञ्चारी अथवा व्यभिचारी भाव कहा जाता है। धनञ्जय ने स्थायी भाव को 'लवणाकर की उपमा दी है, इसके विपरीत सञ्चारी भाव समुद्र के तरगो की भॉति अस्थिर हैं।[5] [illegible] विभावादिक से साधारणीकरण के अनन्तर तन्मय होकर नाटकगत पात्रो की भावनाओ को अपनी भावना समझने लगता है, आनन्द की अनुभूति करता है। यह आनन्द ही 'रस' पद से व्यपदिष्ट होता है। तन्मयता

---

१ विभावानुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिण ।
व्यक्त स तैर्विभावाद्यै स्थायीभावो रस स्मृत ।। –काव्यप्रकाश ४/२८

२ वही ४/३०

३ निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस। – वही ४/३५

४ विभावो विज्ञानार्थ। विभाव कारण निमित्त हेतुरिति पर्याया। विभाव्यन्तेऽनेन वागगसत्त्वाभिनया इत्यतो विभाव यथा विभावित विज्ञातमित्यनर्थान्तरम्। –नाट्यशास्त्र ७/३ का वृत्तिभाग

५ (क) विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न य।
आत्मभाव नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकर ।। –दशरूपक ४/३४

(ख) विशेषादाभिमुख्येन चरन्ती व्यभिचारिण ।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्ना कल्लोला इव वारिधौ।। –वही ४/७

ही रस है। हृदय मे स्थायीरूपेण स्थित भाव विभावादिक के सहयोग से रस के रूप मे परिणत हो जाता है। नाट्य रसाभिव्यक्ति का प्रधान साधन है, अतएव भरत मुनि ने रसो को 'नाट्य रस' की सज्ञा दी है। सामाजिक स्थायी भावो का मन से आस्वाद करते हैं, अतएव इन्हे नाट्य रस कहा जाता है।[1]

आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार काव्यश्रीवृद्धयर्थ महाकाव्य अथवा रूपक मे किसी एक रस का अगी होना अभीप्सित है, अन्य रस अगभूत रहते हैं।[2]

आचार्य भरत के अनुसार विभाव, अनुभाव एव सञ्चारी भावो का आश्रय होने के कारण 'स्थायी' भाव ही प्रधान होता है। स्थायी भाव ही रसत्व को प्राप्त होता है, व्यभिचारी भाव गौण बनकर उनका अनुसरण करते हैं। समस्त भावो के मध्य स्थायी भाव महान् होता है[3] –

बहूना समवेताना रूप यस्य भवेद्बहु।
स मन्तव्यो रस स्थायी शेषा सञ्चारिणो मता ।।

आचार्य अभिनवगुप्त इस पद्य की द्विविध व्याख्या प्रस्तुत करते हैं –

(१) चित्तवृत्तिरूप अनेक भावो मे से जिसका रूप बहु अर्थात् आधिकारिक इतिवृत्तव्यापी हो, वह स्थायी (अगी) रस है, अन्य अवशिष्ट अर्थात् प्रासगिक इतिवृत्त मे रहने वाली चित्तवृत्ति 'सञ्चारी' रस है। अभिनवगुप्त ने भागुरि मुनि को इसका समर्थक[4] बताया है।

---

१ भावाभिनयसयुक्ता स्थायिभावास्ततो बुधा।
आस्वादयन्ति मनसा तस्मान्नाटयरसा स्मृता ।। –नाट्यशास्त्र ६/३३

२ (क) प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धाना नानारसनिबन्धने।
एको रसोऽङगीकर्त्तव्यस्तेषामुत्[illegible]।। –ध्वन्यालोक ३/२१

(ख) प्रबन्धेषु महाकाव्यादिषु नाटकादिषु वा विप्रकीर्णतयाङ्गाङ्गिभावेन बहवो रसा उपनिबध्यन्त इत्यत्र प्रसिद्धौ सत्यामपि य प्रबन्धाना छायातिशययोगमिच्छति तेन तेषा रसानामन्यतम कञ्चिद्विवक्षितो रसोऽङ्गित्वेन विनिवेशितव्य इत्यय युक्ततरो मार्ग। –वही वृत्तिभाग

३ (क) विभावानुभावव्यभिचारिण स्थायिभावानुपाश्रिता भवन्ति इत्याश्रयत्वात्स्वामिभूता स्थायिनो भावा। –नाट्यशास्त्र ७/७ वृत्ति

(ख) तत्र स्थायिभावा रसत्वमाप्नुवन्ति। परिजनभूता व्यभिचारिणो भावास्तान्गुणतया श्रयन्ते। –वही

४ बहूना समवेताना सञ्चारिणो मता।। इति तत्रोक्तक्रमेणाधिकारिकेतिवृत्तव्यापिका चित्तवृत्तिरव[illegible] स्थायित्वेन भाति प्रासगिकवृत्तान्तगामिनी तु व्यभिचारितयेति रस्यमानता समये । न कश्चिद् विरोध इति केचिद्व्याचचक्षिरे। तथा च भागुरिरपि कि रसानामपि स्थायिसञ्चारितास्तीत्याक्षिप्याभ्युपगमेनैवोत्तरमवोचद्वाढ–मस्तीति। –लोचन (ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत), पृ० २३४

(२) अनेक भावो मे से जिसका विस्तृत रूप उपलब्ध होता है, वह स्थायी भाव एव रस होता है तथा आस्वादनीय होता है, शेष सञ्चारी भाव होते हैं। इस व्याख्या के समर्थको के मत मे प्रस्तुत पद्य मे रसो का अगागिभाव प्रतिपादित नहीं है।[1] अभिनवगुप्त, भागुरि भरत मुनि प्रभृति प्रथम व्याख्या के ही समर्थक प्रतीत होते हैं।

आचार्य धनञ्जय के अनुसार नाटक मे वीर अथवा श्रृगार ही अगी रस होता है, अन्य रस अग होते हैं, निर्वहण सन्धि मे अद्‌भुत रस प्रयुक्त होना चाहिये।[2] महावीरचरितम् मे राम–सीता–परिणय से लेकर राज्याभिषेक पर्यन्त कथानक उपनिबद्ध है। इसमे वीरता, पराक्रम, आश्चर्यजनक कृत्य आदि से समन्वित राम का असाधारण व्यक्तित्व चित्रित है, अतएव वीर एव अद्‌भुत रस से ओत–प्रोत प्रसग उपनिबद्ध हैं। कवि ने नाटक की प्रस्तावना मे ही निर्दिष्ट किया है –

अप्राकृतेषु पात्रेषु यत्र वीर स्थितो रस।
भेदै सूक्ष्मैरभिव्यक्तै प्रत्याधार विभज्यते।।[3]

अपि च

वीराद्‌भुतप्रियतया रघुनन्दनस्य धर्मद्रुहो दमयितुश्चरित निबद्धम्।[4]

वीर रस .

प्रताप, विनय, दृढसकल्प, बल, मोह, अविषाद, नय, विस्मय, शौर्य आदि द्वारा आस्वाद्य बनाया गया उत्साह नामक स्थायी भाव 'वीर' रस कहा जाता है वह दया, युद्ध, दान के योग से तीन प्रकार का होता है तथा मति, गर्व, धृति, प्रहर्ष आदि व्यभिचारी भावो से पुष्ट होता है।[5] इसका वर्ण स्वर्ण है

---

१ इतीयन्तमर्थमवबोधयितुमय श्लोक बहूना चित्तवृत्तिरूपाणा भावाना मध्ये यस्य बहुल रूप यथोपलभ्यते स स्थायी भाव। स च रसो रसीकरणयोग्य, शेषास्तु सञ्चारिण इति व्याचक्षते न तु रसाना स्थायिसञ्चारि–भावेनागतोक्तेति। – लोचन (ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत) पृ० २३४

२ एको रसोऽङगीकर्त्तव्यो वीर श्रृगार एव वा।।
अगमन्ये रसा सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्‌भुतम्। –दशरूपक ३/३३–३४

३ महावीरचरितम् १/३

४ वही १/६ का उत्तरार्ध

५ वीर [illegible]यसत्त्वमोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यै।
उत्साहभू स च दयारणदानयोगात् त्रेधा किलात्र मतिगर्वधृतिप्रहर्षा।। –दशरूपक ४/७२

तथा देवता महेन्द्र हैं।[1] विश्वनाथ के अनुसार वीर रस चार प्रकार का होता है – दानवीर, धर्मवीर, दयावीर एव युद्धवीर।[2] महावीरचरितम् मे ताटकावध परशुराम–राम–सवाद राम–वाली–सवाद रावण की आत्म– प्रशसा, युद्धवर्णन आदि स्थलो पर उत्साह' नामक स्थायी भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति हुयी है। सिद्धाश्रम मे ताटका को उपस्थित देखकर विश्वामित्र राम को वधार्थ आदेश देते हैं, किन्तु राम स्त्री पर प्रहार करना वीरोचित नहीं मानते हैं – भगवन् ! स्त्री खल्वियम्[3], किन्तु ताटका तो साधारण स्त्री नहीं है, वह ब्राह्मणसमूह के लिये कालस्वरूप है। विश्वामित्र पुन कहते हैं – त्वरस्व वत्स ! कि न पश्यसि ब्राह्मणजनस्य सघातमृत्युमग्रत'।[4] राम गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर ताटका का सहार करते हैं।

प्रस्तुत प्रसग मे राम वीर रस के स्थायी भाव उत्साह' के आश्रय हैं, ताटका आलम्बन विभाव तथा ब्राह्मणवधार्थ आगमन उद्दीपन विभाव है। राम का ताटकावधार्थ उद्यत होना तथा उसके वध के लिये प्रयाण अनुभाव तथा धृति, गर्व आदि व्यभिचारी भाव हैं। यहॉ वीर रस की चर्वणा हो रही है।

शिवधनुर्भंगवशात् क्रुद्ध हो परशुराम मिथिला जाकर, राजकर्मचारियो को सम्बोधित करके कहते हैं कि आप लोग राम से कह दीजिये – मैंने कैलासपर्वत के उत्पाटन मे समर्थ, निष्णातबाहुधारी रावण पर विजय प्राप्त करने वाले कार्त्तवीर्य का परशु से प्रहार कर अग–छेदन किया, एकविंशवार क्षत्रियसहार किया, क्रौञ्चपर्वत का भेदन कर पृथ्वी पर हसावतरण किया, गणेश, सेना एव स्कन्द पर विजय प्राप्त किया है –

> कैलासोद्धारसारत्रिभुवनविजयौर्जित्यनिष्णातदोष्ण
> पौलस्त्यस्यापि हेलापहृतरणमदो दुर्दम कार्तवीर्य ।
> यस्य क्रोधात्कुठारप्रविघटितमहास्कन्धबन्धस्थवीयो–
> दो शाखादण्डषण्डस्तरुरिव विहित कुल्यकन्द पुराभूत्।।[5]

यहॉ परशुराम आश्रय, राम आलम्बन तथा धनुर्भंग उद्दीपन विभाव हैं। परशुराम का रामवधार्थ आगमन, आत्मश्लाघा आदि अनुभाव, क्रोध, गर्व आदि व्यभिचारी भाव हैं।

---

१ महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽय समुदाहृत । –साहित्यदर्पण ३/२३२ का उत्तरार्ध
२ रस च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात्।। –वही ३/२३४ का उत्तरार्ध
३ महावीरचरितम् १/३६–३७
४ वही १/३७–३८
५ वही २/१६

परशुराम–आगमन से सत्रस्त हो सीता नारी–सुलभ लज्जा का परित्याग कर राम को रोकना चाहती हैं धनुष् पकड लेती हैं। राम परशुराम–समागम एव सीता–प्रेम से किकर्त्तव्यविमूढ हो जाते हैं। सखियॉ क्षत्रियहन्ता परशुराम के आगमन से प्रकम्पित हो उठती हैं। राम अप्रतिम वीर परशुराम की प्रशसा करते हैं, अन्तत राम सीता को धैर्य बॅधाते हुए कहते हैं – प्रिये ! ये वीर एव मुनि हैं, तुम क्षत्रिया हो, कम्पित मत हो मैं युद्धोद्यत के प्रति सन्नद्ध रघुवशी क्षत्रिय हूँ – अयि प्रिये !

मुनिरयमथ वीरस्तादृशस्तत्प्रिय मे विरमतु परिकम्प कातरे क्षत्त्रियासि।
तपसि विततकीर्तेर्दर्पकण्डूलदोष्ण परिचरणसमर्थो राघवक्षत्त्रियोऽहम्।।[1]

प्रस्तुत पद्य मे राम वीर रस के आश्रय हैं, परशुराम आलम्बन, उनकी वीरता, अहकार आदि उद्दीपन विभाव हैं। राम द्वारा सीता को समाश्वस्त करना अनुभाव तथा शका, त्रास, धृति, प्रहर्ष, गर्व आदि व्यभिचारी भाव हैं, इनसे परिपुष्ट 'वीर रस' का आस्वादन हो रहा है।

राम की परगुणग्राहिता, सौजन्यप्रकाशन से प्रभावित होकर परशुराम को स्व–गर्व पर अनास्था हो जाती है, वह राम को सत्त्वादिक गुण सम्पन्न, साक्षात् लोकपरित्राता अस्त्रवेद, गुणशाली तथा पुण्यकर्मा मानते हैं –

त्रातु लोकानिव परिणत कायवानस्त्रवेद
क्षात्त्रो धर्म श्रित इव तनु ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै।
सामर्थ्यानामिव समुदय सञ्चयो वा गुणाना
प्रादुर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माणराशि ।।[2]

प्रस्तुत स्थल मे परशुराम आश्रय हैं, राम आलम्बन हैं, प्रताप, सत्त्व, शौर्य आदि उद्दीपन विभाव हैं। धृति, प्रहर्ष आदि व्यभिचारी भाव तथा परशुरामगत दयामिश्रित 'उत्साह' स्थायी चर्व्यमाण हो रहा है।

परशुराम दयार्द्र हो जाते हैं, राम उनकी दयाभावना का उपहास करते हैं, अतएव अत्यन्त क्रुद्ध होकर परशुराम माता का शिरश्छेदन, क्षत्रिय–सहार आदि कृत्यो का वर्णन करते हैं एव राम को धनुर्प्रहारार्थ प्रेरित करते हैं, 'आ निर्भर क्षत्त्रियबटो ! अति नाम प्रगल्भसे'।

---

१ महावीरचरित, २/२७
२ वही २/४१

प्रहर नमतु चाप प्राक्प्रहारप्रियोऽह मयि तु कृतनिघाते कि विदध्यात्परेण।
झटिति विततवह्न्यद्गारभास्वत्कुठार प्रविघटितकठोरस्कन्धबन्ध कबन्ध ।।[1]

यहॉ राम आलम्बन, रामकृत सगर्वोपहास उद्दीपन विभाव है। परशुराम द्वारा युद्धार्थ प्रेरित करना अनुभाव, गर्व व्यभिचारी भाव है, इनसे परिपुष्ट स्थायी भाव 'उत्साह' वीर रस की चर्वणा करा रहा है।

जामदग्न्य रामवधार्थ दृढप्रतिज्ञ रहते हैं, वसिष्ठादिक उन्हे समझाने का अनवरत प्रयत्न करते हैं। अन्तत उनका उद्धत स्वभाव देखकर शतानन्द शापोदक उठा लेते हैं, जनक एव दशरथ धनुर्प्रयोगार्थ तत्पर होते हैं, वसिष्ठ तेजप्रभाव से भस्मसात् करना चाहते हैं, सभी एक दूसरे को एतद्कृत्य से विरत करने का प्रयास भी करते हैं। अन्त मे राम क्षत्रियहन्ता परशुराम–विजय की उद्घोषणा करते हैं – अयमह भो कौशिकान्तेवासी राम प्रणम्य विज्ञापयामि।

पौलस्त्यविजयोद्दा[illegible]म्।
जेतार क्षत्त्रवीर्यस्य विजयेय नमोस्तु व ।।[2]

यहॉ परशुराम आलम्बन, अध्यवसाय, पराक्रम आदि उद्दीपन विभाव हैं। राम वीर रस के आश्रय हैं, युद्धोन्मुख होना अनुभाव है, गर्व व्यभिचारी भाव है।

वाली सत्यधर्मा राम के साहचर्य से अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, उन्हे धनुर्प्रयोगार्थ प्रेरित करते हैं स्वय शस्त्र के रूप मे पहाड उठा लेते हैं –

त्वत्सागत्यसुखस्य नास्मि विषयस्तत्कि वृथा व्याहृतै–
रस्मिन्विश्रुतजामदग्न्यदमने पाणौ धनुर्जृम्भताम्।।[3]

अपि च

शस्त्रैरव्यवधीयमानविजया प्रायो वय तेषु चे–
दग्राहस्ते सुखमाश्वसन्ति गिरयो यैर्वानरा शस्त्रिण ।।

---

१ महावीरचरितम् २/४६
२ वही ३/४५
३ वही ५/४६ का उत्तरार्ध
४ वही ५/५१ का उत्तरार्ध

प्रस्तुत स्थलो पर राम आलम्बन हैं शौर्य, पराक्रम आदि उद्दीपन विभाव हैं, वाली की युद्धाभिलाषा अनुभाव, गर्व, प्रहर्ष आदि सञ्चारी भाव हैं, इनसे परिपुष्ट 'उत्साह' स्थायी भाव से वीर रस की चर्वणा हो रही है।

लक्ष्मण वाली को युद्ध प्रेमी कहते हैं – आर्य ! आर्य ! दिष्ट्या प्राप्त स वीरगोष्ठीविनोद–प्रदानप्रियसुहृन्माघवत'[1], राम उनके वीरत्व की प्रशसा करते हैं – 'महावीर स'।[2] वाली असाधारण बल एव पराक्रम से सम्पन्न है। वह स्वसामर्थ्यविषयक वर्णन करता है – मैं सकल ब्रह्माण्ड को अस्त–व्यस्त कर सकता हूँ, फलस्वरूप लोकालोक पर्वत रूप आलवाल का स्खलन सप्तम समुद्र का जल–प्रस्रवण, पाताल–विध्वस आदि कार्य होंगे –

लोकालोकालवालस्खलनपरिपतत्सप्तमाम्भोधिपूर
विश्लिष्यत्पर्वकल्पत्रिभुवनमखिलोत्खातपातालमूलम्।
पर्यस्तादित्यचन्द्रस्तबकमवपतद्भूरिताराप्रसून
ब्रह्मस्तम्ब धुनीयामिह तु मम विधावस्ति तीव्रो विषाद ।।[3]

यहाँ वाली आलम्बन, शौर्य, सत्त्व, पराक्रम आदि उद्दीपन विभाव हैं युद्धादिक अनुभाव, गर्वादिक सञ्चारी भाव हैं।

रावण की दर्पपूर्ण उक्तियो मे वीर रस की छाया दृष्टिगत होती है। वह सीता का नख–शिख वर्णन करता है, तदनन्तर स्वपराक्रम–वर्णन करता है – मैं ब्रह्माण्ड को मथकर नवीन ब्रह्माण्ड की सृष्टि कर सकता हूँ, किन्तु आलस्य ही महत्दोष है –

पिष्ट्वा ब्रह्माण्डमस्मादथ भुवनविभागादुदस्यापि किञ्चिद
ब्रह्माण चातिकृत्याप्रतिमरुचितर स्व प्रताप यशश्च।
सूर्येन्दू सविधाय स्वयमधिकतर निर्वृत स्यामह चे–
न्न स्यादालस्यदोष सकरुणमथवा कोऽनुकम्प्येषु कोप ।।

---

१ महावीरचरितम् ५/४४–४८
२ वही
३ वही ५/४५

रावण शत्रु–आक्रमण विषयक मन्दोदरी की सूचना का उपहास करता है – 'कथ रिपुस्तत्प–क्षस्तदभियोगश्चेत्यश्रुत श्राव्यते देव्या'।[1] वह भगवान् शिव को स्वमस्तक अर्पित कर साहस का परिचय दे चुका है – 'साहसिकेनेति वदन्त्या देव्या विस्मृतप्रायम्। मत्साहसे तु'।

उत्पुष्यद्गलधमनिस्फुटप्रसर्पत्प्रत्यग्रक्षतजझरीनिवृत्तपाद्य।
हर्षाश्रुप्रचुरमधुस्मितस्फुटश्रीवक्त्राब्जार्चितचरण शिव प्रमाणम्।।[2]

उपर्युक्त स्थलो पर कवि ने युद्धादिक अनुभावो धृति, प्रहर्ष, गर्व आदि सञ्चारी भावो की सुन्दर प्रस्तुति की है।

लक्ष्मण के आक्रमण से रावण एव मेघनाद क्रुद्ध हो जाते हैं, रावण शतघ्नी–प्रहार से लक्ष्मण को आहत कर देता है, राम का हृदय वात्सल्यप्रेमवशात् द्रवीभूत हो जाता है, सम्प्रति त्रिपुरासुरनाशक शिव की भॉति राम कुम्भकर्ण को बाणो से आच्छादित कर उसकी सेना को भस्मसात् करते हुए लक्ष्मण के निकट पहुॅचते हैं –

पुरा जेता पूर्वं त्रिपुरविजये यामुदवह–
त्स्थिति तामेवाय रघुपतिवृषाश्रित्य वपुषा।
क्षणाद्रक्षोनाथानुजमिषुभिराच्छिद्य कणश–
श्चमू भस्मीकृत्याप्यनुजमभियात्युत्सुकतम।।[3]

यहॉ राम वीर रस के आश्रय हैं, कुम्भकर्ण आलम्बन तथा प्रताप, सत्त्वादिक उद्दीपन विभाव हैं, युद्धादिक अनुभाव, धृति आदि व्यभिचारी भाव हैं।

इस प्रकार कवि ने प्राय समस्त अको मे वीररसानुकूल प्रसगो की अवतारणा की है।

रौद्र रस

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध मात्सर्य एव शत्रुकृत अपकारादिक से उद्भूत होता है[4], इसका आलम्बन विभाव शत्रु होता है तथा उसकी चेष्टाये उद्दीपन विभाव।[5] इसका वर्ण रक्त है एव देवता

---

१ महावीरचरितम् ६/१०–११

२ वही ६/१४

३ वही ६/४६

४ क्रोधो मत्सरवैरिवैकृतमयै पोषोऽस्य रौद्रोऽनुज। –दशरूपक ४/७४ का प्रथमार्ध

५ आ[illegible] तच्चेष्टोद्दीपन मतम्।। –साहित्यदर्पण ३/२२७ का उत्तरार्ध

रुद्र। यह मुख्य रूप से मुष्टिप्रहार, भूपातन, शरीर–विदारण, युद्ध, सम्भ्रम आदि से उद्दीप्त होता है।[1] क्षोभ उत्पन्न होना, भ्रूभग, ओष्ठनिदर्शन, मुख रक्तवर्ण होना आदि इसके मानसिक अनुभाव तथा शस्त्र उठाना, आत्मश्लाघा, भूमि पर पादप्रहार आदि आगिक, वाचिक अनुभाव एव सात्त्विक भाव होते हैं।[2]

तृतीय अक मे परशुराम–शतानन्द–सवाद मे रौद्र रस की सुन्दर अभिव्यञ्जना हुयी है। रामवधार्थ कृतसकल्प परशुराम एव कर्त्तव्यपरायण पुरोहित शतानन्द का सवाद द्रष्टव्य है –

शतानन्द — आ शक्तिरस्ति कस्य वा विदेहराजन्यस्य राजर्षेर्याज्यस्य मे प्रेयसश्छायामप्य–वस्कन्दितुम्, कि पुनर्जामातरम्।[3]

परशुराम — गौतम ! त्वयेव बहुभि क्षत्त्रियपुरोहितैर्ब्रह्मतेजसा स्फुरितमासीत्। किन्तु प्राकृतानि तेजास्यप्राकृते ज्योतिषि शाम्यन्ति।[4]

यहॉ शतानन्द रौद्र रस के आश्रय हैं, परशुराम आलम्बन हैं, आक्षेप करना, कटूक्तियो का प्रयोग करना उद्दीपन विभाव है। परस्पर आक्षेप, क्रूरदृष्टिपात, तर्जन, आत्मश्लाघा आदि अनुभाव हैं तथा अमर्ष, गर्व, उग्रता आदि व्यभिचारी भाव हैं।

परशुराम की कटूक्तियो से उद्विग्न होकर जनक वृद्धावस्था मे भी कार्मुकप्रयोगार्थ तत्पर होते हैं, परशुराम उन्हे अहकारी, वृद्ध आदि कहकर व्यग्य करते हैं – (सरोषहासाक्षेपम्) किमात्थ। भो भो धनुर्धनुरिति। अहो आश्चर्यम्।

क्षत्त्रालोकक्षुभितहुतभुक्प्रस्फुलिगाट्टहास
हाय पश्यन्नपि रिपुशिर शाणशात कुठारम्।
दत्तोत्सेक प्रलपति मया याज्ञवल्क्यानुरोधा–
न्मिथ्याध्मात किमपि जरसा जर्जर क्षत्त्रबन्धु ।।[5]

---

१ मुष्टिप्रहारपातनविकृतच्छेदावदारणैश्चैव।
सग्रामसभ्रमाद्यैरस्योद्दीप्तिर्भवेत् प्रौढा।। –साहित्यदर्पण ३/२२८

२ क्षोभ स्वाधरदशकम्पभृकुटिस्वेदारस्य रागैर्युत।
श[illegible]त्थनासधरणीघातप्रतिज्ञाग्रहैस्त्रामर्षमदौ स्मृतिश्चपलता सूयौग्र्यवेगादय ।। –दशरूपक ४/७४

३ महावीरचरितम् ३/१५–१६

४ वही ३/१८–१६

५ वही ३/२८

प्रस्तुत पद्य मे परशुराम रौद्र रस के आश्रय हैं, जनक आलम्बन तथा उनका शस्त्र ग्रहण कर युद्धार्थ तत्पर होना उद्दीपन विभाव है। क्रूरदृष्टि शस्त्रस्मरण, परशुराम द्वारा उपहास आदि अनुभाव हैं तथा आक्षेप उग्रता, आवेग, अमर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं।

दशरथादिक द्वारा तिरस्कृत होकर परशुराम का क्रोध चरम सीमा पर पहुँच जाता है। उनका अन्तर्निगूढ कोपानल विस्फुरित होना चाहता है वह क्षत्रियसहाररूपी महाप्रलय उपस्थित करना चाहते हैं –

> निकार प्राप्तोऽय ज्वलति परशुर्मन्युरिव मे
> पृथिव्या राजानो दशरथबले सन्त्युपगता।
> पुनर्द्वाविशोऽपि प्रकुपितकृतान्तोत्सवकर–
> श्चिरात्सत्त्रस्यास्तु प्रलय इव घोर परिमर॥[1]

यहाँ परशुराम आश्रय हैं, दशरथादिक आलम्बन हैं तथा वसिष्ठादिक द्वारा तिरस्कार उद्दीपन विभाव है। परशुराम का क्रोधित हो युद्धार्थ उद्यत होना अनुभाव तथा अमर्ष, आवेग, उग्रता आदि सञ्चारी भाव हैं।

परशुराम के व्यग्यात्मक वचन, राम के प्रति दुराग्रह आदि से उद्विग्न होकर विश्वामित्र शापोदक एव चाप का अन्वेषण करते हैं – अरे जामदग्न्य ! अब्रह्मवर्चसमिव भ्रशितशस्त्रसामर्थ्यमिव जीवलोक मन्यसे।

> आतस्त्वा प्रति कोपनस्य तरल शापोदक दक्षिण
> प्राक्सस्कारवशेन चापमितर पाणिर्ममान्विष्यति।[2]

प्रस्तुत स्थल मे परशुराम आलम्बन हैं तथा उनकी क्षत्रियसहार एव रामवध विषयक घोषणा उद्दीपन विभाव है। विश्वामित्र का उत्तेजित हो शापोद्यत होना, शस्त्रान्वेषण आदि अनुभाव तथा अमर्ष, आवेग आदि सञ्चारी भाव हैं।

परशुराम प्रतिक्रियास्वरूप विश्वामित्र के ब्रह्मतेज को उग्र तपस्या से दग्ध करना चाहते हैं अथवा परशु–प्रयोग – 'ननु भो कौशिक !

---

१ महावीरचरितम् ३/४१
२ वही ३/४३

त्व ब्रह्मवर्चसधनो यदि वर्तमानो यद्वा स्वजातिसमयेन धनुर्धर स्या।
उग्रेण भोस्तव तपस्तपसा दहामि पक्षान्तरे च सदृश परशु करोतु।।[1]

यहॉ विश्वामित्र आलम्बन तथा उनका शाप एव धनुर्प्रयोगार्थ तत्पर होना उद्दीपन विभाव है। परशुराम का तप प्रभाव–प्रदर्शन, कुठारप्रयोगविषयक आत्मप्रशसा अनुभाव तथा अमर्ष, आवेग, चपलता आदि सञ्चारी भाव हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तृतीय अक मे परस्पर रोषपूर्ण सवाद, दोष–दर्शन, आक्षेप आदि द्वारा स्थायी भाव 'क्रोध' सर्वत्र उद्दीप्त हुआ है, अतएव रौद्र रस की निष्पत्ति हुयी है।

बीभत्स रस

'जुगुप्सा' नामक स्थायी भाव का परिपोष 'बीभत्स' रस कहा जाता है। इसके तीन मानस अनुभाव हैं – उद्वेग, क्षोभण एव शुद्ध घृणा। कीडे, दुर्गन्ध, वमनादिक विभावो से उद्वेगी बीभत्स होता है, रुधिर, अतडियॉ, अस्थि, वसा, मासादिक विभावो से क्षोभण बीभत्स तथा जघन, स्तनादिक के प्रति वैरस्य से शुद्ध बीभत्स होता है।[2] इसका वर्ण नील एव देवता महाकाल हैं। दुर्गन्धमय मास, रक्त, मेद (चर्बी) आदि इसके आलम्बन हैं तथा मासादिक मे कीडा पडना आदि उद्दीपन विभाव हैं।[3] नेत्र सकोचन, आस्यवलन आदि अनुभाव तथा आवेग, व्याधि, शका आदि सञ्चारी भाव होते हैं।[4]

गुरु विश्वामित्र की आज्ञा शिरोधार्य कर राम ताटका का सहार करते हैं, तीक्ष्ण बाण के प्रहार से उसका मर्मस्थल विदीर्ण हो जाता है, अग विशीर्ण होने लगते हैं, नासिका से रक्तस्राव होता है, अन्त मे वह मर जाती है। लक्ष्मण ताटका की मरणासन्नावस्था का वर्णन करते हैं –

---

१ महावीरचरितम् ३/४४

२ बीभत्स कृमिपूतिगन्धिवमथुप्रायैर्जुगुप्सैकभू–
रुद्वेगी रुधिरान्त्रकीकसवसामासादिभि क्षोभण।
वैर[illegible]षु घृणाशुद्धोऽनुभावैर्वृतो। –दशरूपक ४/७३

३ नीलवर्णो महाकालदैवतोऽयमुदाहृत।।
दुर्गन्धमासरुधिरमेदास्यालम्बन मतम्।
तत्रैव कृमिपाताद्यमुद्दीपनमुदाहृतम्।। –साहित्यदर्पण ३/२३६–४०

४ (क) निष्ठीवनास्यवलननेत्रसकोचनादय।
अनुभावास्तत्र मतास्तथा स्युर्व्यभिचारिण।।
मोहोऽपस्मार आवेगो व्याधिश्च मरणादय। –वही ३/२४१–४२
(ख) [illegible]।। –दशरूपक ४/७३

> हृन्मर्मभेदिपतदुत्कटककपत्त्रसवेगतत्क्षणकृतस्फुटदगभगा।
> नासाकुटीरकुहरद्वयतुल्यनिर्यदुद्बुद्बुदध्वनदसृक्प्रसरा मृतैव।।[1]

यहाँ ताटका आलम्बन तथा अगविदीर्णन, रक्तस्राव आदि उद्दीपन विभाव हैं। मरण, आवेग आदि से परिपुष्ट यह 'क्षोभण बीभत्स' का उदाहरण है।

परिव्राजक वेष मे आगत सीता को हठात् रथारूढ कर प्रस्थित रावण के वश, तप, दुराचार आदि का जटायु प्रत्याख्यान करता है, रावण के ध्यान न देने पर वह अग–विदारण का निश्चय करता है – मैं अपनी चोच से तुम्हारे मस्तक एव अगो को क्षत–विक्षत कर देता हूँ, फलस्वरूप अन्त्र, त्वचा प्लीहा, यकृत् पृथक्–पृथक् हो जायेंगे उनसे उष्ण रक्तस्राव, एव अन्त्रमाला नि सृत होगी अवशिष्ट अगो को नख से विदीर्ण कर दूँगा – 'कथमवज्ञया न श्रृणोतीव। आ दुरात्मन् राक्षसापसद! तिष्ठ तिष्ठ।

> तुण्डप्रोत शिरकरोटिविवराकृष्टस्फुरत्त्वग्वसा–
> क्लोमप्लीहयकृद्द्रुतोष्णरुधिरस्नाय्वान्त्रमालस्य ते।
> अत्युग्रक्रकचप्रचण्डनखरोत्कर्तक्वणत्कीकसै–
> रगै खण्डितकधराधमनिभि श्येनीसुतस्तृप्यतु।।[2]

प्रस्तुत पद्य मे रावण आलम्बन रक्तस्राव आदि उद्दीपन विभाव हैं आवेग आदि सञ्चारी भावो से परिपुष्ट 'क्षोभण बीभत्स' सामाजिको को बीभत्स रस की चर्वणा करा रहा है।

राम से आदिष्ट हो लक्ष्मण श्रमणारक्षार्थ राक्षस दनुकबन्ध का वध करते हैं, तदनन्तर कबन्ध का रक्तरञ्जित शरीर भयावह प्रतीत होता है, लक्ष्मणोक्ति द्रष्टव्य है– रुधिरस्राव हो रहा है, त्वचा एव मास पृथक हो रहे हैं, मेदा नष्ट हो रहे हैं –

> सौहित्यात्पृथव क्वथन्ति रुधिरोत्सेकाश्चमत्कारिण–
> ष्कासोत्कम्पुच्च[illegible]न्ति नलकास्त्वङ्मासविस्रसनात्।
> उत्सर्पन्त्यथ मेदसा विलयनादुद्बुद्बुदा वीचय–
> श्चित्र चित्रमुदेति कोऽप्ययमितो दिव्य श्मशानानलात्।।[3]

---

१ महावीरचरितम् १/३६
२ वही ५/१६
३ वही ५/३३

यहाँ कबन्ध आलम्बन, रक्तस्राव, अगो का पृथक्–पृथक् होना आदि उद्दीपन विभाव हैं। शकादिक व्यभिचारी भाव हैं।

षष्ठ अक मे युद्ध–स्थल–वर्णन बीभत्स रस का आस्वाद कराता है, जहाँ वीरो के क्षत–विक्षत अगो से पृथ्वी आच्छादित है, मार्ग दुर्गम हो गया है, रुधिरसिक्त नवमासभक्षणलोभी गृध्र भ्रमण कर रहे हैं, उनकी पक्षच्छाया से आतपनिवारण हो रहा है –

प्रासप्रोतप्रवीरोल्बणरुधिरपरामृष्टबुक्काजिघत्सा–
धावद्गृध्राधिराजाप्रतिमतनुरुहच्छायया वारितोष्णा ।
विश्राम्यन्ति क्षणार्धं प्रधनपरिसरेष्वेव मुक्ताभियोगा
वीरा शस्त्रप्रहारव्रणभररुधिरोद्गारदिग्धाखिलागा ।।[1]

प्रस्तुत स्थल मे वीरगण आलम्बन विभाव हैं, अगविदीर्णन, रक्तस्राव, मासभक्षणादिक उद्दीपन विभाव हैं। शत्रुओ का छिपना, विश्राम करना आदि अनुभाव तथा आवेग, मृत्यु आदि व्यभिचारी भाव हैं।

श्रृगार रस

रमणीक देश, कला, काल, वेष तथा भोगादिक उद्दीपन विभावो से परस्पर अनुरक्त, युवा स्त्री एव पुरुष का प्रमोद 'रति' नामक स्थायी भाव कहा जाता है, वह मधुर अग–चेष्टाओ से पुष्ट हो श्रृगार रस कहलाता है।[2] उग्रता, मरण, आलस्य एव जुगुप्सा श्रृगार मे त्याज्य हैं, इनके अतिरिक्त अन्य सकल व्यभिचारी भाव श्रृगार का परिपोष करते हैं। इसका स्थायी भाव रति, वर्ण श्याम तथा देव विष्णु हैं।[3]

आचार्य धनञ्जय के अनुसार श्रृगार रस के तीन प्रकार हैं – अयोग, विप्रयोग एव सम्भोग।[4] अन्य आचार्यों ने सम्भोग एव विप्रलम्भ दो भेद प्रतिपादित किया है। जहाँ माता एव पिता के अधीन होने के कारण अथवा दैववशात् नायक–नायिका का समागम नहीं हो पाता है, उसे अयोग श्रृगार

---

१ महावीरचरितम् ६/३३

२ रम्यदेशकलाकालवेषभोगादिसेवनै ।।
प्रमोदात्मा रति सैव यूनोरन्योन्यरक्तयो ।
प्रहृष्यमाणा श्रृगारोमधुरागविचेष्टितै ।। –दशरूपक ४/४७–४८

३ त्यक्त्वौग्र्यमरणालस्यजुगुप्साव्यभिचारिण ।
स्थायिभावो रति श्यामवर्णोऽय विष्णुदैवत ।। –साहित्यदर्पण ३/१८६

४ अयोगो विप्रयोगश्च सम्भोगश्चेति स त्रिधा।। –दशरूपक ४/५०

कहते हैं।[1] अयोग श्रृगार की दश अवस्थाये होती हैं – अभिलाष, चिन्तन, स्मृति गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, सज्वर, जडता एव मरण।[2] प्रगाढ अनुराग वाले नायक एव नायिका के पृथक् होने पर विप्रयोग श्रृगार की स्थिति होती है। इसके दो भेद हैं (१) मान विप्रयोग तथा (२) प्रवास विप्रयोग। प्रियकृत अपराधवशात् नायिका का मान कर अवस्थित रहना मान विप्रयोग है। यह दो प्रकार का होता है – प्रणयमान एव ईर्ष्यामान।[3] (३) कार्यवशात् सम्भ्रम अथवा शापवश नायक–नायिका का भिन्न–भिन्न देश मे रहना प्रवास है।[4] यह भूत, वर्तमान एव भविष्य मे घटित होने के कारण तीन प्रकार का होता है।[5]

सम्भोग श्रृगार आनन्दपूर्ण अवस्था है, इसमे नायक–नायिका अनुकूल होकर परस्पर दर्शन, स्पर्श आदि का उपभोग करते हैं।[6] आचार्य धनञ्जय, धनिक प्रभृति ने विप्रलम्भ पद का परिहार किया है। इसका मूलभूत कारण है कि विप्रलम्भ पद का मुख्यार्थ है – वञ्चना। नायिका को सकेत देकर नायक का समय पर न पहुँचना, परनायिका के पास गमन वञ्चना है। अतएव विशेष प्रकार का अयोग तथा विप्रयोग ही विप्रलम्भ है, अयोग एव विप्रयोग सामान्य के लिये विप्रलम्भ पद का प्रयोग औपचारिक होगा, मुख्य नहीं। मुख्य अर्थ के सम्भव होने पर औपचारिकार्थ मे पद–प्रयोग दोषपूर्ण है, अतएव दोषनिवारणार्थ धनञ्जय ने 'विप्रलम्भ' पद प्रयुक्त नहीं किया है।[7] भावप्रकाशनकार ने भी इसका समर्थन किया है।[8] किन्तु आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र ने 'विप्रलम्भ' पद ही प्रयुक्त किया है।[9]

---

१ तत्रायोगोऽनुरागेऽपि नवयोरेकचित्तयो ।।
पारतन्त्र्येण दैवाद्वा विप्रकर्षादसगम । –दशरूपक ४/५०–५१

२ दशावस्थ· स तत्रादावभिलाषोऽथ चिन्तनम्।।
स्मृतिर्गुणकथोद्वेगप्रलापोन्मादसज्वरा ।
जडता मरण चेति दुरवस्थ यथोत्तरम्।। –वही ४/५१–५२

३ विप्रयोगस्तु विश्लेषो रूढविस्रम्भयोर्द्विधा।।
मानप्रवासभेदेन, मानोऽपि प्रणयेर्ष्ययो ।
तत्र प्रणयमान स्यात्कोपावसितयोर्द्वयो ।। –वही ४/५७–५८

४ कार्यत सम्भ्रमाच्छापात्प्रवासो भिन्नदेशता।। –वही ४/६४

५ स च भावी भवन् भूतस्त्रिधाद्यो बुद्धिपूर्वक ।। –वही ४/६५

६ अनुकूलौनिषेवेते यत्रान्योन्य विलासिनौ।
दर्शनस्पर्शनादीनि स सभोगो मुदान्वित ।। – वही ४/६६

७ अयोगविप्रयोगविशेषत्वाद्विप्रलम्भस्यैतत्सामान्याभिधायित्वेन विप्रलम्भशब्द उपचरितवृत्तिर्मा भूदिति न प्रयुक्त तथा हि–दत्त्वा सकेतमप्राप्तेऽवध्यतिक्रमे साध्येन नायिकान्तरानुसरणाच्च विप्रलम्भशब्दस्य मुख्यप्रयोगो वञ्चनार्थत्वात्। –वही ४/५० अवलोक

८ वियोगायोगसम्भोगै श्रृगारो भिद्यते त्रिधा। –शारदातनय का भावप्रकाशन पृ० १२०

९ परस्परानुरक्तयोरपि विलासिनो पारतन्त्र्यादेरघटन चित्तविश्लेषो वा विप्रलम्भ । –नाट्यदर्पण ३/१० वृत्तिभाग

प्रकृत रूपक मे राम–सीता, लक्ष्मण–उर्मिला का पूर्वानुराग उपनिबद्ध है। विश्वामित्र के सिद्धाश्रम मे रामादिक यज्ञावसर पर समुपस्थित होते हैं। सीता तथा उर्मिला क्रमश राम एव लक्ष्मण को देखकर प्रभावित होती हैं – 'सौम्यदर्शनौ खल्वेतौ'।[1] यज्ञभूमि मे उत्पत्ति, ब्रह्मज्ञ राजर्षि पिता जनक, प्रसन्नचित्त उज्ज्वल मूर्ति आदि गुणो से समन्वित सीता के प्रति राम आसक्त हो जाते हैं –

> उत्पत्तिर्देवयजनाद् ब्रह्मवादी नृप पिता।
> सुप्रसन्नोज्ज्वला मूर्तिरस्या स्नेह करोति मे।।[2]

यहाँ अयोग श्रृगार की 'गुणकथन' नामक अवस्था है।

इसी मध्य राम तथा लक्ष्मण के हृदय मे सीता एव उर्मिला के प्रति क्रमश 'चक्षुराग' उत्पन्न होता है – 'तत्किमियममृतवर्तिरिव मे चक्षुराप्याययति'।[3]

सीता एव उर्मिला के मन मे 'चक्षुराग' अथवा 'नयनप्रीति का उदय होता है – 'किमिति सज्जतेऽस्मिल्लोचनानन्दे मे दृष्टि'।[4] ताटकावधार्थ राम को नियुक्त करने पर सीता भयविह्वल हो उठती हैं – 'हा धिक् हा धिक्। एष एवात्र नियुक्त'।[5] स्त्री ताटका के प्रति राम की विचिकित्सा देखकर सीता प्रशसा करती हैं – 'अन्यतोमुख एवास्य चित्तभेद'।[6] ताटका–वध के अनन्तर 'प्रिय न प्रिय न'[7] – उक्ति से सीतानुराग की पुष्टि होती है।

उपर्युक्त स्थल मे राम–सीता, लक्ष्मण–उर्मिला आलम्बन हैं, सौम्य व्यक्तित्व, वशादिक–परिज्ञान आदि उद्दीपन विभाव हैं। विस्मय, आनन्द आदि अनुभाव तथा हर्ष, चिन्ता, औत्सुक्य आदि सञ्चारी भावो से परिपुष्ट 'रति' स्थायी अभिव्यक्त होकर श्रृगार रस की चर्वणा करा रहा है।

द्वितीय अक मे परशुराम रामान्वेषण करते हुए अव्याहत गति से कन्यान्त पुर मे प्रविष्ट होते हैं। राम परशुराम–समागम हेतु इच्छुक हैं। सीता मुग्धानायिकोचित लज्जा का परित्याग कर राम को

---

१ महावीरचरितम् १/१८–१६
२ वही १/२१
३ वही १/२८–२६
४ वही १/२८–२६
५ वही १/३६–३७
६ वही
७ वही १/३६–४०

रोकने का प्रयत्न करती हैं – 'तेन हि त्वरमाणा सम्भावयेम वेगप्रस्थितमार्यपुत्रम्' ।[1] सीतावबोधनार्थ राम सखियो से आग्रह करते हैं – (सप्रेमानुकम्प परिवृत्य) कातरेयमत्रभवतीभिरेव पर्यवस्थापयितव्या।[2] राम के त्रिलोक–विजय आदि का स्मरण करा कर सखियॉ सीता को आश्वस्त करना चाहती हैं – सखि । ससुरासुरसमस्तत्रैलोक्यमगल तुगजयलक्ष्मीलाञ्छितमीषद्विभ्रमविस्त्रस्तनेत्र कुवलयशोभा–वि[illegible]ोऽसभ्रमा सर्वदास्मत्पुरतो वर्णयसि। तत्किमिति विजयाभिमुखे कुमार उत्कम्पितासि।[3]

उपर्युक्त स्थलो पर सीता का राम के प्रति प्रगाढ अनुराग प्रकट होता है। यहॉ चिन्ता, त्रास, व्रीडा, वेग, गर्व आदि सञ्चारी भावो की पुष्टि हुयी है।

प्रवास विप्रयोग श्रृगार सीताहरण के प्रसग मे दृष्टिगत होता है। सीताहरण के अनन्तर राम मर्माहत हो जाते हैं, मन अन्धकार मे डूब जाता है, लज्जानुभूति होती है। अन्तर्निगूढ कोपानल उन्हे दग्ध कर रहा है –

न्यक्कारो हृदि वज्रकील इव मे तीव्र परिस्पन्दते
घोरान्धे तमसीव मज्जति मन समीलित लज्जया।
मर्माणीव पुनश्छिनत्ति करुणा सीता वराकीं प्रति।।[4]

राम सीता के वचनश्रवण, प्रत्यक्षदर्शन हेतु व्याकुल हो विलाप करते हैं –

प्रिये हा हा क्वासि प्रकिर मधुरा वाचमथवा
पराभूतैरित्थ विलप[illegible]दोऽप्यसुलभ ।
अनिन्द्य पौलस्त्यो व्रजति परिवादो मयि पुन–
र्यतो वैरे रूढे बहुगुणमनेन प्रतिकृतम्।।[5]

श्रमणा उन्हे रावण द्वारा सीताहरण के समय विभीषण को अनुसूया नामाकित उत्तरीय वस्त्र की प्राप्ति विषयक सूचना देती है, राम मूर्च्छित हो जाते हैं – 'हा प्रिये । म[illegible] । विदेहराजपुत्रि । (इति सवरण नाटयति)'।[6]

---

१ महावीरचरितम् २/२०–२१
२ वही
३ वही
४ वही ५/२२
५ वही ५/२८
६ वही ५/३०–३१

उपर्युक्त स्थलो पर सीता आलम्बन हैं, सीता–विरह सस्मरण, रावण द्वारा हरण, अनुसूया नामक उत्तरीय वस्त्र विषयक सूचना आदि उद्दीपन विभाव हैं। राम का विलाप, स्वदोषान्वेषण, निश्चैतन्य भाव आदि अनुभाव हैं, जडता, चिन्ता, स्मृति, मोह आदि व्यभिचारी भावो से परिपुष्ट 'रति स्थायी भाव अभिव्यक्त होकर विप्रयोग श्रृगार की चर्वणा कर रहा है।

करुण रस :

इष्टनाश एव अनिष्टप्राप्ति से उद्भूत 'शोक' करुण रस का स्थायी भाव है, नि श्वास, उच्छ्वास, रुदन, स्तम्भ, प्रलापादिक अनुभाव तथा निद्रा, अपस्मार, दैन्य, व्याधि, मरण, आलस्य, सम्भ्रम, विषाद, जडता, उन्माद, चिन्तादिक व्यभिचारी भाव हैं।[1]

करुण एव विप्रलम्भ श्रृगार मे अन्तर विचारणीय है, करुण रस मे नायक–नायिका मे से किसी एक के निधन पर नि श्वास, रुदन, स्तम्भ, प्रलापादिक अनुभाव होते हैं, नायक–नायिका के अतिरिक्त माता–पिता, भ्राता, भगिनी, पुत्र, दुहिता आदि भी 'शोक' के आलम्बन होते हैं, नायक–नायिका मे से किसी एक की मृत्यु होने पर ही करुण रस की स्थिति हो सकती है, किन्तु पुत्रादिक के आलम्बन होने पर मृत्यु अपरिहार्य नहीं है, इसके बिना भी सामाजिक को करुण रस की चर्वणा होती है। विप्रलम्भ श्रृगार मे नि श्वासादिक अनुभाव होते हैं, इसमे नायक–नायिका वियुक्त होते हैं किन्तु जीवित रहते हैं।

पुत्रादिक के आलम्बन होने पर उनकी मृत्यु, वियोग, प्राणसकट आदि समस्त स्थितियो मे करुण रस का आस्वाद होता है।[2]

दूत सर्वमाय ताटकावध से उद्विग्न होकर सोचता है, स्वजन–वियोग कष्टप्रद है, वार्द्धक्यवशात् मैं विवश हूँ, यह रावण–पराभव का ससूचक है – 'भो आर्ये ताटके ! कि हि नामैतत् ! अम्बुनि मज्जन्त्यलाबूनि, ग्रावाण प्लवन्ते।

---

१ इष्टनाशादनिष्टाप्तौ शोकात्मा करुणोऽनुतम्
नि श्वासोच्छ्वासरुदितस्तम्भप्रलपितादय ।
स्वापापस्मारदैन्याधिमरणालस्यसम्भ्रमा
विषाद[illegible] व्यभिचारिण ।। –दशरूपक ४/८१–८२

२ पु[illegible]–मरणादिजन्मा वैक्लव्याख्यश्चित्तवृत्तिविशेष शोक। स्त्रीपुसयोस्तु वियोगे जीवितत्वज्ञानदशाया वैक्लव्यपोषिताया रतेरेव प्राधान्याच्छृगारो विप्रलम्भाख्यो रस वैक्लव्य तु सचारिमात्रम्। मृतत्त्वज्ञानदशाया तु रतिपोषितस्य [illegible]। करुण एव। –रसगगाधर पृ० १४१–४२

नन्वद्य राक्षसपते स्खलित प्रताप प्राप्तोद्‌भुत परिभवोऽद्य मनुष्यपोतात्।
दृष्ट स्थितेन च मया स्वजनप्रमारो दैन्य जरा च निरुणद्धि कथ करोमि।।[1]

यहाँ सर्वमाय आश्रय है, ताटका आलम्बन है, ताटका के शरीर का जलप्लावन, रावण–यश समाप्ति विषयक शका आदि उद्दीपन विभाव हैं, रुदन आदि अनुभाव, दैन्य विषादादिक सञ्चारी भाव हैं।

माल्यवान् राक्षसकुल मे व्याप्त फूट पर विचार करता है। अन्तत खरदूषण प्रभृति के विनाश की सकल्पना कर विलाप करता है –

हा वत्सा खरदूषणत्रिशिरसो वध्या स्थ पापस्य मे
हा हा वत्सविभीषण त्वमपि मे कार्येण हेय स्थित ।
हा मद्‌वत्सल वत्स रावण महत्पश्यामि ते सकट
वत्से केकसि हा हतासि नचिरात्त्रीन्पुत्रकान्द्रक्ष्यसि।।[2]

प्रस्तुत पद्य मे खरदूषण, विभीषण, रावण प्रभृति आलम्बन, राक्षसवर्ग का सकटग्रस्त होना उद्दीपन विभाव है। माल्यवान् का विलाप करना अनुभाव, अपस्मार, चिन्तादिक व्यभिचारी भावो से पुष्ट होकर 'शोक' स्थायी भाव 'करुण रस' का आस्वाद करा रहा है।

रामादिक का वनगमन विचार कर दशरथ मूर्च्छित हो जाते हैं, चैतन्य होकर वह राम को देखना चाहते हैं, उन्मत्त हो विलाप करते हैं – (उच्छ्‌वस्य) वत्स रामचन्द्र ! न गन्तव्य न गन्तव्यम्।

प्राणा प्रयान्ति परितस्तमसावृतोऽस्मि मर्मच्छिदो मम रुज प्रसरन्त्यपूर्वा ।
अक्ष्णोमुखेन्दुमुपधेहि गिर च देहि हा पुत्र मय्यकरुण सहसैव मा भू ।।[3]

यहाँ दशरथ करुण रस के आश्रय हैं। राम आलम्बन, उनका वनगमनार्थ निश्चय उद्दीपन विभाव है। यह उच्छ्‌वास, प्रलाप आदि अनुभावो से अनुभावित तथा मोह, उन्माद आदि सञ्चारी भावो से पुष्ट है।

वाली–वध के अनन्तर नील प्रभृति वानरगण विलाप करते हैं –

---

१ महावीरचरितम् १/४०
२ वही ४/११
३ वही ४/५५

हा वीर हा मघवनन्दन मन्दराद्रिनिष्कम्पसार जगदप्रतिमल्लवीर।
उद्दर्पदुन्दुभिनिशुम्भपटुप्रचण्डदोर्दण्डमण्डल गतोऽसि हहा हता स्म ।।[1]

यहाँ वाली आलम्बन है तथा वाली की मृत्यु उद्दीपन विभाव। रुदन विलापादिक अनुभाव तथा मरण, विषादादिक सञ्चारी भावो से परिपुष्ट शोक' स्थायी भाव अभिव्यक्त होकर करुण रस की चर्वणा करा रहा है।

रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद प्रभृति की मृत्यु होने पर अधिष्ठातृ देवता लका विलाप करती हैं – (साक्रोशम्) हा महाराज दशकन्धर ! त्रैलोक्यवीरलक्ष्मीप्रतिग्रहदुर्ललित ! हा सकलराक्षसलोकप्रतिपालन समर्थदुभुजदण्ड ! हा पशुपतिपादयुगलार्चनोपयुज्यमानमुग्धमुखपुण्डरीक ! हा केकसीपुत्रतिलक ! हा बन्धुजनवत्सल ! कुत्र मया त्व प्रेक्षितव्य । हा कुमार कुम्भकर्ण ! हा वत्स मेघनाद ! कुत्रासि ? देहि मे प्रतिवचनम्। (परितो विलोक्य) कथ कोऽपि न मन्त्रयते ? (ऊर्ध्वमवलोक्य) हा दुष्टदैवदुर्विलसित ! कस्मादेव परिणतमसि ? अथवा कोऽत्र भवत उपालम्भ ! आत्मन एव दुश्चरितमेतद्विपरिणमति। (इति सानुकाश रोदिति)'।[2]

प्रस्तुत स्थल मे लका आश्रय हैं, राक्षसगण आलम्बन, रावणादिक का वध उद्दीपन विभाव है, रुदन, प्रलापादिक अनुभाव तथा मरण, अपस्मार, विषाद आदि व्यभिचारी भाव हैं।

अद्भुत रस

अद्भुत रस का स्थायी भाव 'विस्मय', वर्ण पीत तथा देवता गन्धर्व हैं। इसका आलम्बन अलौकिक वस्तु तथा उसकी गुणाशसा उद्दीपन विभाव है[3], साधुवाद, स्वेद, अश्रु, कम्पन, गद्गद् होना, स्तम्भ, रोमाञ्च, सम्भ्रम, नेत्रविकासादिक अनुभाव हैं तथा हर्ष, आवेग, धृति, वितर्क, सभ्रम आदि सञ्चारी भावो से इसकी पुष्टि होती है।[4]

---

१ महावीरचरितम् ५/६१
२ वही ७/०–१
३ अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो गन्धर्वदैवत ।।
पीतवर्णो वस्तु लोकातिगमालम्बन मतम्।
गुणाना तस्य महिमा भवेदुद्दीपन पुन ।। –साहित्यदर्पण ३/२४२–४३
४ स्तम्भ स्वेदोऽथ रोमाञ्चगद्गद्स्वरसम्भ्रमा ।
तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावा प्रकीर्तिता ।।
वितर्कावेगसम्भ्रान्तिहर्षाद्या व्यभिचारिण । –वही ३/२४३–४४

दिव्यास्त्र–प्रकाशन के अनन्तर दिशाये पीतवर्ण हैं, दिन पीला हो गया है, आकाश विद्युन्मय है सूर्य–रश्मि से भी तीक्ष्ण होने के कारण नेत्रो को चकाचौंध कर रहा है –

झटित्येवोत्तप्तद्रुतकनकसिक्ता इव दिश पिशगत्वात्सध्यान्तरित इव निर्माति दिवस ।
ज्वलत्केतुव्रातस्थगितमिव दिव्यास्त्रनिचित नभो नैरन्तर्यप्रचलिततडित्पिञ्जरमिव।।[१]

अपि च

तेजोभिर्दिशि दिशि विश्वत प्रदीप्तैरादित्यद्युतिमपविध्य विस्फुरद्भि ।
पर्यायत्वरितगृहीतविप्रमुक्त सामर्थ्यं रहयति नायनो मयूख ।।[२]

प्रस्तुत स्थल मे दिव्यास्त्र आलम्बन हैं, दिशाओ का पीतवर्ण होना, सान्ध्यराग से युक्त दिन, विद्युत्पूर्ण नभ, नेत्र पर प्रभाव आदि उद्दीपन विभाव हैं रोमाञ्च, नेत्र–विकास आदि अनुभाव तथा हर्ष सम्भ्रम आदि से परिपुष्ट 'विस्मय' स्थायी भाव चर्वित होकर अद्भुत रस का आस्वाद करा रहा है।

शिवधनुर्भंग होते ही राजा कुशध्वज आश्चर्यचकित रह जाते हैं – (साद्भुतम्) भग्न च तत्।[३] धनुष्टकार को लक्ष्मण राम के बालचरित की भूमिका मानते हैं, सम्प्रति यह टकार–ध्वनि शान्त नहीं हो रही है –

दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभगोद्यत–
ष्टकारध्वनिरार्यबालचरितप्रस्तावनाडिण्डिम ।
द्राक्पर्यस्तकपालसपुटमितब्रह्माण्डभाण्डोदर–
भ्राम्यत्पिण्डितचण्डिमा कथमहो नाद्यापि विश्राम्यति।।[४]

यहाँ राम आलम्बन तथा टकार–ध्वनि उद्दीपन विभाव है, साधुवाद आदि अनुभाव तथा हर्ष आवेग आदि सञ्चारी भाव हैं।

राम से युद्ध करने हेतु वाली वेगपूर्वक आता है, पीतवर्ण शरीर मे स्वर्णमाला धारण किये हुए वह सान्ध्यरागयुक्त, पर्वतोपम, नभ मे सीमन्तरेखासदृश रेखा चिह्नित कर रहा है, श्रमणा रामादिक का ध्यान आकृष्ट करती है – देव ! पश्य पश्य।

---

१ महावीरचरितम् १/४३
२ वही १/४४
३ वही १/५३
४ वही १/५४

बिभ्राणश्चारुचामीकरकमलमय दाम दत्त मघोना
पिंगेनागेन सन्ध्याच्छुरित इव महानम्बुवाहस्तडित्वान्।
उत्पाताविद्धमूर्तेर्दधदुपरि गिरेर्गैरिकाकस्य लक्ष्मी–
मन्त सीमन्तरेखामिव वियति जवादिन्द्रसूनुस्तनोति।।[1]

यहॉ वाली आलम्बन है स्वर्णाभूषणधारण, विद्युत्मेघ का अतिक्रमण उद्दीपन विभाव है। सम्भ्रम आदि अनुभाव, आवेगादिक सञ्चारी भाव हैं।

कवि ने युद्धस्थल मे भी अद्‌भुत रस की सर्जना की है। चित्ररथ आश्चर्यान्वित होकर कहते हैं – (सचमत्कारम्) इतोऽवधत्ता देवराज।

(साद्‌भुतम्) अहो छिद्रसचारिता मर्कटजाते। यत –

उद्दिश्याराद्दशरथकुलाकूरमाद्य पतन्त
सद्य कुम्भ मृधभुवि कपि कोऽपि मध्ये रुरोध।

(सविशेष निर्वर्ण्य) कल सुग्रीव एव। (सविचिकित्सम्)

दो स्तम्भाभ्या सरभसमथापीड्य विक्षिप्य भूमौ
क्रान्त्वाप्येन प्रतिघविवशो माषपेष पिपेष।।[2]

अपि च

(निशम्य) कथमेष दिव्यर्षिगणोऽप्येतयोर्वधाय राघवौ त्वरयति। अथवा दुष्टप्रशान्ति कस्य न मन प्रीत्यै (ससम्भ्रमाद्‌भुतौत्सुक्यम्) देवराज। पश्य –

आभ्या ब्रह्माच्युतास्त्रस्मरणसुरभिभिर्मार्गणै राघवाभ्या–
मूर्धानौ चिच्छिदाते रजनिचरपते रावणेश्च क्रमेण।
पश्चाद्रक्ष कबन्धो मृधभुवि विवश सोऽपि रक्षोऽवरोध
क्षोण्या श्रीदाशरथ्या शिरसि च वियत पुष्पवर्षं पपात।।[3]

उपर्युक्त स्थलो पर चित्ररथ आश्रय हैं, रावण, कुम्भकर्ण, कुम्भ तथा सुग्रीव आदि आलम्बन हैं, उनका परस्पर युद्धरत रहना उद्दीपन विभाव है।

---

१ महावीरचरितम् ५/४४
२ वही ६/४५
३ वही ६/६३

रावण के शतघ्नी–प्रहार से लक्ष्मण के चेतनाशून्य होने पर हनूमान् सञ्जीवनौषधि–आनयन हेतु गमन करते हैं तथा क्षणमात्र मे पर्वत उठा लाते हैं – उस समय शरीर रोमाञ्चित हो जाता है, धूलवृष्टिपात होता है, कुटिल पुच्छ के अग्रभाग से स्पर्श कर नक्षत्रमण्डल प्रकम्पित हो उठता है –

> उत्स्फूर्जद्रोमकूप प्रलयपरिमिलत्पाशुवर्षानुकारी
> किंचिद्भुग्नाग्रपुच्छाप्रतिमविचलनापास्तनक्षत्रचक्र ।
> भूम्नौत्सुक्यानुरूपव्यवसितिरधिक पर्यवप्लुत्य गत्वा
> क्वापि प्राज्ञ क्षणार्धात्कमपि गिरिमसावाहरन्नाजगाम ।।[1]

प्रस्तुत पद्य मे इन्द्र आश्रय हैं, हनूमान् आलम्बन हैं तथा धूलिवर्षण, पुच्छसञ्चालन से नक्षत्रकम्पन आदि उद्दीपन विभाव हैं, साधुवाद सम्भ्रम आदि अनुभाव तथा हर्ष, आवेग आदि सञ्चारी भावो से पुष्ट 'विस्मय स्थायी भाव 'अद्भुत रस की चर्वणा करा रहा है।

भयानक रस

विकृत स्वर अथवा भयानक सत्त्व का दर्शन भयानक रस के प्रति हेतु है, इसका स्थायी भाव भय है।[2] इसका वर्ण कृष्ण एव देवता काल हैं, आलम्बन भयोद्पादक पदार्थ हैं, इन पदार्थों की चेष्टाये उद्दीपन विभाव हैं। वैवर्ण्य, गद्गद्भाषण, प्रलय, स्वेद, रोमाञ्च कम्प इधर–उधर देखना आदि अनुभाव हैं, दीनता, सम्भ्रम मोह, त्रास जुगुप्सा आवेग, ग्लानि शका, अपस्मार तथा मरण आदि सञ्चारी भाव हैं।[3]

षष्ठ अक के मिश्रविष्कम्भक मे नेपथ्य से सूचना दी जाती है कि लका के स्वर्णमय गृह जल रहे हैं, वीरगण यत्र–तत्र भ्रमण कर रहे हैं, अर्धदग्ध राक्षस प्रलय–शका से त्रस्त हैं। त्रिजटा सम्भ्रान्त हो माल्यवान् को पुकारती है तथा हनूमान् द्वारा लकादहन, अक्षकुमारवधादिक की सूचना देती है –

---

१ महावीरचरितम् ६/५१

२ विकृतस्वरसत्त्वादेर्भयभावो भयानक । –दशरूपक ४/८०

३ स्त्रीनीचप्रकृति कृष्णो मतस्तत्त्वविशारदै ।।
यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालम्बन मतम्।
चेष्टा घोरतरास्तस्य भवेदुद्दीपन पुन ।।
अनुभावोऽत्र वैवर्ण्यगद्गद्स्वरभाषणम्।
प्रल[illegible]क्षणादय ।।
जुगुप्सावेगसमोहसत्रासग्लानिदीनता ।
शकापस्मारसम्भ्रान्तिमृत्यवाद्या व्यभिचारिण ।। –साहित्यदर्पण ३/२३५, ३६, ३७, ३८

(नेपथ्ये)

भ्रान्ती सप्ताधिकाना प्रविदधदरुणैरर्चिषा चक्रवालै–
द्राग्वीराणामलक्ष्यप्रसृतिरतिसमुत्तप्तरौक्मालयेषु।
अर्धप्लुष्टापसर्पद्रजनिचरभटोद्गाढकल्पान्तशक
लका प्रौढो हुताश सह परिदलितोऽब्धेस्त्रिकूटेनलीढे।।[1]

(प्रविश्य पटाक्षेपेण सम्भ्रान्ता)

त्रिजटा — परित्रायता परित्रायता कनिष्ठमातामह। (इति सोरस्ताड पतति)

माल्यवान् — वत्से! अल कातरतया। किमिदमुच्चैरत्याहितम्।

त्रिजटा — (उत्थाय) कनिष्ठमातामह! कि कथयामि मन्दभागिनी। एष खलु कोऽपि दुष्टवानर सकल विदह्य नगर क्षणमात्रेण प्रस्तरद्रुमक्षेपविक्षिप्तविविधराक्षसलोकोऽक्षेण खलु कुमारकेणानुबध्यमानस्तस्मिन् कृतान्तलीला कृत्वा झटिति निष्क्रान्त।[2]

यहाँ हनूमान् आलम्बन हैं, नगर को भस्मसात् करना, राक्षसपलायन, अक्षकुमारवध आदि उद्दीपन विभाव हैं, सत्रास, दीनता, शका, सम्भ्रम तथा मरण आदि सञ्चारी भावो से पुष्ट 'भय' स्थायी भाव अभिव्यक्त होकर 'भयानक रस' का आस्वाद करा रहा है।

शान्त रस

शान्त रस की परिगणना नवम रस के रूप मे की गयी है, इसका स्थायी भाव निर्वेद है।[3] इसका वर्ण कुन्दश्वेत अथवा चन्द्रश्वेत तथा देवता श्रीभगवान् नारायण हैं। दु खमय सासारिक विषयो की सारहीनता अथवा साक्षात् परमात्मस्वरूप ज्ञान आलम्बन विभाव हैं, पवित्र आश्रम, तीर्थस्थान, वन साधुजन का सान्निध्य उद्दीपन विभाव हैं, रोमाञ्चादिक अनुभाव तथा निर्वेद, हर्ष स्मृति, मति, जीवदयादिक व्यभिचारी भाव हैं।[4]

---

१ महावीरचरितम् ६/४

२ वही ६/४–५

३ निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस। –काव्यप्रकाश ४/३५

४ कुन्देन्दुसुन्दरच्छाय श्रीनारायणदैवत। अनित्यत्वादिनाऽशेषवस्तुनि सारता तु या।।
परमात्मस्वरूप वा तस्यालम्बनमिष्यते। पुण्याश्रमहरिक्षेत्रतीर्थरम्यवनादय।।
महापु[illegible]द्दीपनरूपिण। रोमाञ्चाद्यानुभावास्तथा स्युर्व्यभिचारिण।। निर्वेदहर्षस्मरणमतिभूतदयादय।
–साहित्यदर्पण ३/२४५–४६

हिमालय के पवित्र शिखर की ओर विभीषण रामादिक का ध्यानाकर्षण करते हैं – जो गगा जल से अनवरत प्रक्षालित हैं, कर्पूरवत् उज्ज्वल हैं, वहाँ जीर्ण भूर्जवल्कल हैं अध्यात्मविद्या के प्रेमी तत्त्वज्ञान से अज्ञान का निराकरण करने वाले ब्रह्मवेत्ता के तेज विकीर्ण होते हैं –

एते ते सुरसिन्धुधौतदृषद कर्पूरखण्डोज्ज्वला
पादा जर्जरभूर्जवल्कलभृतो गौरीगुरो पावना ।
तत्त्वालोकनिरस्तमोहतमसामध्यात्मविद्याजुषा
यत्र ब्रह्मविदा निसर्गमधुर जागत्ति सौम्य मह ।।[1]

यहाँ हिमालय के पवित्र शिखर आलम्बन विभाव हैं, उसकी श्वेतरूपता तथा वल्कलयुक्तता उद्दीपन विभाव है, विभीषण द्वारा उसकी भव्यता का निर्देश अनुभाव है, निर्वेद मति आदि व्यभिचारी भाव हैं।

रसाभास

रस का अनुचित रूप से वर्णन रसाभास कहलाता है।[2] प्रतिनायक का नायिकानिष्ठ रतिभाव अनुचित है, अतएव श्रृगाराभास की कोटि मे आता है।[3]

उत्कण्ठित रावण सर्वतोभद्र नामक प्रासाद पर आरूढ होकर अशोक वन मे स्थित सीता का अवलोकन करता है, उसकी देहयष्टि की प्रशसा करता है सम्प्रति विधाता को अनुकूल मानता है –

मुख यदि किमिन्दुना यदि चलाञ्चले लोचने [illegible]म्बकैर्यदि तरगभगी भ्रुवौ।
किमात्मभवधन्वना यदि सुसयता कुन्तला किमम्बुवहडम्बरैर्यदि तनूरिय कि श्रिया।।[4]

(सस्मरणोल्लासम्) अहो । हलमुखविनिर्भिन्नविश्वम्भराविर्भूतयोषिद्रत्नमनुभवतो मम मनोरथेन चिराय फलितम्, (विमृश्य) अनुकूलस्य विधे किलाय विलास, (सगर्वम्) अथवा क एष विधिरपि।[5]

प्रस्तुत वर्णन श्रृगार रस का आभास करा रहा है, यहाँ रतिभाव एकपक्षीय एव प्रतिनायक का है।

---

१ महावीरचरितम् ७/२७
२ तदाभासा अनौचित्यप्रवर्त्तिता । –काव्यप्रकाश ४/३६ का पूर्वार्ध
३ श्रृगारेऽनौचित्य । –साहित्यदर्पण ३/२६४
४ महावीरचरितम् ६/६
५ वही ६/६–१०

भाव

देव, गुरु, मुनि, नृप एव पुत्रादिक विषयक 'रति आदि स्थायी भाव तथा प्राधान्येन व्यग्य व्यभिचारी भाव को भाव कहते हैं।[1] भाव की शान्ति, उदय, सन्धि, शबलता चार स्थितियॉ हैं।[2] परशुराम–समागम तथा सीता–परिरम्भण हेतु तत्पर राम किकर्त्तव्यविमूढ हो जाते हैं उनकी चेतना लुप्त होने लगती है – हन्त हन्त।

उत्सिक्तस्य तप पराक्रमनिधेरस्यागमादेकत
तत्सगप्रियता च वीररभसोन्मादश्च मा कर्षत ।
वैदेहीपरिरम्भ एष च मुहुश्चैतन्यमामीलय–
न्नानन्दी हरिचन्दनेन्दुशिशिरस्निग्धो रुणद्ध्यन्यत ।।[3]

यहॉ आवेग तथा हर्ष नामक व्यभिचारी भावो की सन्धि है। पञ्चम अक मे लक्ष्मण शोकातुर राम की मन दशा का विश्लेषण करते हैं –

एष मूर्त इव क्रोध शोकाग्निरिव जगम ।
कृच्छ्राद् बिभर्ति हृल्लेखलज्जासवेगिनीं तनुम्।।[4]

यहॉ क्रोध, शोक आदि स्थायी भावो का मिश्रण है, अत भावसन्धि का उदाहरण है। जटायुवध, सीताहरण आदि के कारण राम सलज्ज हैं, हृदय द्रवीभूत एव कारुण्य से परिपूर्ण है –

न्यक्कारो हृदि वज्रकील इव मे तीव्र परिस्पन्दते
घोरान्धे तमसीव मज्जति मन समीलित लज्जया।
शोकस्तातविपत्तिजो दहति मा नास्त्येव यस्मिन् क्रिया
मर्माणीव पुनश्छिनत्ति करुणा सीता वराकीं प्रति।।[5]

यहॉ लज्जा एव शोक भावो का एकत्र सन्निवेश है, यह भावसन्धि का उदाहरण है।

रस–ससृष्टि

षष्ठ अक मे राक्षस तथा वानर सेना परस्पर युद्धरत हैं, अस्त्रप्रहार से क्षत–विक्षत अग यत्र–तत्र विकीर्ण हैं, वीरो की देह से रक्तस्राव हो रहा है –

---

१ रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जित ।। भाव प्रोक्त । –काव्यप्रकाश ४/३५–३६
२ भावस्य शान्तिरुदय सन्धि शबलता तथा।। –वही ४/३६
३ महावीरचरितम् २/२२
४ वही ५/२०
५ वही ५/२२

प्रासप्रोतप्रवीरोल्बणरुधिरपरामृष्टबुक्काजिघत्सा–
धावद्गृध्राधिराजाप्रतिमतनुरुहच्छायया वारितोष्णा।
विश्राम्यन्ति क्षणार्धं प्रधनपरिसरेष्वेव मुक्ताभियोगा
वीरा शस्त्रप्रहारव्रणभररुधिरोद्गारदिग्धाखिलागा।।[1]

उपर्युक्त स्थलो पर वीर तथा बीभत्स रस का योग दर्शनीय है। राम–रावण युद्ध करते हैं किन्तु उनका ध्यान लक्ष्मण तथा मेघनाद के युद्ध की ओर है –

सौमित्रि कृतहस्तताप्रभृतिभिर्न्यूनो न कैश्चिद्गुणै
सारेणापि पुन प्रसिद्धमहिमा शौर्याग्रणी रावणि।
इत्थ तुल्यतरे किल व्यतिकरे रामस्य रक्ष प्रभो–
श्चान्योन्य शरवृष्टिरेष वलते दृष्टिस्तयोर्वत्सला।।[2]

यहॉ वीर एव वात्सल्य भाव का सम्मिश्रण है। लक्ष्मण के मूर्च्छित होने का वृत्तान्त ज्ञात होने पर राम के हृदय मे वीर एव करुण रस का सञ्चार होता है, वह कुम्भकर्ण का वध कर अनुज के निकट पहुॅचते हैं, चित्ररथ राम की मन स्थिति का वर्णन करते हैं– देवराज! अयमत्राद्भुततरो विमर्द। यदा तु भ्रातुर्मोहमधिगम्य भाविलकेश्वरादक्रममेव करुवीरानुभावभावितचित्तवृत्तिस्तथाविधस्यापि दर्शनोत्सुक समवारुध्यत परित कुम्भकर्णप्रमुखया रक्ष पृतनया, तदा पुनरिदमेव प्रत्यकार्षीत्।[3] यहॉ वीर एव करुण रस का सम्मिश्रण है। वाली राम को आनन्द आश्चर्य एव दु खपूर्वक देखता है, उन्हे धनुर्प्रयोगार्थ प्रेरित करता है –

आनन्दाय च विस्मयाय च मया दृष्टोऽसि दु खाय वा
वैतृष्ण्य तु ममापि सम्प्रति कुतस्त्वद्दर्शने चक्षुष।
त्वत्सागत्यसुखस्य नास्मि विषयस्तत्कि वृथा व्याहृतै–
रस्मिन्विश्रुतजामदग्न्यदमने पाणौ धनुर्जृम्भताम्।।[4]

यहॉ हर्ष, धृति आदि व्यभिचारी भाव, करुण तथा वीर रस का समावेश किया गया है।

■

१ महावीरचरितम् ६/३३
२ वही ६/४१
३ वही ६/४८–४६
४ वही ५/४६

सप्तम अध्याय

अलंकार-निरूपण

सप्तम अध्याय

अलकार – निरूपण

अलकार पद की व्युत्पत्ति है– अलकृयतेऽनेन इति अलकार' अथवा 'अलकरणमलकार' अर्थात् जो काव्य को सुशोभित करे, उसे अलकार कहते हैं। आचार्य दण्डी के अनुसार लोक मे केयूर, अगहारादिक आभूषण शरीर को अलकृत करते हैं, सौन्दर्यवर्धन करते हैं, उसी प्रकार अलकार काव्यशरीर–शब्द एव अर्थ की श्रीवृद्धि मे हेतुभूत हैं।[1]

अलकार सम्प्रदाय के आचार्य काव्य मे अलकार का प्राधान्य स्वीकार करते हैं। गुण एव अलकाररहित काव्य निरर्थक प्रतीत होता है, उसकी स्थिति विधवा के सदृश है। आचार्य भामह के अनुसार अतीव सुन्दर ललना का मुख अलकार की अपेक्षा रखता है उत्कृष्ट काव्य भी अलकाराभाव मे निष्प्रभ प्रतीत होता है।[2] जयदेव अलकार को अपरिहार्य मानते हैं।[3] भामहादिक आचार्यों ने रस को उपमादिक अलकार की श्रेणी मे परिगणित किया है तथा रसवत्, प्रेयस्, उर्जस्विन्, समाहित को अलकारप्रकार की सज्ञा देकर रसभावादिक अलकार्य को अलकारो मे समाविष्ट किया है।[4] कालान्तर मे ध्वनिवादी आचार्यों ने रस को काव्यात्मरूप मे प्रतिष्ठित किया। इनके अनुसार रस अलकार्य तथा अगी है, अलकार इसका अलकरण करता है, अतएव इसकी 'अलकार' सज्ञा है।[5] आचार्य मम्मट के अनुसार अनुप्रास, उपमादिक अलकार रस का उत्कर्ष करते हैं।[6]

---

१ काव्यशोभाकरान् धर्मानलकारान् प्रचक्षते। –काव्यादर्श २/१

२ गुणालकाररहिता विधवेव सरस्वती। –कुवलयानन्द पृ० ६२

३ अगीकरोति य काव्य शब्दार्थावनलकृती।
असौ न मन्यन्ते कस्मादनुष्णमनलकृती।। –चन्द्रालोक १/८

४ (क) भामह काव्यालकार ३/१ ५, ६–७ १०
(ख) काव्यादर्श पृ० २२५–२३८

५ अगाश्रितास्त्वलकारा विज्ञया कटकादिवत्।। –ध्वन्यालोक २/६ का उत्तरार्ध

६ उपकुर्वन्ति त सन्त येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलकारास्तेऽनुप्रासोपमादय ।। –काव्यप्रकाश ८/६७

अलकार प्रधान तत्त्व, अलकार्य या धर्मी रस की श्रीवृद्धि करता है, अतएव गौण तत्त्व है। काव्य मे अलकार की अवस्थिति अपरिहार्य नहीं है, आभूषणरहित लावण्यवती स्त्री सहृदयो का ध्यान समाकृष्ट कर लेती है, उसी प्रकार उपमादिक अलकारो से रहित तथा श्रृगारादिक से युक्त काव्य रसचर्वणा का हेतुभूत है, आह्लादकारक है।[1] आचार्य मम्मट के काव्यलक्षण से यह तथ्य सुस्पष्ट है।[2] किन्तु रसविहीन काव्य मे अलकार मृत स्त्री के अगो पर निक्षिप्त कटकादिक आभूषणवत् निरर्थक है।[3] रसहीन तथा अलकारप्रधान काव्य चित्रकाव्यमात्र रह जाता है[4], आचार्य मम्मट ने इसे शब्दचित्र एव अर्थचित्र प्रधान अधमकाव्य कहा है।[5]

आचार्य मम्मट के अनुसार काव्य मे अलकार की त्रिविध अवस्थिति दृष्टिगत होती है –

(१) कहीं अगभूत वाच्य तथा वाचक की श्रीवृद्धि के माध्यम से प्रकारान्तर से अगी रस का उत्कर्ष करते हैं।[6]

(२) जहॉ रस नहीं होता है, वहॉ उक्तिवैचित्र्य मात्र प्रतीत होते हैं।[7]

(३) कहीं रस विद्यमान होने पर भी उसका वर्धन नहीं करते।[8]

आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार अलकार की अलकरता प्रथम स्थिति मे ही सम्भव है।[9] वस्तुत ध्वनि मे रसाक्षिप्त, स्वत प्राप्त ही अलकार सार्थक है, वही अगी रस का अग होता है। उसी का रसागत्व मुख्य है अर्थात् जो अलकार रसनिबन्धनार्थ प्रयत्नशील कवि की रस–

---

१ प्रतीयमान पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्त विभाति लावण्यमिवागनासु।। –ध्वन्यालोक १/४

२ क्वचित्तु स्फुटालकारविरहेऽपि न काव्यत्वहानि। –काव्यप्रकाश पृ० १६

३ तथाहि–अचेतन शवशरीर कुण्डलाद्युपेतमपि न भाति अलकार्यस्याभावात्।
–ध्वन्यालोकलोचन द्वितीय उद्योत पृ० ७३

४ रसभावादिविषयविवक्षाविरहे सति।
अलकारनिबन्धो य स चित्र विषयो मत।। –ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत पृ० ४६१

५ शब्दचित्र वाच्यचित्रमव्यग्य त्ववर स्मृतम्। –काव्यप्रकाश १/५

६ ये वाचकवाच्यलक्षणागातिशयमुखेन मुख्य रस सम्भविनमुपकुर्वन्ति ते कण्ठाद्यगानामुत्कर्षाधानद्वारेण शरीरिणोऽपि उपकारका हारादय इवालकारा। –वही ८/६७ का वृत्तिभाग

७ यत्र तु नास्ति रसस्तत्रोक्तिवैचित्र्यमात्रपर्यवसायिन। –वही

८ क्वचित्तु सन्तमपि नोपकुर्वन्ति। –वही

६ रसभावादितात्पर्यमाश्रित्य विनिवेशनम्।
अलकृतीना सर्वासामलकारत्वसाधनम्।। –ध्वन्यालोक, द्वितीय उद्योत, पृ० ७१

बन्धनाध्यवसायवासना का अतिक्रमण कर, उसके अतिरिक्त यत्नवशात् उत्पन्न हो वह रस का अग नही हो सकता।[१]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यदि अलकार–प्रयोग से आत्मतत्त्व रस का परिपोष होता है तो वही अलकार अलकारपदभाजन है।[२]

महावीरचरितम् का अगी रस वीर है, कवि ने अनुप्रास उपमादिक अलकारो का नाटक मे यथावसर प्रयोग किया है जो वीर एव अन्य रसो का परिपोष करते हैं।

अनुप्रास[३]

प्रथम अक मे भयावह आकृति वाली ताटका को सिद्धाश्रम मे समुपस्थित देखकर, लक्ष्मण विश्वामित्र से उसका परिचय पूछते हैं। प्रस्तुत प्रसग मे कवि ने बीभत्स रसानुकूल पदावली का प्रयोग किया है –

अन्त्रप्रोतबृहत्कपालनलकक्रूरक्वणत्ककण–
प्रायप्रेखितभूरिभूषणरवैराघोषयन्त्यम्बरम्।
पीतोच्छर्द[illegible]गभारघोरोल्लल–
द्व्यालोलस्तनभारभैरववपुदर्पोद्धत धावति।।[४]

यहॉ प्रत्येक चरण मे प्रयुक्त अनुप्रास अलकार वर्ण्य विषय बीभत्स रस का परिपोष कर रहा है।

लक्ष्मण मरणासन्न ताटका की स्थिति देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं –

हृन्मर्मभेदिपतदुत्कटककपत्त्रसवेगतत्क्षणकृतस्फुटदगभगा।
नासाकुटीरकुहरद्वयतुल्यनिर्यदुद्बुद्बुदध्वनदसृक्प्रसरा मृतैव।।[५]

---

१ यस्यालकारस्य रसाक्षिप्ततयैव बन्ध शक्यक्रियो भवेत् सोऽस्मिन्नलक्ष्यक्रमव्यग्ये ध्वनावलकारो मत। तस्यैव रसागत्व मुख्यमित्यर्थ। रसागत्वे च तस्य लक्षणमपृथग्यत्ननिर्वर्त्यत्वमिति यो रस बन्धुमध्यवसितस्य कवेरलकारस्ता वासनामत्यूह्य यत्नान्तरमास्थितस्य निष्पद्यते स न रसाङगमिति।
–ध्वन्यालोक २/१६ का वृत्तिभाग

२ ध्वन्यात्मभूते श्रृङगारे समीक्ष्य विनिवेशित।
रूपकादिरलकारवर्ग एति यथार्थताम्।। –वही २/१७

३ वर्णसाम्यमनुप्रास। –काव्यप्रकाश ९/७९ का पूर्वार्ध

४ महावीरचरितम् १/३५

५ वही १/३६

तृतीय अक मे जनकपुरोहित शतानन्द परशुराम की कटूक्तियो से रुष्ट हो उन्हे क्षम्य नही मानते हैं। प्रस्तुत प्रसग मे रौद्र रस के अनुरूप अनुप्रास अवलोकनीय है –

राजानो गुरवश्चैते महिम्नैव महाक्षमा ।
क्षमन्ता नाम न त्वेव शतानन्द क्षमिष्यते।।[1]

राजा दशरथ परशुरामदमनार्थ क्षत्रियकर्त्तव्य का कथन कर प्रहारार्थ उद्यत होते हैं –

दुर्दान्ताना दमनविधय क्षत्त्रियेष्वायतन्ते
दुर्दान्तस्त्व वयमपि च ते क्षत्त्रिया शासितार ।
सद्य शान्तो भव किमपर दम्यसे चाधुनैव
क्व ब्रह्माण प्रशमनपरा क्षत्रधार्यं क्व शस्त्रम्।।[2]

यहॉ अनुप्रास अलकार रौद्र रस का उत्कर्षाधायक है।

चतुर्थ अक मे माल्यवान् रावणादिक के भावी विनाश की सकल्पना कर उद्विग्न हो जाता है। प्रस्तुत प्रसग मे करुणरसानुकूल अनुप्रास की छटा द्रष्टव्य है –

हा वत्सा खरदूषणत्रिशिरसो वध्या स्थ पापस्य मे
हा हा वत्सविभीषण त्वमपि मे कार्येण हेय स्थित ।
हा मद्वत्सल वत्स रावण महत्पश्यामि ते सकट
वत्से केकसि हा हतासि नचिरात्त्रीन्पुत्रकान्द्रक्ष्यसि।।[3]

षष्ठ अक मे रावण वानरो को दिशा मे प्रक्षेपित करने तथा तपस्वी गण को कारागृह मे डाल देने की घोषणा करता है। प्रस्तुत प्रसग मे ओजोगुणविशिष्ट अनुप्रास–प्रयोग दर्शनीय है –

कैश्चिद्दोर्भि प्रमत्तान्प्लवगपरिवृढान्दिक्षु विक्षिप्य दक्षै–
रन्यै पिष्ट्वापि युद्धाभिनयविधिनटौ तौ तपस्विप्ररोहौ।
शिष्टै कृष्ट्वा स्वचेत प्रतिफलितवृथारन्ध्रमात्रप्रविष्टान्–
दुष्टास्त्रैविष्टपानप्यगतकरुणस्तैर्बिभर्मि स्वकाराम्।।[4]

यहॉ अनुप्रास अलकार वीर रस को पुष्ट कर रहा है।

---

१ महावीरचरितम् ३/२०
२ वही ३/३४
३ वही ४/११
४ वही ६/२५

कतिपय स्थलो पर अनुप्रास वाच्यार्थ का उत्कर्ष करते हैं, यद्यपि वहाँ रस–स्थिति स्पष्ट हो या न हो।

द्वितीय अक मे परशुराम राम के मनोहारी रूप का वर्णन करते हैं। प्रस्तुत स्थल पर अनुप्रास की छटा दर्शनीय है –

चञ्चत्पञ्चशिखण्डमण्डनमसौ मुग्धप्रगल्भ शिशु–
र्गम्भीर च मनोहर च सहजश्रीलक्ष्म रूप दधत्।
द्राग्दृष्टोऽपि हरत्यय मम मन सौन्दर्यसारश्रिया
हन्तव्यस्तु तथापि नाम धिगहो वीरव्रतक्रूरताम्।।[1]

यहाँ अनुप्रास अलकार राम–व्यक्तित्व-वर्णन मे चारुत्वोत्कर्ष कर रहा है।

अर्थालकार

अर्थालकारो मे शब्दपरिवृत्तिसहत्व होता है। कवि रसानुकूल अलकारनिबन्धनार्थ शब्द–प्रयोग मे स्वतन्त्र होता है।

उपमा[2]

उपमा आन्तर एव बाह्य जगत का साम्य प्रतिपादित कर सहृदयो को आकृष्ट तथा चमत्कृत करती है। यह अनेक अर्थालकारो के मूल मे वर्तमान रहती है। उपमा कवि की सौन्दर्य विषयक समदृष्टि साधना है।

सर्वमाय विश्वामित्र से सीता–परिणय–प्रस्ताव का पुन निवेदन करता है –

दाड्निष्पेषविशीर्णवज्रशकलप्रत्युप्तरूढव्रण–
ग्रन्थ्युद्भासिनि भग्नमोघमघवन्मातगदन्तोद्यमे।
भतुर्नन्दनदेवताविरचितस्रग्धाम्नि भूमे सुता
वीरश्रीरिव तस्य वक्षसि जगद्वीरस्य विश्राम्यतु।।[3]

यहाँ पर प्रयुक्त उपमा रावण–पराक्रम का परिज्ञान कराती हुयी वीर रस का परिपोष कर रही है।

---

१ महावीरचरितम् २/३२
२ साधर्म्यमुपमा भेदे। –काव्यप्रकाश १०/८७
३ महावीरचरितम् १/३४

कुशध्वज राम–लक्ष्मण को सुबाहु–मारीच–वधार्थ जाते देखकर स्वय तत्पर होते हैं, विश्वामित्र की कुशध्वज के प्रति उक्ति द्रष्टव्य है –

राजन्नितो ह्येहि सहानुजस्य रामस्य पश्याप्रतिमानमोज ।
ब्रह्मद्विषो ह्येष निहन्ति सर्वानाथर्वणस्तीव्र इवाभिचार ।।[1]

यहाँ उपमालकार से विश्वामित्र के रामपराक्रम–विषयक दृढविश्वास की अभिव्यञ्जना हो रही है।

माल्यवान् शूर्पणखा से परशुराम के कुल, तप, शिवभक्ति स्वभाव आदि की प्रशसा करता है –

अभिजनतपोविद्यावीर्यक्रियातिशयैर्निजैरुपचितमद सर्वत्यागान्निरीहतया स्थित ।
व्यपदिशति न शैवप्रीत्या कथचिदनास्थया प्रभुरिव पुन कार्ये कार्ये भवत्यतिकर्कश ।।[2]

प्रस्तुत उपमा से परशुराम–व्यक्तित्व का सम्यक् ज्ञान ध्वनित हो रहा है।

महेन्द्र पर्वत गमनार्थ उद्यत माल्यवान् की परशुराम–विषयक प्रशसोक्ति द्रष्टव्य है –

गभीरो माहात्म्यात्प्रशमशुचिरत्यन्तसुजन
प्रसन्न पुण्याना प्रचय इव सर्वस्य सुखद ।
प्रभुत्वस्योत्कर्षात्परिणतिविशुद्धेश्च तपसा–
मसौ दृष्ट सत्त्व प्रबलयति पाप च नुदति।।[3]

प्रस्तुत उपमा से परशुराम–प्रभाव व्यक्त हो रहा है।

परशुरामागमन से आक्रान्त सीता से राम कहते हैं –

पुण्योऽपि भीमकर्मा निधिर्व्रताना चकास्त्यमितशक्ति ।
मूर्तिमभिरामघोरा बिभ्रदिवाथर्वणो निगम ।।[4]

यहाँ उपमालकार परशुराम के उग्र एव कोमल द्विविध व्यक्तित्व को सफलतापूर्वक व्यक्त कर रहा है।

---

१ महावीरचरितम् १/६२
२ वही २/११
३ वही २/१५
४ वही २/२४

परशुराम निर्भीकतापूर्वक समुपस्थित राम की प्रशसा करते हैं –

अन्विष्यत प्रमथनाय ममापि दर्पादात्मानमर्पयसि जातिविशुद्धसत्त्व ।
गन्धद्विपेन्द्रकलभ करिकुम्भकूटकुट्टाकपाणिकुलिशस्य यथा मृगारे ।।[1]

यहाँ सिहद्वारा गजविदारण के समान परशुराम द्वारा रामसहार अभिव्यग्य है।

वसिष्ठ, विश्वामित्र परशुराम से दशरथ के वश, पराक्रम आदि की प्रशसा करते हैं, दशरथ की शान्ति–प्रार्थना से अवगत कराते हैं –

इष्टापूर्तविधे सपत्नशमनात्प्रेयान्मघोन सखा
येन द्यौरिव वज्रिणा वसुमती वीरेण राजन्वती।
यस्यैते वयमग्रत किमपर वशश्च वैवस्वत
सोऽय त्वा तनयप्रिय परिणतो राजा शम याचते।।[2]

यहाँ उपमालकार से दशरथ का शौर्य ध्वनित हो रहा है।

जामदग्न्य की कटूक्तियो से रुष्ट शतानन्द का कथन है –

वयमिव यथा गृह्यो वह्निस्तथैव चिर स्थिता
सुर्वाशमुक्तम्भाधारे गृहे गृहमेधिनाम्।
यदि परिभवस्तत्रान्यस्मादुपैति धिगस्तु तत्–
प्रियमपि तपो धिग्ब्राह्मण्य धिगगिरस कुलम्।।[3]

यहाँ गृह्यवह्निवत् मे प्रयुक्त उपमा से राजकुल मे वर्तमान पुरोहित शतानन्द की कर्त्तव्यपरायणता अभिव्यञ्जित हो रही है।

शतानन्द परशुराम को भस्मसात् करने के लिये तत्पर होते हैं –

सक्रोध प्रसभमह पराभिघातादुद्भूतद्रुतगतिराततायिन व ।
उत्पातक्षुभितमरुद्विघट्यमानो वज्राग्निर्द्रुममिव भस्मसात्करोमि।।[4]

प्रस्तुत स्थल पर उपमालकार रौद्र रस का उत्कर्षाधायक है।

---

१ महावीरचरितम् २/३१
२ वही ३/१
३ वही ३/१७
४ वही ३/२१

परशुराम जनक के यकृत्, वक्ष आदि अगो को खण्ड–खण्ड कर देने की प्रतिज्ञा करते हैं –

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ यावद्विशकलितयकृत्क्लोमवक्षोरुहान्त्र–
स्नायुग्रन्थ्यस्थिशल्कव्यतिकरितजरत्कधरादन्तखण्ड ।
मूर्धच्छेदादुदञ्चद्गलधमनिशिरारक्तडिण्डीरपिण्ड–
प्रायप्राग्भारघोर पशुमिव परशु पर्वशस्त्वा श्रृणातु ।।[1]

यहॉ उपमालकार रौद्र रस को पुष्ट कर रहा है।

जनकादिक द्वारा तिरस्कृत होने पर परशुराम का क्रोध प्रवृद्ध एव उद्दीप्त हो जाता है –

अन्तर्धैर्यभरेण वृद्धवचनात्सपीड्य पिण्डीकृतो
हृन्मर्माश्रितशल्यवत्परिदहन्मन्युश्चिर य स्थित ।
स्फूर्जत्येव स एष सप्रति मम न्यक्कारभिन्नस्थिते
कल्पापायमरुत्प्रकीर्णपयस सिन्धोरिवौर्वानल ।।[2]

प्रस्तुत स्थल पर उपमालकार के माध्यम से परशुराम–क्रोध को अत्यन्त स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत किया गया है।

माल्यवान् रावणशत्रु तथा भयहेतु विभीषण के प्रति विचार करता है –

तृतीयो मे नप्ता रजनिचरनाथस्य सहजो रिपु प्रत्यासत्तेरहिरिव भय नो जनयति ।।[3]

यहॉ प्रयुक्त उपमालकार से माल्यवान् की दृष्टि मे विभीषण की भीषणता एव अविश्वसनीयता अभिव्यञ्जित हो रही है।

चतुर्थ अक मे राम से पराभूत परशुराम का कथन है –

असाध्यमन्यथादोष परिच्छिद्य शरीरिण ।
यथा वैद्यस्तथा राजा शस्त्रपाणिर्भविष्यति ।।[4]

यहॉ वैद्यकृत दोषोपचारवत् अस्त्रप्रयोगार्थ राजोचित कर्त्तव्य विषयक मत प्रतिपादित किया गया है।

---

१ महावीरचरितम् ३/३२
२ वही ३/४०
३ वही ४/७
४ वही ४/२३

मामा युधाजित् रामादिक का वनगमन श्रवण कर सीता की स्थिति पर विचार करते हैं –

वधूटी रक्षोभ्यो बलिरिव वराकी प्रणिहिता।[1]

प्रस्तुत स्थल पर उपमा करुण रस को पुष्ट कर रहा है।

सम्पाति जटायु–आगमन के प्रति विश्वस्त है क्योकि पक्षो द्वारा निसृत वायु से पाताल अकालप्रलयरात्रिवत् शब्दायमान है –

दूरोद्वेल्लितवाडवस्य जलधेरुल्लोलभिन्नाम्भसो
रन्ध्रैरापतितेन वेगमरुता पातालमाध्मायते।
यद्वैकुण्ठवराहकण्ठकुहरस्फारोच्चलद्भैरव–
ध्वानोच्चण्डमकाण्डकालरजनीपर्जन्यवद् गर्जति।।[2]

यहॉ उपमा भयानक रस का उत्कर्षाधायक है।

पञ्चम अक मे लक्ष्मण जटायु–कथन का स्मरण करते हैं जिसमे सीता–हरण एव जटायु–वधकर्त्ता रावण का उल्लेख रहता है –

यामोषधिमिवायुष्मन् विचिनोषि महावने।
सा सीता मम च प्राणा रावणेनोभय हृतम्।।[3]

यहॉ उपमा से जटायु की निष्ठा अभिव्यक्त हो रही है।

अन्तर्निगूढ कोपानल से दग्ध राम का लक्ष्मण से कथन है –

प्रचण्डपरिपिण्डित स्तिमितवृत्तिरन्तर्मुख
पिबन्निव मुहुर्मुहुर्झटिति मन्युरुच्चैर्ज्वलन्।
शिखाभिरिव निश्चरन्ननुपलभ्य दाह्यान्तर
पयोधिमिव वाडवो दहति मामतस्त्रायताम्।।[4]

यहॉ श्लिष्टविशेषणो से युक्त पूर्णोपमा रौद्र रस का परिपोष कर रही है।

सप्तम अक मे राक्षसो के नामश्रवण से आक्रान्त सीता को राम आश्वस्त करते हैं –

---

१ महावीरचरितम् ४/५२
२ वही ५/२
३ वही ५/२४
४ वही ५/२६

शरासनस्य टकारात्सौमित्रे केवल किल।
रक्षसा प्रलय सिहगर्जनाद्दन्तिना यथा।।[1]

राम सीता को राक्षसनाश तथा लक्ष्मण–पराक्रम विषयक सूचना देते हैं, उपमालकार का सुन्दर प्रयोग है।

भरत के परिरम्भणजन्यसुख से आनन्दित राम के कथन मे उपमा–सौन्दर्य द्रष्टव्य है –

अनुभावयति ब्रह्मानन्दसाक्षात्क्रियामिव।
स्पर्शस्तेऽद्य वराम्भोजप्रस्फुरन्नालकर्कश।।[2]

रूपक[3]

तृतीय अक मे परशुराम का विश्वामित्रादिक के प्रति कथन है –

प्रायश्चित्त चरिष्यामि पूज्याना वो व्यतिक्रमात्।
न त्वेव दूषयिष्यामि शस्त्रग्रहमहाव्रतम्।।[4]

यहॉ शस्त्रग्रहण तथा महाव्रत मे अभेद कल्पित किया गया है। प्रस्तुत रूपक से परशुराम की दृढता व्यक्त हो रही है।

परशुराम क्षत्रियसहार से विरक्त होकर तपस्वीजीवनयापन विषयक कथन करते हैं –

परशुरशनिचण्ड क्षत्त्रघात विहाय
प्रियमपि समिदिध्मव्रश्चन कि न जात।
निभृतविशिखदष्ट्रश्चापदण्डोऽपि धत्ते
प्रशमितविषवह्ने साम्यमाशीविषस्य।।[5]

यहॉ विष एव वह्नि तथा बाण एव दॉत मे अभेद कल्पित किया गया है, रूपक अलकार रौद्र रस का परिपोष कर रहा है।

परशुराम जनक का उपहास करते हैं –

---

१ महावीरचरितम् ७/२०
२ वही ७/३१
३ तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययो।। –काव्यप्रकाश १०/९३ का पूर्वार्ध
४ महावीरचरितम् ३/८
५ वही ३/१४

क्षत्त्रालोकक्षुभितहुतभुक्प्रस्फुलिगाट्टहास
हाय पश्यन्नपि रिपुशिर शाणशात कुठारम्।
दत्तोत्सेक प्रलपति मया याज्ञवल्क्यानुरोधा–
न्मिथ्याध्मात किमपि जरसा जर्जर क्षत्त्रबन्धु ।।[1]

प्रस्तुत स्थल पर शिर एव शाण, अग्निस्फुलिग एव अट्टहास मे अभेद कल्पित है, रूपक अलकार रौद्र रस को पुष्ट कर रहा है।

परशुराम से तिरस्कृत हो जनक धनुर्प्रयोगार्थ तत्पर होते हैं –

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदष्ट्रमुद्गारिघोरघनघर्घरघोषमेतत्।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र जृम्भाविडम्बिविकटोदरमस्तु चापम्।।[2]

यहॉ प्रत्यञ्चा एव जिह्वा, कोटि एव दन्त, धनुष् एव मुख मे अभेद कल्पित है, परम्परित रूपक अलकार रौद्र रस का उत्कर्षाधायक है।

सम्पाति जटायु को आकाशव्यापी स्थान के ज्ञान से अवगत कराते हैं –

कल्पस्यादौ मम परिचयस्तावदासीदुदस्थाद्यावद्विष्णोरुपरि चरणश्चारुगगापताक ।
पर्यन्तेष्वप्यवधिवलयस्तेजसा यावदद्रिर्लोकालोक परिसरगत सप्तमस्याम्बुराशे ।।[3]

यहॉ गगा एव पताका मे अभेद कल्पित है, अत रूपक अलकार है। सम्पाति का भूमण्डल–विषयक ज्ञान अभिव्यञ्जित हो रहा है।

लक्ष्मण राम को कबन्ध–व्यक्तित्व का परिचय देते हैं –

तत्क्रूरदन्तकरपत्रनिकृत्तसत्त्वसघातनि सरदसृक्प्लुतकूर्चगुच्छम्।
वक्त्र वपुश्च विकृताकृति दीर्घबाहोरार्येण राक्षसकुतूहलिना न दृष्टम्।।[4]

प्रस्तुत प्रसग मे दन्त एव करपत्र (आरा) मे अभेद कल्पित है, यहॉ राम को राक्षससहारार्थ आकृष्ट करना ध्वनित हो रहा है।

---

१ महावीरचरितम् ३/२८
२ वही ३/२६
३ वही ५/१०
४ वही ५/२६

वाली समस्त ब्रह्माण्ड को अस्त–व्यस्त करने मे सक्षम है, किन्तु रामवधार्थ आने से उद्विग्न है –

> लोकालोकालवालस्खलनपरिपतत्सप्तमाम्भोधिपूर
> विश्लिष्यत्पर्वकल्पत्रिभुवनमखिलोत्खातपातालमूलम्।
> पर्यस्तादित्यचन्द्रस्तबकमवपतद्भूरिताराप्रसून
> ब्रह्मस्तम्ब धुनीयामिह तु मम विधावस्ति तीव्रो विषाद ।।[1]

यहॉ ब्रह्माण्ड एव गुल्म, पर्वत एव आलवाल, पाताल एव जड, चन्द्र, सूर्य एव पुष्पगुच्छ, नक्षत्रमण्डल एव पुष्प मे अभेद कल्पित है, वाली–पराक्रम–वर्णन मे रूपक अलकार का सुन्दर प्रयोग है।

दूत अगद का रावण के प्रति कथन है –

> दृप्यद्राक्षसचक्रकाननमहादावानलस्याज्ञया
> दूतो दशरथेस्तदीयवचसा त्वामागत शासितुम्।
> सीता मुञ्च भजावरोधनसुहृद्दायादपुत्रान्वित
> सौमित्रेश्चरणौ न चेत्तदिषुभि शासिष्यसे दुर्मद ।।[2]

यहॉ राक्षससमूह एव वन मे अभेद कल्पित है। लक्ष्मणादिक द्वारा रावण–पराभव अभिव्यग्य है।

चित्ररथ राम द्वारा राक्षस–सहार देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं –

> यावन्तो रजनीचरा प्रहरणोद्घूर्णद्भुजाकेतवो
> युध्यन्तेऽभिमुखा स्फुरद्भुजमदाध्माता पुरो निर्गता ।
> प्रक्षिप्ताशुगजालपक्षपवनाधूते प्रतापानले
> चित्र दाशरथे क्षणाच्छलभता यान्ति स्म सर्वेऽपि ते।।[3]

यहॉ प्रताप एव अग्नि मे अभेद कल्पित है, राम–पराक्रम ससूचित है।

सप्तम अक मे अयोध्या–प्रत्यावर्तन के समय किन्नर मार्ग मे राम का यशगान करता है –

---

१ महावीरचरितम् ५/४५
२ वही ६/२०
३ वही ६/५६

आपन्नवत्सल जगज्जनतैकबन्धो विद्वन्मरालकमलाकर रामचन्द्र।
जन्मादिकर्मविधुरै सुमनश्चकोरैराचम्यता तव यश शरदा सहस्रम्।।[1]

प्रस्तुत स्थल पर विद्वान् एव हसमण्डल मे, कमलाकर एव रामचन्द्र मे देवता तथा चकोर मे अभेद कल्पित है जिससे रामचन्द्र के यश की धवलता तथा निर्मलता की सफल अभिव्यक्ति हो रही है, परम्परित रूपक का सुन्दर प्रयोग है।

उत्प्रेक्षा[2]

लक्ष्मण दिव्यास्त्र–प्रभाव का वर्णन करते हैं –

झटित्येवोत्तप्तद्रुतकनकसिक्ता इव दिश
पिशगत्वात्सध्यान्तरित इव निर्भाति दिवस ।
ज्वलत्केतुव्रातस्थगितमिव दिव्यास्त्रनिचित
नभो नैरन्तर्यप्रचलिततडित्पिञ्जरमिव।।[3]

यहॉ दिव्यास्त्र–प्रभाववश दिशाये सुवर्णवत् पीतवर्ण दिखायी दे रही हैं। दिन सान्ध्यराग से युक्त तथा आकाश विद्युत्पूर्ण प्रतीत हो रहा है। यहॉ दिशाओ के द्रवीभूत सुवर्ण से सिक्त रूप से दिन की सन्ध्यान्तरित रूप से, दिव्यास्त्रव्याप्त आकाश की विद्युत् द्वारा पिञ्जरित रूप से सम्भावना की गयी है। प्रस्तुत उत्प्रेक्षा अद्भुत रस के अनुकूल है।

कुशध्वज ध्यानमात्र से शिवधनुष् उपस्थित करते हैं, राम प्रत्यञ्चाकर्षण कर उसे तोड देते हैं –

स्फूर्जद्वज्रसहस्रनिर्मितमिव प्रादुर्भवत्यग्रतो
रामस्य त्रिपुरान्तकृद्दिविषदा तेजोभिरिद्ध धनु ।
शुण्डार कलभेन यद्वदचले वत्सेन दोर्दण्डक–
स्तस्मिन्नाहित एव गर्जितगुण कृष्ट च भग्न च तत्।।[4]

प्रस्तुत स्थल पर शिवधनुष् की देदीप्यमान सहस्र वज्रो से निर्मित तथा देवताओ के तेज से युक्त धनुष् के रूप मे सम्भावना की गयी है, यहॉ उत्प्रेक्षा अद्भुत रस के अनुकूल है।

---

१ महावीरचरितम् ७/२५
२ सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्। –काव्यप्रकाश १०/९२ का पूर्वार्ध
३ महावीरचरितम् १/४३
४ वही १/५३

राम सीता से साक्षात् शक्तिरूप परशुराम की प्रशसा करते हैं –

> कल्पापायप्रणयि दधत कालरुद्रानलत्व सरब्धस्य त्रिपुरजयिनो देवदेवस्य तिग्म ।
> ब्रह्मच्छद्मा निखिलभुवनस्तोमनिर्माथयोग्यो राशीभूत पृथगिव समुत्थाय सामर्थ्यसार ।।[1]

यहाँ परशुराम की त्रिपुरविजयी भगवान् शिव के सामर्थ्य के रूप मे सम्भावना की गयी है, उत्प्रेक्षालकार का सुन्दर प्रयोग है।

परशुराम की रामविषयक प्रशसोक्ति है –

> त्रातु लोकानिव परिणत कायवानस्त्रवेद
> क्षात्रो धर्म श्रित इव तनु ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै।
> सामर्थ्यानामिव समुदय सञ्चयो वा गुणाना
> प्रादुर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माणराशि ।।[2]

यहाँ राम की मूर्तिमान् अस्त्रवेद, मूर्तिमान् क्षात्रधर्म, सामर्थ्यों के समूह, गुणो की राशि तथा पुण्यकर्मों के समूह के रूप मे सम्भावना की गयी है। उत्प्रेक्षालकार राम के असाधारण व्यक्तित्व को अभिव्यञ्जित कर रहा है।

विश्वामित्र दशरथ के कुल, पराक्रम आदि की प्रशसा करते हैं –

> साक्षात्पुण्यसमुच्छ्रया इव मनोर्वैवस्वतस्यान्वये
> राजानस्त्वदपेक्षितेन विधिना गोपायितार प्रजा ।
> ये भूता प्रथमे पवित्रचरितास्तेषामय धूर्धरो
> वीर क्षत्रियपुगवो गुणनिधि श्लाघ्यो धरित्र्या पति ।।[3]

यहाँ दशरथ की पुण्यसमूह के रूप मे सम्भावना की गयी है, अत उत्प्रेक्षा अलकार है।

श्रमणा लक्ष्मण का ध्यान दुन्दुभि के अस्थिसमूह की ओर आकृष्ट करती है –

> नाय गिरिर्यशोराशिरिव वीरस्य बालिन ।
> एष दुन्दुभिदैत्येन्द्र [illegible]स्यास्थिसञ्चय ।।[4]

---

१ महावीरचरितम् २/२५
२ वही २/४१
३ वही ४/१७
४ वही ५/३८

यहाँ अस्थिसमूह की वाली के यशो राशि के रूप मे सम्भावना की गयी है, अत उत्प्रेक्षा है।

श्रमणा वेगपूर्वक आते हुये वाली के शारीरिक कान्ति का वर्णन करती है –

बिभ्राणश्चारुचामीकरकमलमय दाम दत्त मघोना
पिगेनागेन सन्ध्याच्छुरित इव महानम्बुवाहस्तडित्वान्।
उत्पाताविद्धमूर्तेर्दधदुपरि गिरेर्गैरिकाकस्य लक्ष्मी–
मन्त सीमन्तरेखामिव वियति जवादिन्द्रसूनुस्तनोति।।[1]

प्रस्तुत स्थल पर वाली के स्वर्णमाला से युक्त पीतवर्ण शरीर की सान्ध्यरागयुक्त विद्युत्पूर्ण मेघ के रूप मे तथा उसके सौन्दर्य की अग्नि से आविद्ध स्वरूप वाले एव गैरिक से लाञ्छित पर्वत की शोभा के रूप मे सम्भावना की गयी है, अत उत्प्रेक्षा अलकार है जो अद्‌भुत रस के अनुकूल है।

सप्तम अक मे सुग्रीव कैलास एव अञ्जन पर्वत का वर्णन करता है –

कैलासाञ्जनशैलावेतौ तुल्योन्नतत्वपरिणाहौ।
चन्दनमृगमदलेप गमितौ क्षोण्या नु वक्षोजौ ।।[2]

यहाँ चन्दनतुल्य धवल कैलासपर्वत, कस्तूरीतुल्य श्यामवर्ण अञ्जनपर्वत दोनो अत्यन्त उन्नत एव विस्तीर्ण हैं – इनकी कस्तूरी एव चन्दन युक्त, अत्यन्त ऊँचे, विशाल पृथ्वी के उरोज रूप मे सम्भावना की गयी है। वर्ण एव ऊँचाई–हेतु पर्वत एव पृथ्वी-उरोज की तुलना मे सुन्दर उत्प्रेक्षा बन पडी है।

अर्थान्तरन्यास[3]

द्वितीय अक मे रावण के प्रतिकूल भाग्य से उद्विग्न माल्यवान् का कथन है –

सीताबन्दीग्रहपरिभवस्तस्य राज्ञो निरस्तो
नीत चास्मान्प्रति शिथिलतामैकमुख्य सुराणाम्।
नान्दीनादप्रभृति हि कृत मगल तैस्तदार्नी
सर्वं प्रायो भजति विकृति भिद्यमाने प्रतापे।।[4]

---

१ महावीरचरितम् ५/४४

२ वही ७/२४

३ सामान्य वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यास साधर्म्येणेतरेण वा।। –काव्यप्रकाश १०/१०६

४ महावीरचरितम् २/४

प्रस्तुत प्रसग मे अन्तिम पाद के सामान्य कथन से प्रथम तीन पादो के विशेष कथन का समर्थन हो रहा है, अत अर्थान्तरन्यास अलकार है।

वेगपूर्वक गमन के कारण क्लान्त जटायु की उक्ति है –

विस्त्रसयन्ती परिगृह्य पक्षौ जाता ममाप्युत्पतनश्रमार्ति ।
शक्तिर्हि कालस्य विभोर्जराख्या शक्त्यन्तराणा प्रतिबन्धहेतु ।।[1]

यहॉ 'वृद्धावस्था समस्त शक्तियो की प्रतिबन्धिका होती है' इस सामान्य कथन द्वारा 'उडने के कारण क्लान्त होना एव पँखो का ढीला पडना' इस विशेष तथ्य का समर्थन किया गया है, अत अर्थान्तरन्यास अलकार है।

दृष्टान्त[2]

राजा कुशध्वज का राम एव लक्ष्मण के प्रति कथन है –

नान्यत्र राघवाद्वशात्प्रसूतिरनयो समा।
दुग्धार्णवादृते जन्म चन्द्रकौस्तुभयो कुत ।।[3]

यहॉ रघुवश तथा समुद्र मे, राम, लक्ष्मण तथा चन्द्रमा, कौस्तुभ मे बिम्बप्रतिबिम्बभाव है, अत दृष्टान्त अलकार है।

अहकार–दमन के अनन्तर अत्यन्त विनम्र परशुराम के प्रति दशरथ की उक्ति है –

निसर्गत पवित्रस्य किमन्यत्पावन तव।
तीर्थोदक च वह्निश्च नान्यत शुद्धिमर्हत ।।[4]

यहॉ परशुराम तथा तीर्थजल एव अग्नि मे, परशुराम की स्वाभाविक पवित्रता शुद्धता तथा तीर्थोदक एव अग्नि की स्वाभाविक शुद्धि मे बिम्बप्रतिबिम्बभाव है। यहॉ परशुराम की स्वाभाविक शुद्धि अभिव्यञ्जित हो रही है, अत दृष्टान्त अलकार है।

---

१ महावीरचरितम् ५/४
२ दृष्टान्त पुनरेतेषा सर्वेषा प्रतिबिम्बनम्।। –काव्यप्रकाश १०/१०२ का उत्तरार्ध
३ महावीरचरितम् १/२३
४ वही ४/२७

प्रतीप[1]

षष्ठ अक मे उत्कण्ठित रावण सीता के सौन्दर्य का अवलोकन करता है –

मुख यदि किमिन्दुना यदि चलाञ्चले लोचने
किमुत्पलकदम्बकैर्यदि तरगभगी भ्रुवौ।
किमात्मभवधन्वना यदि सुसयता कुन्तला
किमम्बुवहडम्बरैर्यदि तनूरिय कि श्रिया।।[2]

यहाँ सीता के मुख नेत्र, भौंह, केशपाश, शरीर आदि उपमेयो के समक्ष प्रसिद्ध उपमानो क्रमश चन्द्रमा, नीलकमल, कामबाण, मेघसमूह, लक्ष्मी आदि की व्यर्थता का प्रतिपादन किया गया है, अत प्रतीप अलकार है। यह प्रसग श्रृगाराभास का उत्कर्ष कर रहा है।

काव्यलिग[3]

षष्ठ अक मे रामादिक के लकाक्रमण करने पर द्वाररक्षक राक्षसगण को निर्देश दिया जाता है –

दत्त द्वाराणि तूर्णं सरलतरगुरुण्यश्मसारार्गलानि
क्षिप्यन्ता शस्त्रजात तदुपरि नयत स्वान्वयाश्चावधत्त।
रुध्यध्व निर्विषासूञ्शिशुयुवतिजनान्यीवधाश्चाद्रियध्व
प्राप्त सुग्रीवमुख्यप्लवगपरिवृत सानुजो रामभद्र ।।[4]

यहाँ दरवाजो मे लोहे की कीले बन्द करना, अस्त्रो को सुसज्जित करना, बच्चो, वृद्धो स्त्रियो की रक्षा, खाद्यान्न–सचय आदि कार्यों का निर्देश दिया जाता है क्योकि उसका कारण है- सुग्रीवादिक वानरगण के साथ लक्ष्मण एव राम का आगमन। उपर्युक्त तीनो वाक्यो का हेतु है अन्तिम वाक्य, अतएव काव्यलिग अलकार है।

---

१ आक्षेप उपमानस्य प्रतीपमुपमेयता।
तस्यैव यदि वा कल्प्या तिरस्कारनिबन्धनम्।। –काव्यप्रकाश १०/१३३

२ महावीरचरितम् ६/६

३ काव्यलिग हेतोर्वाक्यपदार्थता।। –काव्यप्रकाश १०/११४ का उत्तरार्ध

४ महावीरचरितम् ६/१६

विरोध[1]

हनूमान् द्वारा लका–दहन का वृत्तान्त ज्ञात होने पर माल्यवान् की उक्ति है –

तूलदाह पुर लका दहतैव हनूमता।
अपि लकापतेस्तीव्र प्रतापो निरवाप्यत।।[2]

यहॉ दाहकता एव निरवाप्यता (बुझाना) परस्पर विरुद्ध क्रियाये हैं, अत विरोधालकार है।

अर्थापत्ति[3]

प्रथम अक मे राम की उक्ति है –

साधारण्यान्निरातक कन्यामन्योऽपि याचते।
कि पुनर्जगता जेता प्रपौत्र परमेष्ठिन ।।[4]

यहॉ कन्या की याचना सर्वसाधारण का अधिकार है तो एतद्विषयक रावण के अधिकार के सम्बन्ध मे चिन्ता नहीं करनी चाहिये, यह अर्थ प्रकारान्तर से प्रतीत हो रहा है, अत अर्थापत्ति अलकार है।

ससृष्टि[5]

षष्ठ अक मे हनूमान् द्वारा औषधियुक्त पर्वत लाने पर आनन्दित रामादिक की अवस्था का वर्णन करते हुये चित्ररथ का कथन है –

यथा चन्द्रालोक कुमुदनिवहश्चुम्बकमणि
दृषत्सारस्तत्त्वामृतमपि भवाम्भोनिधिगत ।
तथा सभाव्यैतौ हनुमदु[illegible]मरुत
झटित्युज्जम्भेते किमपि गहनो वस्तुमहिमा।।[6]

---

१ जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्विरुद्धा स्याद् गुणस्त्रिभि ।
क्रिया द्वाभ्यामपि द्रव्य द्रव्येणैवेति ते दश।। –काव्यप्रकाश १०/११०

२ महावीरचरितम् ६/५

३ कैमुत्येनार्थससिद्धि काव्यार्थापत्तिरिष्यते।
स जितस्त्वन्मुखेनेन्दु, का वार्ता सरसीरुहाम्?।। –कुवलयानन्द १२०

४ महावीरचरितम् १/३१

५ सेष्टा ससृष्टिरेतेषा भेदेन यदिह स्थिति ।। –काव्यप्रकाश १०/१३६

६ [illegible], ६/५२

यहाँ प्रथम तीन पाद मे उपमा तथा चतुर्थ पाद मे अर्थान्तरन्यास अलकार निरपेक्ष रूप से विद्यमान है, अत उपमा एव अर्थान्तरन्यास की ससृष्टि है।

चित्ररथ दिव्यौषधि–प्रभाव से चैतन्य लक्ष्मण की अवस्था का वर्णन करते हैं –

शाणोत्कीर्णो मणिरिव घनाम्भोदमुक्तो विवस्वा–
न्नि कोशोऽसिर्झटिति विगलत्कञ्चुक पन्नगेन्द्र ।
दीव्यत्युच्चैर्लघुरघुपति किनु वा स्यात्किमन्य
द्दिव्यौषध्या जयति महिमा कोऽप्यचिन्त्यानुभाव ।।[1]

प्रस्तुत स्थल पर प्रथम तीन पाद मे उपमा तथा अन्तिम पाद मे अर्थान्तरन्यास निरपेक्षतया अवस्थित है, अत उपमा एव अर्थान्तरन्यास अलकार की ससृष्टि है।

■

१ महावीरचरितम् ६/५३

अष्टम अध्याय

प्रकृति चित्रण, अतिप्राकृत तत्त्व, लोक जीवन की झाँकी

अष्टम अध्याय

प्रकृति ि-EW, अतिप्राकृत तत्त्व, लाकजीव- की झॉकी

प्रकृति चित्रण

आदिम काल से ही प्रकृति और मनुष्य का अभिन्न सम्बन्ध रहा है। मनुष्य एव प्रकृति का साहचर्य प्रख्यात एव चिरपरिचित है। प्रकृति मानव की जीवनपर्यन्त निर्वाह करने वाली सहचरी है। वह सुखदु खादिक सकल परिस्थितियो मे मनुष्य के साथ रहती है। अतएव दोनो मे परस्पर रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। कवियो ने भी हृदयगत भावो को मूर्त रूप देने के लिये प्रकृति के प्रतिबिम्बो का ही सर्वत्र आश्रय ग्रहण किया है। सस्कृत काव्यो मे प्रकृति का दो प्रकार से चित्रण किया गया है – प्रथम आलम्बन रूप मे तथा द्वितीय उद्दीपन रूप मे । प्रकृति आलम्बन के रूप मे वर्ण्य रहती है तथा उद्दीपन के रूप मे उसका मानव से सम्बद्ध प्रभाव वर्ण्य रहता है। कवि काव्य के आत्मतत्त्व रस की सम्यक् योजना हेतु अपने काव्य मे प्राकृतिक दृश्यो का उद्दीपन विभाव के रूप मे आश्रय ग्रहण करता है। प्रकृति के अनेक रूप यथा – नदी, पर्वत, वन, उपवन, सूर्योदय, चन्द्रोदय, ऋतु, मेघसमूह आदि मानव के मनोगत भावो को उद्दीप्त करने मे सक्षम हैं। सस्कृत कवियो ने कहीं प्रकृति के मञ्जुल रूप अर्थात उपवन, ऋतु, चन्द्रोदय, तपोवन आदि का सुन्दर चित्रण किया है तो कहीं अटवी, ग्रीष्म ऋतु, पर्वत आदि से सम्बद्ध भयावह एव रोमाञ्चकारी दृश्यो का उपनिबन्धन किया है। अतएव वर्ण्य विषय के आधार पर प्रकृति के दो रूप दृष्टिगोचर होते हैं – प्रथम सुकुमार रूप एव द्वितीय भीम रूप।

किसी भी कवि के प्रकृति चित्रण पर उसकी वैयक्तिक उपलब्धियो का प्रभाव अवश्यमेव रहता है। प्रथम अध्याय से ही स्पष्ट है कि भवभूति का जीवन आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं था, पाण्डित्य के अनुरूप उन्हे ख्याति प्राप्त नहीं हुयी थी। अतएव उनके प्रकृति चित्र अत्यन्त रुक्ष, कठोर एव

गाम्भीर्य से ओत–प्रोत हैं, वे निश्चित रूप से उनके व्यक्तिगत सघर्ष, स्वानुभूत कष्ट एव गम्भीर जीवन के ससूचक हैं।

कवि ने आरम्भिक घटनाओ के कार्यस्थल के रूप मे विश्वामित्र के सिद्धाश्रम का चयन किया है, यह वृक्षादिको से हरा–भरा मनोहारी स्थल है – दृश्यते हरितपरिसरारण्यरमणीय कौशिकी–परिक्षिप्तमायतनमृषेस्तस्य सिद्धाश्रमपद नाम।[1]

राम एव लक्ष्मण के माहात्म्य–प्रकाशन हेतु कवि ने चन्द्रमा एव कौस्तुभ को ग्रहण किया है–

नान्यत्र राघवाद्वशात्प्रसूतिरनयो समा।
दुग्धार्णवादृते जन्म चन्द्रकौस्तुभयो कुत ।।[2]

ताटका की उपमा उत्पातवात से दी गयी है – 'उत्पातपातावलिरिव सा हताशा महानुभावमभिद्रवति'।[3] ताटका तालवृक्ष के समान ऊँची है – 'उत्तालताटकोत्पात '।[4]

दिव्यास्त्रो के आगमन से दिशाये द्रुतसुवर्ण से सिक्त की भॉति पीली पड गयी हैं, दिन सान्ध्यराग से युक्त अतएव पीतवर्ण का प्रतीत होता है, आकाश अनवरत विद्युत्पूर्ण दृष्टिगोचर होता है –

झटित्येवोत्तप्तद्रुतकनकसिक्ता इव दिश
पिशगत्वात्सध्यान्तरित इव निर्भाति दिवस।
ज्वलत्केतुव्रातस्थगितमिव दिव्यास्त्रनिचित
नभो नैरन्तर्यप्रज्वलितविद्युत्पातैः ।।[5]

कवि ने अपने पात्रो के रूप, स्वभाव एव विभिन्न अवस्थाओ का चित्रण करने के लिये प्रकृति को उपमान के रूप मे प्रयुक्त किया है। राम परशुराम के सम्मुख जाना चाहते हैं, सीता उन्हे रोकने के लिये मराली की गति के समान चलती हैं – 'प्रेक्षस्व तावत्त्वराविश्रृखलमरालवधूद्भ्रान्तगमना भर्तृदारिकाम्'।[6]

---

१ महावीरचरितम् १/१२–१३
२ वही १/२३
३ वही १/३८–३६
४ वही १/३७ का प्रथमार्ध
५ वही १/४३
६ वही २/२०–२१

उस समय राम उन्हे धैर्य बँधाते हैं तथा सीता के अगो की उपमा मधूक पुष्प एव स्तनो की कलियो से देते हैं –

> आतकश्रमसाध्वसव्यतिकरोत्कम्प कथ सह्यता–
> मगैर्मुग्धमधूकपुष्परुचिभिर्लावण्यसारैरयम्।
> उन्नद्धस्तनयुग्मकुड्मलगुरुश्वासावभुग्नस्य ते
> मध्यस्य [illegible]षो भग प्रिये मा च भूत्।।[1]

उनके लिये सीता का आलिगन हरिचन्दन एव चन्द्रमा के समान शीतल है –

> वैदेहीपरिरम्भ एष च मुहुश्चैतन्यमामीलय–
> न्नानन्दी हरिचन्दनेन्दुशिशिरस्निग्धोरुणद्ध्यन्यत ।[2]

परशुराम के गम्भीर वचन पुष्करावर्तक मेघ की ध्वनि के समान हैं – तस्यानराल–साहसप्रचण्डकर्मण पुष्करावर्तकस्तनितमासलो वाड्निर्घोष कर्णविवरमाप्याययति।[3] शतानन्द के ब्रह्मतेज की ओजस्विता व्यजन से प्रज्वलित एव दधिघृत धारा से समिद्ध अग्नि के समान है – प्रसाद्यतामय धवित्रनिर्धूत इवाभिप्रणीत पृषदाज्याभिघारघोरस्तनूनपात्समिध्यमानदारुणब्रह्मवर्चसज्योतिरागिरस ।[4]

धनुष् नि सृत शब्द मेघसदृश है – उद्गारिघोरघनघर्घरघोषमेतत्।[5] वायु से परिपूरित पाताल अकालप्रलय– रात्रि की भॉति शब्दायमान है – ध्वानोच्चण्डमकाण्डकालरजनीपर्जन्यवद् गर्जति।[6]

परशुराम के क्रोध की उपमा वडवानल से दी गयी है –

> स्फूर्जत्येव स एष सप्रति मम न्यक्कारभिन्नस्थिते ।
> कल्पापायमरुत्प्रकीर्णपयस सिन्धोरिवौर्वानल ।।[7]

राम का क्रोध समुद्र अथवा मेघ के समान है –

---

१ महावीरचरितम् २/२१
२ वही २/२२ का उत्तरार्ध
३ वही २/२१–२२
४ वही ३/२०–२१
५ वही ३/२६
६ वही ५/२ का उत्तरार्ध
७ वही ३/४०

उद्धूमावलिरम्भसामिव निधिर्मध्यज्वलद्वाडवो
विद्युद्व्यञ्जितवज्रगर्भजलदच्छाया समालम्बते।।[1]

वाली के पीतवर्ण वाले शरीर की उपमा सन्ध्यारागयुक्त विद्युत्पूर्ण मेघ, गैरिक धातु से सुशोभित पर्वत से दी गयी है –

बिभ्राणश्चारुचामीकरकमलमय दाम दत्त मघोना
पिगेनागेन सन्ध्याच्छुरित इव महानम्बुवाहस्तडित्वान्।
उत्पाताविद्धमूर्तेर्दधदुपरि गिरेर्गैरिकाकस्य लक्ष्मी–
मन्त सीमन्त रेखामिव वियति जवादिन्द्रसूनुस्तनोति।।[2]

कवि ने श्रृगाराभास की व्यञ्जना मे प्रकृति–प्रदत्त उपमानो को सर्वथा तिरस्कृत बना दिया है, रावण सीता को देखकर कहता है – इसके मुख के समक्ष चन्द्रमा व्यर्थ है, चञ्चल नेत्रप्रान्तो के आगे नीलकमल क्या ? भौहो के रहते कामबाण तथा केशपाश के आगे मेघसमूह प्रयोजनहीन हैं, शरीर के सम्मुख लक्ष्मी व्यर्थ हैं –

मुख यदि किमिन्दुना यदि चलाञ्चले लोचने
किमुत्पलकदम्बकैर्यदि तरगभगी भ्रुवौ।
किमात्मभवधन्वना यदि सुसयता कुन्तला
किम्बुवहडम्बरैर्यदि तनूरिय कि श्रिया।।[3]

रावण की अविनम्रता की तुलना एक वृक्ष से दी गयी है जिसमे सीता की प्रार्थना बीज है, शूर्पणखा का राम एव लक्ष्मण की वञ्चना हेतु गमन अकुर है, मारीचकृत माया नूतन किसलय, सीताहरण शाखा, अक्षकुमार का वध एव विभीषणमैत्री कलियॉ हैं –

बीज यस्य विदेहराजतनयायाच्ञाकुरोऽपि स्वसु–
र्यात्रा तौ परिवञ्चितु किसलय मारीचमायाविधि।
शाखाजालमयोनिजापहरण तस्य स्फुट कोरका
कीशाधीशवधोऽनुजस्य गमन सख्य तयोस्तेन च।।[4]

---

१ महावीरचरितम् ५/२१
२ वही ५/४४
३ वही ६/६
४ वही ६/१

वानर समुद्र जल को नारियल के जल के समान पान कर सकते हैं, पर्वतो को गूलर फल के समान फॉद सकते हैं, निवास—वृक्ष की भॉति सकल ब्रह्माण्ड को तोड—मरोड सकते हैं –

अम्भोधेर्नारिकेलीरसमिव चुलकैरुद्विलुम्पन्त्यपो ये
येषामुत्क्षेपहेल शिखरिषु लिकुचोदुम्बरप्राय एव।
ब्रह्मस्तम्ब निवासद्रुममिव रसभाद्विप्रकर्तुं क्षमा ये
तेषा कोट्योऽप्यसख्या सुतममरपतेर्वानराणा नमन्ति।।[1]

दुन्दुभि नामक दैत्य के अस्थिसमूह की कान्ति शरत्कालीन मेघ के समान शुभ्र है –

तत्ककालमकालपाण्डुरघनप्रस्पर्धि रुन्धन्नभ ।[2]

अगद राक्षस समुदाय की तुलना वन तथा राम की दावानल से करता है –

दृप्यद्राक्षसचक्रकाननमहादावानलस्याज्ञया।[3]

राम सीता—विरह से कातर हो रहे थे, उन्हे हनूमान् से सीता का अनुसूया नामाकित उत्तरीयवस्त्र प्राप्त होता है। उस समय वह उत्तरीय नेत्रो के लिये चन्द्रमा के प्रकाशतुल्य आनन्ददायी, शरीर के लिये कर्पूरचूर्ण के समान शीतल एव मन को अमृतकलश से सिञ्चित चेतनादायक प्रतीत होता है –

दृशो शरच्छीतकरप्रकाश कायेऽपि कर्पूरपरागपूर ।
स्वान्तेऽपि सान्द्रामृतकुम्भसेकस्तदा यदासीत्किल दृष्टमात्रम्।।[4]

राम को कमलनालतुल्य भरत के शरीर का परिरम्भण ब्रह्मानन्द के समान सुखप्रद प्रतीत होता है –

अनुभावयति ब्रह्मानन्दसाक्षात्क्रियामिव।
स्पर्शस्तेऽद्य वराम्भोजप्रस्फुरन्नालकर्कश ।।[5]

---

१ महावीरचरितम् ५/३२
२ वही ५/३६ का उत्तरार्ध
३ वही ६/२०
४ वही ७/१७
५ वही ७/३१

राम वसिष्ठ का दर्शन कर द्रवीभूत हो जाते हैं जैसे पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखकर चन्द्रकान्तमणि द्रवित होती है –

> यद्दर्श[illegible] द्रवीभवति मे मन ।
> राकासुधाकारलोकादिन्दुकान्तोपलो यया।।[1]

दिव्यौषधि के प्रभाव से लक्ष्मण के प्रफुल्लित होने की उपमा सान पर चढाये गये मणि मेघयुक्त सूर्य, त्वचायुक्त सर्प आदि से दी गयी है –

> शाणोत्कीर्णो मणिरिव घनाम्भोदमुक्तो विवस्वा–
> न्नि कोशोऽसिर्झटिति विगलत्कञ्चुक पन्नगेन्द्र ।
> दीव्यत्युच्चैर्लघुरघुपति कि नु वा स्यात्किमन्य
> द्दिव्यौषध्या जयति महिमा कोऽप्यचिन्त्यानुभाव ।।[2]

पञ्चम एव सप्तम अक मे कवि ने विस्तारपूर्वक प्रकृति का चित्रण किया है।

प्रस्रवण पर्वत वन के मध्य भाग मे स्थित है, समीप मे गोदावरी नदी प्रवाहित होती है। इसकी कन्दराये आसन्नवर्ती वृक्षो की छाया से हरी–भरी हैं, गोदावरी नदी के अनवरत प्रवाहित जल से मुखरित रहती हैं, यहॉ आकाश मे श्याम वर्ण वाले मेघ छाये रहते हैं – अयमविरलानो–कहनिवहनिरन्तरस्निग्धनील[illegible]दर सततमभिष्यन्दमानमेघमेदुरितनीलिमा जनस्थानमध्यगोगिरि प्रस्त्रवणो नाम।[3]

गोदावरी नदी के समीप ही पञ्चवटी है। पञ्चवटी के आगे वन के पश्चिम भाग मे कुञ्जरवान् नामक स्थल है। यहॉ भयाक्रान्त नाना प्रकार के मृग हैं, कहीं उन्मत्त बाघ हैं, दुर्गम कन्दराये हैं, यह स्थान अत्यन्त भयावह प्रतीत होता है, यहीं दण्डकारण्य भाग मे कबन्ध निवास करता है – '[illegible]न्तविविधमृगयूथान्युन्मत्तश्वापदकुलाक्रान्तविकटगिरिगह्वराण्यरण्यानि दक्षिणा दिशमभि प्रवर्तन्ते', 'यथा चेमान्यग्रत प्रतिभय जनयन्त्यरण्यानि तथा नूनमयमसौ जनस्थानपश्चिम कुञ्जरवान्नाम दनुकबन्धाधिष्ठितो दण्डकारण्यभाग'।[4]

---

१ [illegible] ७/३४
२ वही ६/५३
३ वही ५/१५–१६
४ वही ५/२६–२७

ऋष्यमूकपर्वत का पम्पासरोवरप्रान्त कोलाहल से दूर, गम्भीर, रमणीक स्थल है — प्रशान्तगम्भीरनीलविपुलश्रीररण्यगिरिभूमि प्रसज्यते। ऋष्यमूकपम्पापर्यन्तभूमय खल्वेता ।[1]

इसके आगे मतग मुनि का आश्रम स्थित है। सम्प्रति निर्जन है, तथापि वहॉ यज्ञाग्नि प्रज्वलित है, समीप मे सोमपात्र, चमस आदि रखे हुए हैं, कुश बिछा हुआ है, घृत की गन्ध चतुर्दिक व्याप्त है — 'तथा चाग्रतो मतगाश्रमपदम्। यत्र चिरशून्येऽपि सनिहितसोमचमसादिविविधपात्रपरिकर– आस्तीर्णबहिरिध्मवानाज्यगन्धिरद्यापि भगवान्वैश्वानर समिध्यते ।[2]

यहॉ झरने बह रहे हैं, इनके तटवर्ती वेतस वृक्ष मदमस्त पक्षीगणो से आक्रान्त होकर पुष्प गिरा रहे हैं, जिनसे उनका स्वच्छ जल सुवासित हो रहा है। साथ ही जम्बू वन के परिपक्व फलो के गिरने से झरनो का जल अनवरत शब्दायमान हो रहा है —

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरमुक्तप्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्जस्खलनमुखरभूरिस्रोतसा निर्झरिण्य ।।[3]

युवा भालुओ की गुर्राहट प्रतिध्वनित हो रही है, अतएव भयावह प्रतीत होती है। हाथियो ने सल्लकी वृक्षो का भक्षण करके छोड दिया है जिनसे शीतल एव कषाय रस से परिपूर्ण गन्ध फैल रही है —

दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूनामनुरसितगुरूणि स्त्यानमम्बूकृतानि।
शिशिरकटुकषाय स्त्यायते सल्लकीनामभिदलितविशीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्ध ।।[4]

यहॉ कदम्ब वन के पुष्प पूर्व दिशा से आने वाली वायु से विकसित होते हैं — ' प्रवृत्त–पौरस्त्[illegible]नि काननानि '।[5] कदम्ब विकसित होने की ओर अग्रसर हैं, मधुर कलरव कर रहे नीलकण्ठ नृत्य कर रहे हैं, विकसित एव प्रौढ तमाल वृक्ष की भॉति श्यामल कान्ति वाले नूतन मेघ पर्वत के शिखर पर आ रहे हैं–

---

१ महावीरचरितम् ५/३६–४०
२ वही ५/३६–४०
३ वही ५/४०
४ वही ५/४१
५ वही ५/४१–४२

स्थितमुपनतजृम्भारम्भबिम्बै कदम्बै कृतमतिकलकण्ठैस्ताण्डव नीलकण्ठै ।
अपि च विघटमानप्रौढतापिच्छनील श्रयति शिखरमद्रेर्नूतनस्तोयवाह ।[1]

क्रुद्ध वाली मेघ की भॉति गर्जना कर रहा है, उसका मुख गुञ्जाफल के सदृश आरक्त है विवृत होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि उसमे दिङ्मण्डल प्रविष्ट हो रहा है, वेगपूर्वक पुच्छचालन से विद्युत् का भ्रम हो जाता है, पूँछ पताका–सी दृष्टिगोचर होती है, आकाश प्रकम्पित–सा है –

गर्जत्पर्जन्यघोरस्तनितमविरत तिग्मगम्भीरमन्त–
र्गुञ्जन्गुञ्जाभजृम्भाविवृतमुखविशद्विश्वदिक्चक्रवाल ।
सरम्भोत्तम्भतुगस्थितविततडित्पिगलागूलकेतु-
र्व्यस्त विस्तार्य दर्पादपिहितगगनोत्सगमग धुनोति ।।[2]

षष्ठ अक मे युद्ध–वर्णन है, तथापि कवि ने प्रकारान्तर से प्राकृतिक उपमानो का यथावसर सुन्दर प्रयोग किया है।

राक्षसो का निर्घोष प्रलयकाल मे सप्तसागर की उर्मियो के परस्पर सम्मिलन से उत्पन्न अत्यन्त तीक्ष्ण शब्द की भॉति है –

सवर्तप्रकटविवर्तसप्तपाथोनाथोर्मिव्यतिकरविभ्रमप्रचण्ड तेषाम्।
निर्घोष स्फुरति भृश परसहस्रव्यावल्गत्प्रबलगतागतास्रपाणाम्।।[3]

कुलपर्वत जलमय वायु के प्रवाहित होने पर भी प्रकम्पित नहीं होते, गम्भीर तथा असीम जलराशि से परिपूर्ण सागर अपनी सीमा का अतिक्रमण नहीं करते –

न कम्पते झझामरुति किल वाति प्रतिदिश
समुन्मूर्च्छत्सारा कुलशिखरिण किञ्चिदपि ते।
न मर्यादा तेऽपि प्रतिजहति गाम्भीर्यगरिम–
स्फुरद्वार्ब्रह्माणोऽकलितमहिमानोऽम्बुनिधय ।।[4]

---

१ महावीरचरितम् ५/४२
२ वही ५/५३
३ वही ६/२६
४ वही ६/३६

लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर हनूमान् एक ही क्षण मे पर्वत लेकर आते हैं, उस समय का दृश्य अत्यन्त रोमाञ्चकारी है, प्रलयकाल के समान धूलराशि गिर रही है, टेढी पूँछ से टकरा जाने के कारण नक्षत्र समूह विचलित–सा हो गया है –

उत्स्फूर्जद्रोमकूप प्रलयपरिमिलत्पाशुवर्षानुकारी
किंचिद्भुग्नाग्रपुच्छाप्रतिमविचलनापास्तनक्षत्रचक्र ।
भूम्नौत्सुक्यानुरूपव्यवसितिरधिक पर्यवप्लुत्य गत्वा
क्वापि प्राज्ञ क्षणार्धात्कमपि गिरिमसावाहरन्नाजगाम।।[1]

लक्ष्मण दिव्यौषधि के प्रभाव से वैसे ही प्रफुल्लित होते हैं जिस प्रकार चन्द्रकिरणो से कुमुदपुष्प एव चुम्बक के प्रभाव से लोहा तथा अध्यात्म ज्ञान से भाराकुल जन –

यथा चन्द्रालोक कुमुदनिवहश्चुम्बकमणि दृषत्सारस्तत्त्वामृतमपि भवाम्भोनिधिगत ।
तथा सभाव्यैतौ हनुमदुपनीताद्रिमरुत झटित्युज्जम्भेते किमपि गहनो वस्तुमहिमा।।[2]

वानर तथा राक्षस सेनाओ के बीच वही अन्तर है, जो प्रातकालीन सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाश मे रहता है – 'तावदन्तरमतयोर्बलयोरधिगम्यमान प्रातसध्याया यावदन्धतमसारुणालोकयो'।[3] अयोध्या–प्रत्यावर्तन के समय कवि ने अत्यन्त विस्तारपूर्वक प्राकृतिक दृश्यो का उपनिबन्धन किया है, यद्यपि यह कथान्विति की दृष्टि से अनुपयुक्त है, तथापि कवि ने सप्तम अक मे प्रकृति–चित्रण के माध्यम से राम एव सीता के मनोभावो एव अन्तप्रकृति का सुन्दर प्रकाशन किया है। राम धीरोदात्त नायक हैं, अत कवि ने नायकनिष्ठ गुणो का सम्यक् निर्वाह करते हुए राम के गाम्भीर्यपूर्ण वचनो एव लक्ष्मण के वक्तव्यो का आश्रय ग्रहण किया है।

राम सीता को भगवान् शिव के अष्टविधतनु मे प्रथम तनु जलमय सागर का परिचय देते हैं–

साक्षात्किलाष्टमूर्तेस्तस्यैषा मूर्तिरम्मयी प्रथमा।
गीत सागर इति नृभिरपरिच्छेद्यात्मगाम्भीर्य ।।[4]

---

१ महावीरचरितम् ६/५१
२ वही ६/५२
३ वही ६/५४–५५
४ वही ७/६

इसके मध्य मे, वानरो द्वारा सुदूर प्रान्तो से लाये गये प्रस्तरखण्डो से निर्मित सेतु की उज्ज्वलता यशरूप मे वर्तमान है – एतस्य मध्येऽपि किमेतद् दूरप्रसारित धवलाशुकमिवा–भिनवतृणाच्छन्नासु भूमिषु दृश्यते ?[1]

राम परस्पर सटे हुए तमाल वृक्षो की छाया से शीतल निकुञ्जो तथा मलयाचल के शिखर से अनवरत गिरने वाले झरनो के प्रवाह से युक्त स्थल की ओर लक्ष्मण का ध्यान आकृष्ट करते हैं –

एता भुव परिचिनोषि मिलत्तमालच्छायान्धकारिततुषारनिकुञ्जपुञ्जा ।
उन्मूर्च्छदच्छमलयाचलतुङ्गश्रृङ्गप्राग्भारनिष्पतितनिर्झरपूरभाज ।।[2]

लक्ष्मण इसके निकट ही जीर्ण कन्दरा दिखाते हैं, जहाँ बास की झुरमुट मे राम और लक्ष्मण ने रात्रि व्यतीत की थी, उस समय दिशाये मेघ के गर्जन से फट रही थीं विद्युत् के निनाद से आकाश विदीर्ण हो रहा था, वायु के साथ मेघ यत्र–तत्र घूम रहे थे, पेडो की छाया के कारण कुछ भी दृष्टिगत नहीं हो पा रहा था- आर्य ! ता एवैता ।

गर्जाजर्जरितासु दिक्षु बधिरे तत्स्फूर्जथुस्फूर्जितै–
र्व्योम्नि भ्राम्यति दुष्प्रभञ्जनजवादभ्रेऽप्यदभ्रे मुहु ।
आक्षिप्यान्धयति द्रुमान्धतमसे चक्षु प्रविश्य क्षपा
यत्रासीत्क्षपिता क्षरज्जलधरे त्वक्सारलक्षीकृते ।।[3]

इसके आगे कावेरी नदी के तट की निकटवर्ती भूमि है, जहाँ ताम्बूली लता से नि सृत मकरन्द धारा से सिञ्चित, सुपारी के वृक्ष फैले हुए हैं – देव रामभद्र ! दृश्यन्ते किलैता कावेरी तीरभूमय ?

यत्पर्यन्तमहीध्रसीम्नि कुहलीमाध्वीकधारोद्गिरद्–
धृष्यत्पूगवनीघनीकृततलैस्तुगैर्जरच्छाखिभि ।[4]

विभीषण पम्पासरोवर प्रान्त की ओर सकेत करते हैं, जहाँ एक ही बाण से विद्ध पुराना तालवृक्ष है – देव रामभद्र ! एतास्ता पम्पापर्यन्तभूमय

---

१ महावीरचरितम् ७/६–१०
२ वही ७/११
३ वही ७/१२
४ वही ७/१३ का पूर्वार्ध

बाणेनैकेन विद्ध विलसति पुरतस्तज्जरत्तालखण्ड ।[१]

एतदनन्तर उनका विमान अत्यन्त ऊँची चोटी वाले सह्य पर्वत को पार कर आर्यावर्त मे प्रविष्ट होता है – देव ! अत्युच्चै किलाय सह्य सानुमान्। एनमतिक्रम्य गम्यते किलार्यावर्त ।[२] एतदनन्तर वे मध्यम लोक की ओर अग्रसर होते हैं। सीता वहॉ दिन मे भी नक्षत्रमण्डल देखकर आश्चर्यान्वित हो जाती हैं – 'अहो ! कथ दिनेऽपि तारकाचक्रमिवैतद् दृश्यते'।[३] इन तारो को सूर्य की तीक्ष्ण रश्मियो के कारण पृथ्वीतल से दिन मे देखना सम्भव नहीं है – 'अतिविप्रकर्षाद्रविकिरण–प्रतिहतचक्षुर्भिर्न दृश्यते किल दिवसे'।[४] सीता को वे तारे आकाशरूपी वाटिका मे खिले हुए पुष्प प्रतीत होते हैं – 'कथ गगनवाटिकाया फुल्लानि कुसुमानीव दृश्यन्ते'।[५]

तत्पश्चात् वे उदयाचल और अस्ताचल की ओर बढते हैं –

उदयास्ताचलावेतौ यत्क्रोडे बाल्यवार्धके।
विस्रम्भाच्चन्द्रसूर्याभ्यामतीयेते विनिर्भयम्।।[६]

कैलास तथा अञ्जन पर्वत अतीव उन्नत एव विशाल हैं जो कस्तूरी एव चन्दन से लिप्त पृथ्वी के स्तन के समान प्रतीत होते हैं –

कैलासाञ्जनशैलावेतौ तुल्योन्नतत्वपरिणाहौ।
चन्दनमृगमदलेप गमितौ क्षोण्या नु वक्षोजौ।।[७]

यहीं काञ्चनाचल तथा आकाश को स्पर्श करते शिखरो वाला गन्धमादन पर्वत है, इसके बाद की भूमि अगम्य है – 'इतश्चाय काञ्चनाचल। परतश्चायमभ्रकषशिरा शिखरी गन्धमादन। तत परस्मादगम्या मादृशा भूमय'।[८]

---

१ महावीरचरितम् ७/१६ का प्रथमार्ध
२ वही ७/२०–२१
३ वही ७/२१–२२
४ वही
५ वही
६ वही ७/२३
७ वही ७/२४
८ वही ७/२४–२५

विभीषण हिमालय पर्वत के शिखर दिखाते हैं, जहॉ गगा निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं, ये शिखर कर्पूर की भॉति उज्ज्वल हैं, यहॉ पुराने भूर्ज वल्कल हैं –

एते ते सुरसिन्धुधौतदृषद कर्पूरखण्डोज्ज्वला
पादा जर्जरभूर्जवल्कलभृतो गौरीगुरो पावना ।[1]

उपर्युक्त वर्णनो से स्पष्ट है कि प्रकृत नाटक मे प्रकृति चित्रण के अवसर अत्यल्प थे तथापि कवि ने स्थान–स्थान पर प्रकृति से सम्बद्ध उपमानो का प्रयोग किया है जो नाटकीय घटनाक्रम मे विघ्न नहीं डालते, अपितु उत्कर्ष लाते हैं। पात्रो के हृदयगत भावो को अत्यन्त सूक्ष्मता से व्यक्त कर देते हैं।

अतिप्राकृत तत्त्व

कवि भवभूति ने प्रकृत रूपक से सम्बद्ध इतिवृत्त एव पात्रो को उपनिबद्ध करते समय अतिप्राकृत तत्त्वो का प्रचुरता से प्रयोग किया है। रामकथा स्वयमेव पौराणिक पृष्ठभूमि लिये हुए अतिप्राकृत घटनाओ से सुसज्जित है, कवि ने उसमे मौलिक उद्भावनाओ का पुट देकर अतिप्राकृत तत्त्वो का यथेच्छ प्रयोग किया है। यदि इतिवृत्त का स्वरूप, देश–काल एव परिवेश प्राचीन हो तो कवि अपनी कल्पनाशक्ति द्वारा अवास्तविक एव असम्भव को भी सम्भाव्य रूप मे प्रस्तुत कर देता है। अतिप्राकृत कल्पनाये धर्म, दर्शन, पौराणिक आख्यान से सम्बद्ध होती हैं अथवा लोककथाओ से, जिनके पात्र व घटनाये मानव की असीम कल्पनाओ की प्रस्तुति हैं।

भवभूति ने प्रकृत रूपक की प्रस्तावना मे स्पष्ट रूप से कहा है कि इसमे अप्राकृत पात्रो मे स्थित वीर रस अवान्तर सूक्ष्म एव प्रस्फुट भेदो मे व्यक्त हुआ है –

अप्राकृतेषु पात्रेषु यत्र वीर स्थितो रस ।
भेदै सूक्ष्मैरभिव्यक्तै प्रत्याधार विभज्यते ।।[2]

कवि की विशेष अभिरुचि वीर एव अद्भुत रस मे है, अतएव उन्होने रघुनन्दन के चरित को नाटक की विषयवस्तु के रूप मे ग्रहण किया है। इसमे वीरता, साहस आदि का अद्भुत वर्णन किया गया है –

---

१ महावीरचरितम् ७/२७
२ वही १/३

तेनेदमुदधृयजगत्त्रयमन्युमूलमस्तोकवीरगुरुसाहसमद्‌भुत च।
वीराद्‌भुतप्रियतया रघुनन्दनस्य धर्मद्रुहो दमयितुश्चरित निबद्धम्।।[1]

सस्कृत नाटको मे अद्‌भुत रस प्राय अतिप्राकृत वर्णनो पर अवलम्बित होते हैं। प्रकृत रूपक मे सर्वत्र अद्‌भुत रस का प्रयोग हुआ है तथा अनेक पात्र किसी न किसी दृष्टि से अप्राकृत है। कवि ने मूल रामकथा के अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाक्रमो को देश, काल एव नाट्यसक्षेप की दृष्टि से सर्वथा नये रूप मे प्रस्तुत किया है तथा कथा एव पात्रो की प्रकृति के अनुसार कतिपय नयी अतिप्राकृत कल्पनाये भी की हैं।

प्रथम अक मे महर्षि विश्वामित्र के सिद्धाश्रम मे यज्ञावसर पर राजा जनक के अनुज कुशध्वज सीता और उर्मिला के साथ आते हैं। राम और लक्ष्मण भी वहीं यज्ञरक्षार्थ उपस्थित होते हैं। तदनन्तर राक्षसराज रावण का दूत सर्वमाय रावण का सीतापरिणय विषयक प्रस्ताव लेकर आता है। इसी सन्दर्भ मे कवि ने रामचरित से सम्बद्ध अतिप्राकृत प्रसगो को उपनिबद्ध किया है –

अहल्योद्धार

महर्षि गौतम की पत्नी एव शतानन्द की माता अहल्या पर इन्द्र आसक्त थे। ऋषि के शापवशात् अहल्या, जो अन्धतामिस्त्र से ग्रस्त थी, वह राम के तेज से पापमुक्त हो प्रकट होती हैं – 'तस्या पाप्मना शरीरमन्धतामिस्त्रमभ्ययात्। सेयमद्य रामभद्र तेजसा तस्मादेनसो निरमुच्यत'।[2]

ताटका–वध

भीषणाकृति ताटका ब्राह्मण–समुदाय को आतकित करती हुयी अत्यन्त वेगपूर्वक आती है। राम उसे देखकर प्रकम्पित नहीं होते तथा विश्वामित्र की आज्ञा से उसका वध करते हैं –

कन्ये	तात ! भीषणा हतासा।
राजा	मा भैष्टमायुष्मत्यौ।
विश्वामित्र	(राम चिबुकप्रदेशे स्पृशन्) हन्यतामियम्।[3]

---

१ महावीरचरितम् १/६
२ वही १/२६–२७
३ वही १/३६–३७

अपि च

सीता अहो ! परागत एव। हा धिक् हा धिक्। उत्पातपातावलिरिव सा हताशा महानुभावमभिद्रवति।

राजा (धनुरास्फाल्य) आ पापे ! तिष्ठ तिष्ठ।

अपि च

लक्ष्मण (विहस्य) पश्यन्तु भवन्तस्ताटकाम्।[1]

हृन्मर्मभेदिपतदुत्कटकङ्कपत्त्रसवेगतत्क्षणकृतस्फुटदगभगा।
नासाकुटीरकुहरद्वयतुल्यनिर्यदुद्बुद्बुदध्वनदसृक्प्रसरा मृतैव।।[2]

दिव्यास्त्र–दान

महर्षि विश्वामित्र ने ऋषि कृशाश्व से जृम्भक प्रभृति दिव्यास्त्रो के प्रयोग एव सहार की मन्त्रविद्या प्राप्त की थी, वे उसे राम के लिये शब्दत एव अर्थत प्रकाशित होने की आज्ञा देते हैं।[3] एतदनन्तर आकाश दिव्यास्त्रो के असाधारण तेज से विद्युत्पूर्ण–सा प्रतीत होता है।[4] राम विश्वामित्र से निवेदन करते हैं कि दिव्यास्त्र लक्ष्मण को भी प्राप्त हो। दिव्यास्त्र के प्रभाव से लक्ष्मण की प्रज्ञा उन्मीलित–सी हो जाती है, वे असीम शक्ति का अनुभव करते हैं – अहो प्रसाद !

झटित्युन्मीलितप्रज्ञमप्रतर्क्यं च शक्तिभि ।
ज्योतिर्मयमिवात्मान मन्ये विद्याप्रकाशनात्।।[5]

दिव्यास्त्र राम के वशवर्ती हो आदेश मॉगते हैं –

(नेपथ्ये)
राम राम ! महाबाहो ! वय त्वय्यायतामहे।
विश्वामित्राभ्यनुज्ञानात्सह भ्रात्रा प्रशाधि न ।।[6]

---

१ महावीरचरितम् १/३८–३६
२ वही १/३६
३ वही १/४१–४२
४ वही १/४३
५ वही १/४८
६ वही १/४६

सीता और उर्मिला दिव्यास्त्रो के सम्भाषण से आश्चर्यचकित रह जाती हैं – 'अहो ! देवता मन्त्रयन्ते। आश्चर्यमाश्चर्यम् ।'[1] राम दिव्यास्त्रो को ध्यान करने पर, उपस्थित होने की आज्ञा देकर, उन्हे प्रेषित कर देते हैं – भगवन्तो दिव्यास्त्रनिकाया ।

ध्यातैर्ध्यातै सनिधेय भवद्भि ।
स्व स्व स्थान यात यूय नमो व ।।[2]

ध्यान मात्र से शिवधनुष् की उपस्थिति

राम के असाधारण पराक्रम एव तेजस्विता से प्रभावित हो कुशध्वज उन्हे कन्या सीता हेतु सुयोग्य वर मानते हैं एव जामाता के रूप मे चाहते हैं, किन्तु वह अग्रज सीरध्वज जनक की शिवधनुर्भंगकर्त्ता के साथ ही सीतापरिणय विषयक प्रतिज्ञा का स्मरण कर उद्विग्न हो जाते हैं। विश्वामित्र कुशध्वज को आदेश देते हैं कि शिव के वरदान से ध्यानमात्र द्वारा धनुष् राम के समक्ष उपस्थित किया जाय। सहस्र वज्रो से निर्मित शिवधनुष् राम के समक्ष प्रकट होता है –

स्फूर्जद्वज्रसहस्रनिर्मितमिव प्रादुर्भवत्यग्रतो।
रामस्य त्रिपुरान्तकृद्दिविषदा तेजोभिरिद्ध धनु ।।[3]

सीता सशकित हैं। राम द्वारा प्रत्यञ्चा खींचते ही धनुष् अनायास टूट जाता है –

सीता (स्वगतम्) साप्रत सशयितास्मि।

राजा शुण्डार कलभेन यद्वदचले वत्सेन दोर्दण्डक–
स्तस्मिन्नाहित एव –

उर्मिला अपि नामैतद्भवेत्।

राजा – गर्जितगुण कृष्ट च –

उर्मिला दिष्ट्या वर्धामहे।

राजा (साद्भुतम्) –भग्न च तत्।।[4]

---

१ महावीरचरितम् १/४९–५०
२ वही १/५०
३ वही १/५३ का पूर्वार्ध
४ वही १/५३ का उत्तरार्ध

सुबाहु–मारीच–पराभव

सुन्दोपसुन्द के पुत्र सुबाहु तथा मारीच यज्ञ मे विघ्नस्वरूप उपस्थित होते हैं। राम अद्‌भुत पराक्रम से मारीच को तृणवत् परास्त कर देते हैं तथा सुबाहु का वध करते हैं –

विश्वामित्र – तद्वत्सौ । हन्युतामेष यज्ञप्रत्यूह ।[1]

अपि च

दूराद्दवीयो धरणीधराभ यस्ताटकेय तृणवद् व्यधूनोत्।
हन्ता सुबाहोरपि ताटकारि स राजपुत्रो हृदि बाधते माम्।।[2]

उपरिवर्णित घटनाओ के सन्दर्भ मे ध्यातव्य है कि ये समस्त अतिप्राकृत घटनाये नेपथ्य मे घटित होती हैं। अहल्या, ताटका, दिव्यास्त्र शिवधनुष् आदि रगमच पर साक्षात् उपस्थित नहीं होते हैं। कवि ने नाट्‌यशास्त्रीय नियमो का पालन करते हुये इनकी सूचना मात्र दे दी है क्योकि युद्धवधादिक दृश्यो के अभिनय का निषेध वर्णित है।

शूर्पणखा का मन्थरा के शरीर में प्रवेश

चतुर्थ अक मे उपन्यस्त इस घटना के माध्यम से कवि ने राम, सीता एव लक्ष्मण के वनगमन तथा राक्षसो से भावी युद्ध की योजना की है। माल्यवान् प्रबल शत्रु राम पर छलप्रयोग को ही उचित मानता है। एतदर्थ वह शूर्पणखा के साथ मन्त्रणा करता है और उसे आदेश देता है कि वह कैकेयी का सवाद लेकर मिथिला जाने वाली दासी मन्थरा के छद्‌मवेष मे जाकर 'राम का १४ वर्ष वनवास एव भरत के राज्याभिषेक'–सम्बन्धी मिथ्या पत्र प्रस्तुत कर दे। सम्प्रति मिथिला मे रामादिक चारो भाइयो का परिणयसस्कार सम्पन्न हुआ है, दशरथ भी वहीं हैं। राम आज्ञाकारी हैं, वह तत्क्षण लक्ष्मण एव सीता के साथ वन की ओर प्रस्थान कर देगेँ। दण्डकारण्य मे विराध प्रभृति राक्षस युद्ध करेगे, साथ ही सीताहरणवश रावण का दुराग्रह भी पूर्ण हो जायेगा।

शूर्पणखा द्वारा मन्थरा के छद्‌मवेष मे पत्र प्रस्तुत कर देने से राम सीता एव लक्ष्मण वन की ओर प्रस्थान कर देते हैं।

---

१ महावीरचरितम् १/६०–६१
२ वही २/१

दिव्य पुरुष का आविर्भाव

मतगाश्रम मे निवास करने वाली शबरतपस्विनी श्रमणा कबन्ध राक्षस से आतकित हो, रक्षार्थ पुकारती है। राम से आदिष्ट हो, लक्ष्मण उस रक्त–सिक्त, दाढी–मूँछो वाले, दीर्घबाहु कबन्ध राक्षस की चिता सजा देते हैं।

एतदनन्तर राक्षस कबन्ध श्मशानल से दिव्यपुरुष के रूप मे प्रकट होकर अपना परिचय देता है कि वह श्री नामक अप्सरा का पुत्र दनु है शापवशात् राक्षस बन गया था। इन्द्र के वज्रप्रहार से कबन्धमात्रावशिष्ट था, उसे सम्प्रति राम की कृपा से राक्षसरूप को छोडकर दिव्यशरीर प्राप्त हुआ –

> श्चित्र चित्रमुदेति कोऽप्ययमितो दिव्य श्मशानानलात्।[1]

अपि च

> दनुर्नाम श्रिय पुत्र शापाद्राक्षसता गत ।
> इन्द्रास्त्रकृतकाबन्ध्य पूतोऽस्मि भवदाश्रयात्।।[2]

कबन्ध राक्षस अपने आगमन का उद्देश्य बतलाता है कि वह माल्यवान् से प्रेरित हो, राम पर आक्रमण करने के लिये दण्डकारण्य मे विद्यमान था।

दुन्दुभि का अस्थिप्रक्षेपण

वाली से युद्ध करने के कारण, अस्थिमात्रावशिष्ट, महिषाकृति दुन्दुभि को राम पैर के अँगूठे से हिलाकर विन्ध्य से सुदूर प्रान्त मे फेक देते हैं –

> यत्सक्रन्दननन्दन कपिवृषा निर्मथ्य दो स्तम्भयो–
> र्व्यापारेण निरास्थदस्थिगिरिवद्देवद्विषो दुन्दुभे ।
> तत्कङ्कालमकालपाण्डुरघनप्रस्पर्धि रुन्धन्नभ
> पादागुष्ठविवर्तनादयमितो निर्विन्ध्यमाविध्यति।।[3]

---

१ महावीरचरितम् ५/३३ का उत्तरार्ध

२ वही ५/३४

३ वही ५/३६

वानरो द्वारा सेतुनिर्माण

षष्ठ अक मे सेतुनिर्माण का अलौकिक वर्णन मिलता है। राम समुद्र तट पर ससैन्य पडाव डालते हैं। आह्वान करने पर भी समुद्र के उपस्थित न होने पर राम अस्त्र प्रयुक्त करते हैं। फलस्वरूप पानी चक्कर मारने लगता है, जल रक्तमय हो जाता है, समुद्र मूर्च्छित–सा होने लगता है। अन्त मे सागर प्रकट होकर, शिरावनत होकर, राम को मार्ग बताता है। एतदनन्तर वानरगण समुद्र पर सेतु का निर्माण करते हैं। वानरो के पुण्यप्रभाव से पर्वत जल पर तैरते रह जाते हैं –

मन्दोदरी — महाराज ! अवधारय किमप्यन्यादृशी रचना कस्यापि वलीमुखस्य हस्तपुण्यत उपर्येव तिष्ठन्ति ते महीधरा जल इति।[1]

अधिष्ठातृ देवता लका एव अलका का वार्त्तालाप

कवि ने नाटकोचित सक्षेप को ध्यान मे रखते हुये सप्तम अक के विष्कम्भक मे, अधिष्ठातृ देवता लका एव अलका के वार्त्तालाप के माध्यम से सीता की अग्निपरिशुद्धि[2], वसु, सूर्य, इन्द्र प्रभृति देवगण द्वारा उनका अभिनन्दन[3], अप्सराओ एव दिव्यर्षियो द्वारा विभीषण का राज्याभिषेक[4] आदि वृत्तान्तो की सूचना दे दी है।

भारतीय परम्परा मे प्रत्येक स्थान एव वस्तु की अधिदेवता मान्य हैं। लका एव अलका भी अधिदेवता हैं। लका रावणादिक की मृत्यु से उद्विग्न हो विलाप करती हैं, अलका उन्हे धैर्य बॅधाती हैं तथा आश्वस्त करती हैं कि सम्प्रति कोई शत्रुपक्ष नहीं है। वस्तुत रावण ही शत्रु था, राम तो परम मित्र हैं – यस्य रिपु स गत। तच्च गतम्। सप्रति तु निरुद्धस्मा[?]क त्रिभुवनप्रसिद्धसम्बन्धो दाशरथि।[5] रावण का राम के प्रति दण्डकारण्य मे अनुचित व्यवहार ही इस समस्त घटनाक्रम का कारण है।[6] कुबेर ने गन्धर्वराज चित्ररथ से युद्ध–वृत्तान्त ज्ञात होने पर अलका को अवशिष्ट बन्धुगण को समझाने, विभीषण का राज्याभिषेक देखने एव पुष्पक विमान राम के सहायतार्थ प्रस्तुत करने के

---

१ महावीरचरितम् ६/१४–१५
२ वही ७/३
३ वही ७/३–४
४ वही ७/४–५
५ वही ७/–१
६ वही ७/१

सूक्ष्म निरीक्षण करने पर तत्कालीन लोकजीवन पर प्रकाश डाला जा सकता है।

धार्मिक–जीवन

भवभूतिकालीन धार्मिक दशा अतीव समुन्नत थी, धर्माचरण, यज्ञानुष्ठान आदि पर अत्यधिक बल दिया जाता था।

(क) तीर्थयात्रा

पुराकाल मे यात्रीगण सुदूरस्थित पवित्र तीर्थस्थलदर्शनार्थ गमन करते थे। सूत्रधार ने कालप्रियाधीश्वर–यात्रा का निर्देश किया है, जहॉ महावीरचरितम् का अभिनय हुआ था।[1]

(ख) यज्ञानुष्ठान

उस समय ब्राह्मण एव नृपवर्ग यज्ञीय अनुष्ठान करते थे। विश्वामित्र यज्ञरक्षार्थ राम तथा लक्ष्मण को लाते हैं।[2] राजा जनक ने भी यज्ञ किया था।[3] विभिन्न प्रकार के यज्ञ–सम्पादन का विधान था। विश्वामित्र लोकरक्षार्थ एव राम के विघ्ननाशार्थ यज्ञविषयक सकल्प करते हैं।[4] राजा पुत्रप्राप्त्यर्थ पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पादित करते थे।[5]

(ग) अनिष्ट–शान्ति

अनिष्टनिवारणार्थ शान्तिहोम, जैत्रसूक्त साम तथा अनुवाक का जप किया जाता था। शतानन्द, जाबालि, वामदेव प्रभृति रामकल्याणार्थ उक्त कृत्य सम्पन्न करते हैं।[6]

(घ) धर्म–रक्षा

धर्मानुकूल आचरण पर बल दिया जाता था। वनगमन के समय पौरजन, युधाजित् प्रभृति राम का अनुगमन करना चाहते हैं। राम युधाजित् से धर्मरक्षार्थ निवेदन करते हैं –

---

१ महावीरचरितम् १/१–४
२ वही १/७–८
३ वही १/६
४ वही १/१३
५ वही १/२४
६ वही ३/२३

'मातुल मातुल ! गुरुभिरेव शिशवो धर्मलोपात्पालयितव्या'।[1] धर्म के प्रतिकूल आचरण करने वाले प्रायश्चित्त करते थे[2], राजदण्ड का भी विधान था।[3] वसिष्ठ परशुराम को अहकार–दमन के अनन्तर शुद्ध मानते हैं।[4]

(ङ) आश्रम–जीवन

ऋषिगण, तपस्विनीस्त्रियॉ आश्रम मे निवास करते थे, वहॉ यज्ञाग्नि, सोम चमस प्रभृति पात्र, कुश, आज्यगन्ध आदि से वातावरण अत्यन्त मनोहारी रहता था[5], मतग मुनि का आश्रम इन तत्त्वो से युक्त था। शबरतपस्विनी श्रमणा मतगाश्रम मे निवास करती थी।[6] आश्रमप्रान्त भूमि का अतिक्रमण उचित नहीं माना जाता था। राम विश्वामित्र–आश्रम निकट आने पर विमानारूढ हो गमन करना उचित नहीं समझते हैं।[7]

(च) मन्त्र–प्रभाव

उस समय वेदमन्त्र–प्रयोग की परम्परा थी। राम तथा लक्ष्मण ब्रह्मास्त्र एव अच्युतास्त्र का स्मरण कर, बाण–सन्धान करके रावण एव मेघनाद का वध करते हैं।[8]

सामाजिक–जीवन

प्रकृत रूपक के सूक्ष्म निरीक्षण से एक स्वस्थ सामाजिक जीवन का परिदृश्य मस्तिष्क पटल पर अकित हो जाता है जहॉ – ब्राह्मण–दशा, नारी–स्थिति, विवाह–परम्परा, गुरुजन–समादर, आतिथ्य–सत्कार, सत्यनिष्ठा, अन्धविश्वास, मैत्री, पारिवारिक सम्बन्ध आदि तथ्य समाविष्ट थे, साथ ही सामाजिक विसगतियॉ भी घर कर चुकी थीं।

---

१ महावीरचरितम् ४/५७–५८
२ वही ३/८
३ वही ३/३४, ३५
४ यत प्रायश्चित्त इव राजदण्डेऽप्येनसो निष्क्रयमामनन्ति धर्माचार्या, कि पुनरत्र भगवान् वसिष्ठ प्रजापालसन्निधौ प्रशास्ति। –वही ४/२६–२७
५ वही ५/३६–४०
६ वही ५/२७–२८
७ वही ७/२७–२८
८ वही ६/६३

(क) ब्राह्मण–स्थिति

उस समय ब्राह्मण का समाज मे सर्वाधिक प्रभाव था। ब्राह्मण सत्त्वगुणसम्पन्न[1] शान्तमना[2], अहकाररहित[3] एव सत्यभाषी[4] थे। ऋषिगण तपप्रभाव से इष्टसिद्धि करते थे। महर्षि विश्वामित्र ने जृम्भकास्त्र प्रभृति के प्रयोग–उपसहार आदि का ज्ञान प्राप्त किया था।[5] ब्राह्मण शिष्टाचार के प्रणेता थे।[6] ब्रह्मवेत्ता क्षत्रिय भी ब्राह्मण कहा जाता था।[7] ब्राह्मण के लिये क्षत्रियोचित जीवनयापन, चित्तनैर्मल्यार्थ मैत्री आदि भावना का आश्रयण, ज्योतिष्मती नामक समाधिवृत्ति, ऋतम्भराप्रज्ञा द्वारा आन्तर्ज्योतिप्रकाशन, ज्ञानवर्धन आदि कृत्य ही अभीष्ट था। वसिष्ठ परशुराम को एतद्विषयक सदुपदेश देते हैं।[8] ब्राह्मण पुरोहित–कार्य पूर्णनिष्ठा के साथ करता था, वह राष्ट्ररक्षक माना जाता था। विश्वामित्र की पुरोहित शतानन्द से सम्बन्धित प्रशसोक्ति इस सन्दर्भ मे द्रष्टव्य है –

न तस्य राष्ट्र व्यथते न रिष्यति न जीर्यति।
त्व विद्वान् ब्राह्मणो यस्य राष्ट्रगोप पुरोहित ।।[9]

ब्राह्मण का वचन वेदतुल्य था। राम विश्वामित्र की आज्ञा शिरोधार्य कर ताटका का वध करते हैं।[10]

अरण्यवासी ऋषिगण लोकाचार से अनभिज्ञ थे।[11] वे नित्यदैनन्दिक अनुष्ठान हेतु स्वयप्रवृत्त रहते थे।[12]

---

१ महावीरचरितम् २/१५
२ वही ५/३४
३ वही ४/२२
४ वही ४/१६
५ वही १/४१–४२
६ वही २/२०–२१
७ वही १/११–१२, ११
८ वही ३/४–५
९ वही ३/१८
१० वही १/३८
११ वही २/५० पृ० १०२
१२ वही ४/33

उस समय ब्राह्मणो एव क्षत्रियो का साहचर्य कुटुम्बवत् था। राजा ब्राह्मण का वध नहीं करते थे। माल्यवान् शूर्पणखा से कहता है कि राम परशुराम का वध नहीं करेगे – 'ऐक्ष्वाकश्चेद्विजयमानो ब्रह्मण्यो ब्रह्मर्षिं नाभिहन्यात्'।[1] दशरथ जनक को परशुराम पर बाण–प्रयोग से विरत करते हैं – 'विरम नरपते कथ द्विजेऽस्मिन् ।[2]

(ख) अतिथि–सत्कार

ऋषियो का वेदविहित अतिथि–सत्कार किया जाता था। राजा उन्हे आसन, अर्घ्य, मधुपर्क, वत्सतरी मास तथा घीसस्कृतअन्न आदि प्रदान करते थे। इस सन्दर्भ मे राजा जनक की उक्ति द्रष्टव्य है –

ऋषिरयमतिथिश्चेद्विष्टर पाद्यमर्घ्यं तदनु च मधुपर्क कल्प्यता श्रोत्रियाय।[3]

वसिष्ठ, विश्वामित्र प्रभृति परशुराम को वत्सतरी मास, घीसस्कृतअन्न ग्रहण करने हेतु कहते हैं[4], जनक उन्हे पवित्र आसन प्रदान करते हैं।[5]

(ग) सदाचार

उस समय सदाचार पर विशेष बल दिया जाता था। ज्येष्ठ व्यक्ति द्वारा कनिष्ठ का चरणस्पर्श उचित नहीं समझा जाता था। विश्वामित्र कुशध्वज की रामचरणवन्दनाविषयक अभिलाषा का निराकरण करते हैं।[6]

(घ) गुरु–प्रेम

लोग अनुचित कार्य हेतु प्रायश्चित्त करते थे। परशुराम गुरुवचनव्यतिक्रम रूपी दोषनिवारणार्थ प्रायश्चित्त कर सकते हैं।[7] शिष्य गुरु–तिरस्कार का सम्यक् प्रतीकार करता

---

१ महावीरचरितम् २/१२–१३
२ वही ३/३० का प्रथमार्ध
३ वही २/४४ का पूर्वार्ध
४ वही ३/२
५ वही ४/२७–२८
६ वही १/५५, ५५, ५६
७ वही ३/८

था। परशुराम की शिवभक्ति अप्रतिम है।[1] शिष्य अभद्राचरणार्थ क्षमाप्रार्थी थे। राम परशुराम से क्षमायाचना करते हैं।[2] गुरु भी उदार थे, स्वदोषान्वेषण करते थे तथा शिष्य को सलज्ज होने से विरत करते थे। परशुराम अहकारदमनार्थ राम की प्रशसा करते हैं।[3] वृद्ध–वचन सर्वथा पालनीय था, परशुराम वृद्ध च्यवन प्रभृति के कहने पर हिसक कार्य से विरत होते हैं।[4]

(ङ) भ्रातृ–स्नेह

भ्रातृ जन मे परस्पर प्रेम, त्यागभावना, समागमसुख, कष्टनिवारण, रक्षा आदि भाव वर्तमान थे। राम लक्ष्मण के साथ ही दिव्यास्त्रग्रहण हेतु इच्छुक हैं[5], भरत–विरह उन्हे सह्य नहीं था[6], अयोध्या आने पर वे भरत का परिरम्भण कर ब्रह्मानन्दसदृश सुखानुभव करते हैं।[7] लक्ष्मण सीता–विरहातुर राम को धैर्य बँधाते हैं – आर्य आर्य ! न खलु लोकोत्तरकर्माण– ' स्त्वादृशा कृच्छ्रेषु प्रमुह्यन्ति[8], सम्पाति का जटायु को स्वपक्ष मे निक्षिप्त कर शरीरदाह से बचाना अनुकरणीय है।[9]

(च) मैत्री–भावना

प्राणपण से भी कल्याणप्रद कार्यान्वयन, द्वेष एव छद्मत्याग, अभीष्टसम्पादन मैत्रीधर्म था। अग्नि की प्रदक्षिणा कर मैत्रीबन्धन का विधान था, वाली रामादिक को एतद्विषयक सदुपदेश देता है, राम एव सुग्रीव अग्नि की प्रदक्षिणा कर मित्र बनते हैं।[10] मित्र योग्य हो अथवा अयोग्य, उसकी सदैव रक्षा करना परम कर्त्तव्य था। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है – वाली–रावण–मैत्री, एतदर्थ वाली प्राणोत्सर्ग करता है।[11]

---

१ महावीरचरितम् ३/६
२ वही ४/२० २१
३ वही ४/२२ २३
४ वही ३/१५
५ वही १/४७
६ वही ४/४३
७ वही ७/३१
८ वही ५/२२–२३
६ वही ५/५
१० वही ५/५६, ६०
११ वही ५/४३, ४५–४६, ५५, ५८

(छ) सत्यवादिता

लोग सत्यनिष्ठ थे। कैकेयी का पत्र लेकर समुपस्थित राम के प्रति दशरथोक्ति द्रष्टव्य है –

सत्यसन्धा हि रघव कि वत्स विचिकित्ससि।
त्वयि दूतेऽपि कस्तस्या प्राणानपि धनायति।।[1]

(ज) लोकाचार

आत्मीयजन प्रस्थित व्यक्ति का कतिपय दूरी तक अनुगमन करते थे। आबालवृद्धप्रजाजन एव युधाजित् प्रभृति वनगमन के समय रामादिक का अनुगमन करते हैं।[2]

(झ) वश–प्रतिष्ठा

वश एव परिवार का विशेष महत्त्व था, किसी भी व्यक्ति के कुकृत्य हेतु वशादिक पर आक्षेप किया जाता था। कैकेयी की रामवनवासविषयिणी दुरभिलाषा हेतु जनक इक्ष्वाकुवश एव केकयराज आदि पर व्यग्य करते हैं।[3]

(ञ) अन्धविश्वास

समाज मे अन्धविश्वास, रूढियॉ भी विद्यमान थीं। वामनेत्रस्पन्दन अनिष्टसूचक था। माल्यवान् वामनेत्रस्फुरण से उद्विग्न हो जाता है – (वामाक्षिस्पन्दन सूचयन्, सव्यथम्)।[4] माल्यवान् शूर्पणखाप्रवञ्चना, मारीचवध, सीताहरण, अक्षकुमारवध, विभीषण एव राम की मैत्री आदि से चिन्तित होकर प्रतिकूल भाग्य पर विचार करता है – अहो वामता भागधेयानाम्।[5]

---

१ महावीरचरितम् ४/४८
२ वही ४/५७
३ वही ४/४६
४ वही ६/६–७
५ वही ६/१–२

(ट) विवाह–परम्परा

कन्यापरिणयप्रस्तावप्रस्तुतार्थ दूतप्रेषण की परम्परा थी। दूत सर्वमाय जनक, विश्वामित्रादिक के समक्ष सीतापरिणयविषयिणी रावणाभिलाषा प्रस्तुत करता है।[1]

विवाह एक पवित्र सम्बन्ध है। यह स्त्री एव पुरुष के सम्बन्ध को नियन्त्रित करने हेतु लौकिक प्रथा है।[2] कुल का ज्येष्ठ व्यक्ति एव पिता कन्योद्वाह–निर्णय का अधिकारी था। विश्वामित्र सर्वमाय से उक्त तथ्य का कथन करते हैं।[3] किन्तु प्रतिष्ठित ब्राह्मण, कुलपुरोहित तथा परिवार के अन्य जन भी परस्पर विचार–विमर्श कर एतद्सम्बन्धी निर्णय कर सकते थे। विश्वामित्र एव राजा कुशध्वज रामादिक एव सीतादिक का विवाह निश्चित करते हैं।[4]

उद्वाह के पूर्व गोदान सस्कार का विधान था, तदनन्तर परिणयकार्य सम्पन्न होता था।[5] एतद्नन्तर वैवाहिक मगलसूत्रविसर्जन रूप ककणमोचनविधि नामक सस्कार किया जाता था जिसमे कन्यान्त पुर की स्त्रियॉ भी सम्मिलित होती थीं। कञ्चुकी राम को ककणमोचनार्थ अन्त पुर मे ले जाता है।[6]

उद्वाहपूर्व पूर्वानुराग को हेयदृष्टि से नहीं देखा जाता था। राम–सीता तथा लक्ष्मण–उर्मिला विश्वामित्र के सिद्धाश्रम मे ही परस्पर आकृष्ट हो जाते हैं।[7] कवि ने रामादिक का बालविवाह वर्णित किया है। सम्भवत उस समय बालविवाह की प्रथा प्रचलित थी।

---

१ महावीरचरितम् १/२८ ३० ३१

२ एर्षोदिता लोकयात्रा नित्य स्त्री पुसयो शुभा। –मनुस्मृति ६/२५

३ अत्र सीरध्वजो वेत्ता कनिष्ठो हि कुशध्वज। अस्या पिता स कन्याया कुलज्येष्ठ प्रभुश्च स।।
–महावीरचरितम् १/४१

४ वही १/५६ ५७ ५८ ५८–५६

५ वही १/५८–५६

६ वही २/५० का उत्तरार्ध

७ वही १/२१, १८–१६, २६–२७ २८–२६

विवाहावसर पर तिरस्कारपूर्ण कृत्य सम्पादित कर रसभग अनुचित माना जाता था राम परशुरामागमन की निन्दा करते हैं।[1]

(ठ) नारी–दशा

उस समय कन्या को कहीं अकेले प्रेषित नही किया जाता था स्वजन साथ मे रहते थे। विश्वामित्र के सिद्धाश्रम मे जनक यज्ञावसर पर सीता एव उर्मिला के साथ अनुज राजा कुशध्वज को भेजते हैं।[2] कन्या परार्थ समझी जाती थी, दूत सर्वमाय रावण–सदेश मे इस तथ्य का प्रकाशन करता है।[3]

स्त्री–वध पुरुषोचित नहीं था। विश्वामित्र का ताटकावधार्थ आदेश राम को प्रथमतया स्वीकार्य नहीं था।[4]

राजकुल की स्त्रियॉ अन्त पुर मे निवास करती थीं, द्वाररक्षक नियुक्त किये जाते थे। परपुरुषप्रवेश का निषेध था, इसे मर्यादातिक्रमण माना जाता था। परशुराम अव्याहत गति से कन्यान्त पुर मे प्रविष्ट होते हैं, वेत्रधारीगण उन्हे रोक नहीं पाते, राम इसे अशिष्टाचरण कहते हैं।[5]

अवगुण्ठन–प्रथा प्रचलित थी, स्त्रियॉ गुरुजन के समक्ष अवगुण्ठन करती थीं। परशुराम के कन्यान्त पुर मे प्रवेश करने पर राम सीता को एतद्विषयक निर्देश देते हैं – प्रिये ! एतेगुरव । तदपसृत्य कृतावगुण्ठना भव।[6]

कुलीन स्त्रियॉ सहधर्मचारिणी थीं। पतिरक्षार्थ सदैव तत्पर रहती थीं। परशुराम को उपस्थित देखकर, सीता राम को रोकने का अथक प्रयत्न करती हैं, धनुष् पकड लेती हैं।[7]

---

१ नोत्सवा परावधीरणावैरस्यमर्हन्ति। – महावीरचरितम् २/१८–१६

२ वही १/१३–१४

३ वही १/३०

४ वही १/३६–३७ ३७

५ वही २/२०, २०–२१

६ वही २/२६–२७

७ वही २/२१–२२

पति का अनुगमन करने वाली स्त्री भाग्यशाली मानी जाती थी। जनक वनगमनार्थ स्वीकृतिवशात् सीता को धन्य समझते हैं।[1]

स्त्रियॉ राजकार्य मे भाग लेती थीं सुदूर प्रान्त मे भी जाकर कार्यान्वयन मे सक्षम थीं। शूर्पणखा माल्यवान्–योजनान्तर्गत छद्मवेष मे मिथिला जाकर पत्र प्रस्तुत करती है, सफल भी हो जाती है।[2]

स्त्रियॉ पुरुषो से अधिक बुद्धिमती थी। उनके बुद्धिनैपुण्य का गुरुजन समादर करते थे। मन्दोदरी रावण को वस्तुतथ्य से अवगत कराती है। माल्यवान् की प्रशसोक्ति द्रष्टव्य है – 'वत्से ! स्त्रीत्वेऽपि वर सा खलु देवी मन्दोदरी यन्मति प्रतिबोधनायोत्ताम्यति'।[3]

स्त्रियो का परपुरुषगृह मे निवास शका की दृष्टि से देखा जाता था उन्हे लोकमर्यादानिर्वाहार्थ स्वशुद्धि विषयक प्रमाण देना पडता था। सीता अग्नि मे प्रविष्ट हो, अपनी शुद्धि का परिचय देती हैं।[4]

समाज मे दुराचारिणी एव व्यभिचारिणी स्त्रियॉ भी थीं, निन्दनीय समझी जाती थी। वे पति को वचनबद्ध करती थीं, जिसका दुष्परिणाम स्वजनो को भुगतना पडता था। छलपत्रप्रस्तुति के कारण राम–वनवास, दशरथ–मृत्यु आदि अप्रिय कार्य घटित होते हैं।[5] शूर्पणखा व्यभिचारिणी थी, रामासक्ति के कारण उसे अगविदीर्णन विषयक तिरस्कार सहन करना पडता है।[6]

(ड) शिक्षा–पद्धति

उस समय शिक्षा का अत्यधिक महत्त्व था। कुलगुरु राजकुमारो को वेदविहित शिक्षा प्रदान करते थे।[7] ऋषिगण उन्हे दिव्यास्त्र प्रदान करते थे।[8] राजर्षि जनक ने याज्ञवल्क्य से

---

१ महावीरचरितम् ४/५१–५२
२ वही ४/४०–४१
३ वही ६/८–६
४ वही ७/३–४
५ वही ४/५२ ५/६–७
६ वही ५/११ १२
७ वही १/२५
८ वही १/४६

वेदान्त विषयक सदुपदेश ग्रहण किया था।[1] अथर्ववेदोक्त अभिचारविधि की शिक्षा दी जाती थी।[2] अस्त्रविद्या विषयक शिक्षा प्रदान की जाती थी।[3] परशुराम ने भगवान् शकर से धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की थी।[4] पुराकाल मे, पक्षियो के मध्य सुदूर प्रान्त तक उडने की प्रतियोगिता होती थी। जटायु–सम्पाति–वृत्तान्त से यह तथ्य सुस्पष्ट है।[5] ब्रह्मज्ञानी हिमालय के पवित्र शिखर पर आध्यात्मज्ञानप्राप्ति हेतु रत रहते थे।[6] वे आश्रम मे तपस्या एव स्वाध्यायपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे।[7]

राजनीतिक–जीवन

तत्कालीन राजनीतिक–जीवन अत्यन्त समृद्ध था, लोकहितकारी था, राजा अत्यन्त उदारमना थे। राजा पद का निर्वाचन सम्भव नहीं था, आनुवशिक था। प्रजा राजपद हेतु साभिलाष थी। भरत, युधाजित् प्रभृति दशरथ से प्रजावत्सल राम को राजा बनाने का आग्रह करते हैं।[8] राजा पुत्र को अभिषिक्त कर आरण्यकव्रत ग्रहण करते थे।[9] राजपद हेतु राजा का निर्णय ही सर्वमान्य था, प्रजा रामवनवास का विरोध नहीं कर पाती है, वे राम का अनुगमन करना चाहते हैं।[10]

(क) राजा

राजा पराक्रमसम्पन्न एव दण्डनीति से पूर्णतया परिचित थे। उसे प्रतिकूल आचरणकर्त्ता को दण्डित करने का अधिकार था। राजा दशरथ परशुराम से कहते हैं –

निःसन्देहविपर्यये सति पुनर्ज्ञाने विरुद्धक्रिय
राजा चेत्पुरुष न शास्ति तदय प्राप्त प्रजाविप्लव ।[11]

---

१ महावीरचरितम् १/१४
२ वही १/६२
३ वही २/२ ४१
४ वही २/३४, ३६
५ वही ५/५
६ वही ७/२७
७ वही ७/१३
८ वही ४/४४
९ वही ४/५१
१० वही ४/५७
११ वही ३/३५

राजदण्ड पापशुद्धि का हेतुभूत था, इसका निर्देश मनुस्मृति मे भी मिलता है।[1] अत्यन्त उद्धत व्यक्ति का दमन क्षत्रिय ही करते थे –

दुर्दान्ताना दमनविधय क्षत्त्रियेष्वायतन्ते
दुर्दान्तस्त्व वयमपि च ते क्षत्त्रिया शासितार ।[2]

जानबूझकर दोषपूर्ण कार्य करने वाले व्यक्ति का व्यवहार अक्षम्य था, राजा ही उसे शासित करता था –

ध्रुव ज्ञाने दोष कथमपरथा दुर्व्यवहृतिविशुद्धौ चेत्पाप चरसि न सहन्ते नृपतय ।[3]

कौटिल्य मे भी सम्यक् दण्ड का विधान है।[4] राज्याभिषेक के समय नगरवासी उत्सव मनाते थे। ब्राह्मणजन अभिषेक का अनुष्ठान करते थे।[5] कुल पुरोहित प्रतिष्ठित ब्राह्मण दिव्यर्षिगण अभिषेककार्य सम्पन्न करते थे। राम–राज्याभिषेकावसर पर वसिष्ठ, विश्वामित्र प्रभृति एकत्रित होते हैं, दिव्यर्षिगण राम का राज्याभिषेक करते हैं।[6]

(ख) अमात्य

अमात्य का महत्त्वपूर्ण स्थान था। वह राजहित मे अनेक योजनाओ का निर्माण करता था। उसे साम, दाम, दण्ड, भेद प्रभृति सकल नीतियो का सम्यक् परिज्ञान था। अवसर पडने पर वह मन्त्रशक्ति का भी प्रयोग करता था। रावण–अमात्य माल्यवान् मे उपर्युक्त समस्त गुण विद्यमान थे[7], अमात्य दूरदर्शी होते थे। वे राजा के [illegible] का सम्यक् विश्लेषण करते थे। माल्यवान् रावण की पापबुद्धि की आलोचना करता है।[8]

---

१ (क) निर्मला सस्कामायन्ति सन्त सुकृतिनो यथा। –मनुस्मृति ८/३१८
(ख) यत प्रायश्चित्त इव राजदण्डेऽप्येनसो निष्क्रयमामनन्ति धर्माचार्या। –महावीरचरितम् ४/२६–२७

२ वही ३/३४ का पूर्वार्ध

३ वही ३/३६ का उत्तरार्ध

४ यथार्थदण्डभूज्य। –वार्ता १३, अ० अधि० १० अर्थशास्त्र

५ महावीरचरितम् ७/३७

६ वही ७/३७–४०

७ वही ४/१–११

८ न कुत्राप्यन्यत्र प्रबलभवितव्यादयमहो विशुद्धेवोत्पत्त्या पतति न च तत्पापधिषणा। –वही ६/८

माल्यवान् राजपरिवार मे व्याप्त फूट पर विचार करता है। वह विभीषण के प्रति प्रकाशदण्ड छद्मदण्ड, सरोधन, अपसारण आदि दण्डप्रयोगार्थ विचार करता है।[1]

(ग) सेनापति

सेनापति राजा को सत्परामर्श देता था। वह राजा को युद्ध विषयक सकल वृत्तान्त से अवगत कराता था। सेनापति प्रहस्त रावण को राम एव वानर सेना की लका के चतुर्दिक उपस्थिति, नगरातिक्रमण आदि की सूचना देता है।[2] वह रावण को दूत अगद पर क्रुद्ध होने से रोकना चाहता है – 'देव दूत किलायम्। किमत्र क्रोधेन'।[3]

(घ) गुप्तचर

प्रतिपक्षी के कार्यकलाप पर दृष्टि रखने के लिये गुप्तचर नियुक्त किये जाते थे। वाली को गुप्तचरो से सूचना मिलती है कि विभीषण ने श्रमणा को राम के पास प्रेषित किया है। राम ने विभीषण–मैत्री, लकाधिपत्य–प्रदान आदि का अनुमोदन किया है।[4] माल्यवान् को वानरो द्वारा सीतान्वेषण विषयक सूचना चरो से मिलती है।[5]

(ङ) दूत

दूतकार्य का विशेष महत्त्व था। दूत सर्वमाय रावण का परिणय–प्रस्ताव लेकर आता है।[6] राम कैकेयी का पत्र लेकर दशरथ के समक्ष उपस्थित होते हैं।[7] अगद राम का दूत है, वह रावण को समर्पण हेतु समझाता है।[8]

---

१ महावीरचरितम् ४/७–८ ८
२ वही ६/१७–१६
३ वही ६/२१–२२
४ वही ५/४६–४७
५ वही ६/२–३
६ वही १/२७–२८
७ वही ४/४८
८ वही ६/२०

(च) **वार्त्ताहर**

कथनसप्रेषणार्थ वार्त्ताहर नियुक्त किये जाते थे। शूर्पणखा राम के समक्ष कैकेयी–लेख अर्पित करती है।[1] श्रमणा विभीषण का आत्मसमर्पण लेख लक्ष्मण को प्रदान करती है।[2] रामादिक–आगमन हेतु भरत को ससूचित करने के लिये हनूमान् को प्रेषित किया जाता है।[3]

(छ) **सूत**

राजकार्य एव अन्य कारणो से सूत नियुक्त किये जाते थे। वे राजा के रथ का सचालन करते थे। सूत कुशध्वज, सीता, उर्मिला को रथारूढकर विश्वामित्र के सिद्धाश्रम मे ले जाता है।[4] वह परगुणाशसी होता है। सूत विश्वामित्र के आश्चर्यजनक कृत्यो[5] तथा विश्वामित्र–कुशध्वज–समागम की प्रशसा करता है।[6] युद्ध के समय वह रथ का सचालन करता है, मातलि राम को इन्द्र का रथ प्रदान करते हैं।[7]

(ज) **कञ्चुकी**

वैमानिकगण मगलकार्य सम्पन्न करते थे।[8] अन्त पुरकार्य हेतु कञ्चुकी नियुक्त किया जाता था। कञ्चुकी राम को ककणमोचनार्थ अन्त पुर मे ले जाने हेतु समुपस्थित होता है।[9] द्वार पर वेत्रधारी प्रहरी रहते थे।[10]

(झ) **पत्रलेखन**

राजनीति से सम्बद्ध पत्रलेखन की परम्परा थी। परशुराम माल्यवान् को पत्र भेजते हैं, जिसमे रावण को सम्बोधित कर, स्वमन्तव्य प्रस्तुत करते हैं – 'आपको विदित हो कि

---

१ महावीरचरितम् ४/४०–४१
२ वही ५/२६–३०
३ वही ७/८–६
४ वही १/६–१०
५ वही १/१०–११
६ वही १/११
७ वही ६/३०–३१
८ वही ४/१
६ वही २/५०

मैंने दण्डकारण्य मे वर्तमान तपस्वीजन को अभयदान दिया है उन्हे विराधदनुकबन्ध आक्रान्त कर रहे हैं, उन्हे विरत कर परस्पर स्नेह का रक्षण करे, अन्यथा मैं रुष्ट हो जाऊँगा'।[1]

अन्यत्र शूर्पणखा द्वारा प्रस्तुत छलपत्र मे 'राम–वनवास एव भरत–राज्य विषयक वरद्वय विनिर्दिष्ट है।[2]

(ञ) पौरजनप के स्वामी

राजा स्वेच्छाचारी नहीं था। उसे परामर्श देने के लिये पौरजनपद के स्वामी रहते थे। वे राजकार्य मे सहयोग देते थे। जनक प्रमृति के साथ आसीन होकर वे परशुराम से शान्ति–प्रार्थना करते हैं।[3]

(ट) राजा–प्रजा–सम्बन्ध

राजा एव प्रजा का सम्बन्ध स्नेहपूर्ण था। परस्पर सहयोग से ही राजकार्य चलता था। वाली वानरसेना से सुग्रीव एव अगद सहायतार्थ निवेदन करते हैं।[4]

---

१ महावीरचरितम् २/९–१० १०
२ वही ४/४०–४१ ४१
३ वही ३/५
४ वही ५/६२

नवम अध्याय

प्रकीर्णक – भाषा, रीति, छन्द एवं दोष – विवेचन

भाषा

'भाषा' शब्द की व्युत्पत्ति 'भाष्' धातु से हुयी है जिसका अर्थ है –बोलना या कहना। वस्तुत भाषा भावाभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। भाषा के दो रूप दृष्टिगत होते हैं – बोली तथा भाषा।

भाषा का सीमित, क्षेत्रीय रूप बोली है जिसे जनसाधारण अपने–अपने क्षेत्र मे प्रयुक्त करते हैं यथा–अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी आदि। शिक्षित जन खडी बोली हिन्दी का प्रयोग लेखन एव पठन–पाठन मे करते हैं। प्राचीन काल मे जनसाधारण की भाषा प्राकृत थी तथा सुशिक्षित सभ्य समाज की भाषा सस्कृत थी। चूँकि सस्कृत रूपको मे सामाजिक आचार–व्यवहार, कुरीतियो–प्रवृत्तियो आदि का चित्रण था, अतएव उनमे प्राकृत एव सस्कृत दोनो का सम्मिश्रण रहा है। नाट्यशास्त्रीय आचार्यों के मत मे रूपक–प्रबन्ध मे उत्तम, मध्यम एव अधम प्रकृति के पात्रो के अनुसार ही भाषा होनी चाहिये। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार उत्तम एव मध्यम पुरुष पात्रो की भाषा सस्कृत होनी चाहिये[1], इसके अतिरिक्त उत्तम, सन्यासिनी स्त्रियो की भाषा भी सस्कृत होती है, कहीं–कहीं महारानी, मन्त्रिकन्या और वेश्या की भाषा भी सस्कृत होती है।[2]

प्राकृत आधारभूत भाषा सस्कृत से निर्गत है।[3] स्थानभेद के कारण प्राकृत अनेक रूपो मे प्राप्त होती है – महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, प्राच्या तथा पैशाची। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार

---

१ पुरुषाणामनीचाना सस्कृत स्यात्कृतात्मनाम्।। –साहित्यदर्पण ६/१५८

२ (क) सस्कृत सप्रयोक्तव्य लिगिनीषूत्तमासु च।
देवीमन्त्रिसुतावेश्यास्वपि कैश्चित्तथोदितम्।। –वही ६/१६८

(ख) पाठ्य तु सस्कृत नृणामनीचाना कृतात्मनाम्।
लिगिनीना महादेव्या मन्त्रिजा वेश्ययो क्वचित्।। –दशरूपक २/६४

३ प्रकृतेरागत प्राकृत। प्रकृति सस्कृत तद्भव । –वही २/६५ के पूर्वार्ध का वृत्तिभाग

सस्कृत रूपको मे उत्तम श्रेणी की स्त्रियाँ शौरसेनी बोलती हैं, किन्तु गाथा मे इनकी भाषा महाराष्ट्री प्राकृत होनी चाहिये।[1] उत्तम अथवा मध्यम कोटि की दासियो की भाषा शौरसेनी होती है।[2] अन्त पुर मे रहने वाले वामन प्रभृति मागधी भाषा का प्रयोग करते हैं।[3] चेट, राजकुमार तथा सेठ लोग अर्धमागधी बोलते हैं तथा विदूषकादिक प्राच्या (गौडदेशीय) प्राकृत।[4]

महाकवि भवभूति का भाषा पर असाधारण अधिकार है –

य ब्रह्माणमिय देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।[5]

प्रकृत रूपक मे कवि ने पात्रो की प्रकृति के अनुसार सस्कृत एव प्राकृत भाषाओ का प्रयोग किया है।

सस्कृत

प्रकृत रूपक मे नायक राम, दशरथ, विश्वामित्र, शतानन्द तथा जनक आदि उत्तम कोटि के पुरुष पात्रो की भाषा सस्कृत है। रावण–अमात्य माल्यवान् भी सस्कृत भाषा मे वार्त्तालाप करते हुये दिखायी देता है।

पञ्चम अक मे शबरतपस्विनी श्रमणा राम के समक्ष विभीषण का आत्मसमर्पण लेख प्रस्तुत करती है। उसके द्वारा सस्कृत भाषा का प्रयोग शास्त्रीयनियमानुसार है।[6] षष्ठ अक मे मन्दोदरी रावण से राम के शस्त्र–प्रयोग का वर्णन सस्कृत भाषा मे करती है।[7] रावणादिक–वध के अनन्तर विलाप करती हुयी अधिष्ठातृ देवता लका को अलका समाश्वसित करती हैं, अलका सस्कृत मे बोलती हैं[8], यहॉ उत्तम कोटि की स्त्री पात्र द्वारा प्रयुक्त सस्कृत भाषा शास्त्रीयनियमानुकूल है।

---

१ सौरसेनी प्रयोक्तव्या तादृशीना च योषिताम्।
आसामेव तु गाथासु महाराष्ट्री प्रयोजयेत्।। –साहित्यदर्पण ६/१५६

२ चेटानामप्यनीचानामपि स्यात्सौरसेनिका।। –वही ६/१६४

३ अत्रोक्ता मागधी भाषा राजान्त पुरचारिणाम्। –वही ६/१६०

४ चेटाना राजपुत्राणा श्रेष्ठाना चार्धमागधी।।
प्राच्या विदूषकादीना । –वही ६/१६०–६१

५ उत्तररामचरितम् १/२

६ (क) साहित्यदर्पण ६/१६७
(ख) नाट्यशास्त्र १७/३६–३७

७ महावीरचरितम् ६/१२

८ वही ७/१

प्राकृत

कवि ने प्रकृत रूपक के गद्य भाग मे शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी अर्धमागधी एव अपभ्रश आदि का प्रयोग किया है, किन्तु उन्होने नियमो का स्पष्ट रूप से पालन नहीं किया है। अधिकाश स्थलो पर इन प्राकृतो का सम्मिश्रण दृष्टिगत होता है। सीता, उर्मिला, कैकेयी, शूर्पणखा त्रिजटा, मन्दोदरी तथा सीता की सखियॉ प्राकृत मे वार्त्तालाप करती हैं।

प्राकृत वैयाकरणो ने शौरसेनी प्राकृत के भेदक तत्त्वो का सम्यक् विश्लेषण किया है –

(१) त् के स्थान पर द्[1], थ् के स्थान पर ध्[2] तथा न् के स्थान पर ण्[3] हो जाता है।

(२) स्त्री शब्द को इत्थी आदेश हो जाता है।[4]

(३) 'स्था' धातु से परिवर्तित तिष्ठ को चिट्ठ आदेश हो जाता है।[5]

(४) इदानीं का 'दाणि' हो जाता है।[6]

(५) भविष्यत् अर्थ मे प्रत्यय लगने पर 'स्सि' आदेश होता है।[7]

(६) आश्चर्य शब्द का अच्चरिअ' रूप होता है।[8]

(७) हा धिक् का हद्धी हो जाता है।[9]

(८) इव के स्थान पर 'विअ' आदेश होता है।[10]

(९) तिङ् के पर मे रहने पर 'पेक्ख' आदेश होता है।[11]

(१०) कुमार शब्द अपरिवर्तित रहता है।[12]

---

१ प्राकृत व्याकरण पृ० १८२
२ वही, पृ० १८३
३ नोण सर्वत्र। –प्राकृत प्रकाश २/४२
४ प्राकृत व्याकरण पृ० १८८
५ प्राकृत दीपिका पृ० १२०
६ प्राकृत व्याकरण पृ० १८५
७ प्राकृतदीपिका पृ० १२०
८ वही पृ० १८८
६ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण पृ० १३६
१० प्राकृतदीपिका पृ० १२०
११ प्राकृत व्याकरण, पृ० १८७
१२ प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृ० १५१

(११) खलु का 'क्खु' हो जाता है।[1]

(१२) सम्बन्ध कारक गद्यभाग मे 'स्स नहीं लगाया जाता है।[2]

(१३) कृ धातु पूर्वक क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर कदुअ कदुआ प्रयुक्त होता है।[3]

(१४) करणकारक मे क्रियाविशेषण रूप से प्रयुक्त दृष्ट्या का दिट्ठिआ' हो जाता है।[4]

(१५) भर्तृदारिक के लिये 'भट्टिदारअ', भट्टिदारिआ' प्रयोग मिलता है।[5]

(१६) अस्माक का 'अम्ह' रूप मिलता है।[6]

(१७) युष्मद् प्रथमा एव द्वितीया एकवचन मे 'तुम', तृतीया एकवचन मे 'तए तथा बहुवचन मे 'तुम्हेहि' होता है।[7]

महाराष्ट्री

वररुचि एव हेमचन्द्र जोशी आदि के अनुसार महाराष्ट्री प्राकृत समस्त प्राकृत भाषाओ का आधार है। वररुचि के अनुसार जिन प्राकृत भाषाओ के सम्बन्ध मे विशेष रूप से न कहा गया हो, उन्हे महाराष्ट्री प्राकृत के समान समझना चाहिये।[8] आचार्य दण्डी ने महाराष्ट्री प्राकृत को श्रेष्ठ प्राकृत कहा है।[9] सस्कृत रूपको मे महाराष्ट्री प्राकृत का पद्य भाग मे प्रयोग निर्दिष्ट है।[10] किन्तु श्वेताम्बर जैनियो ने अपने कतिपय धार्मिक ग्रन्थ गद्य मे लिखे हैं, याकोबी ने इनकी भाषा को जैनमहाराष्ट्री कहा है। कतिपय बौद्ध गन्थ भी महाराष्ट्री प्राकृत मे लिखे गये हैं।[11]

---

१ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण पृ० १७३
२ वही पृ० ५५०
३ वही पृ० २०१
४ वही पृ० ५५६
५ वही पृ० १०६
६ प्राकृत व्याकरण पृ० १८८
७ वही पृ० १०३
८ (क) शौरसेन्यामनुक्त कार्यं नवभि परिच्छेदै प्रतिपादित प्राकृतानुसारि भवति शेष महाराष्ट्रीवत् इत्यत्र महाराष्ट्रीपदेन तस्यैव ग्रहणात्। –प्रस्तावना प्राकृत प्रकाश पृ० ३
(ख) शेष महाराष्ट्रीवत् । –प्राकृतप्रकाश १२/३२
(ग) अनुक्त कार्यं महाराष्ट्रीवज्ज्ञेयम्।
महाराष्ट्री पदेनात्र प्राकृतस्य ग्रहण बोध्यम्। –वही वृत्तिभाग
(घ) शेष प्राकृतवत् । –प्राकृत व्याकरण ८/४/२८६
९ महाराष्ट्राश्रया भाषा प्रकृष्ट प्राकृत विदु । –काव्यादर्श १/३४
१० साहित्यदर्पण ६/१५६
११ भाषा विज्ञान, पृ० १६४ – डा० भोला नाथ तिवारी, बीसवॉ सस्करण १९८७

अतएव कवि भवभूति द्वारा महाराष्ट्री प्राकृत का गद्य भाग मे प्रयोग दोषपूर्ण नहीं माना जा सकता है।

महाराष्ट्री प्राकृत की निम्नलिखित विशेषताये उल्लेखनीय हैं –

(१) असयुक्त तथा अनादिस्थ पकार को वकार आदेश होता है।[1]

(२) असयुक्त टकार को डकार आदेश हो जाता है।[2]

(३) सिप् को सि, से एव थास् को सि, से आदेश हो जाते हैं।[3]

(४) अकारान्त सज्ञा शब्दो का अधिकरण रूप 'म्मि' जोडने से बनता है।[4]

(५) आत्मनेपद तथा परस्मैपद के प्रथम पुरुष एकवचन के त, तिप् को क्रमश 'इ एव ए आदेश हो जाता है।[5]

(६) यथा और तथा का क्रमश जह एव तह रूप मिलता है।[6]

मागधी

एव के स्थान पर 'ऍव्व' प्रयुक्त होता है।[7]

अपभ्रश

सु और अम् विभक्तियो मे शब्द के अन्तिम 'अ' के स्थान पर 'उ' हो जाता है।[8]

अर्धमागधी

(१) आत्मान के स्थान पर 'अत्ताण' प्रयुक्त होता है।[9]

(२) 'कुमार' के स्थान पर 'कुमाल' प्रयोग मिलता है।[10]

---

१ पोव । –प्राकृत प्रकाश २/१५
२ टो ड । –वही २/२०
३ थास्सिषो सिसे।। –वही ७/२
४ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण पृ० ३८
५ ततिपोरिदेतौ'। –प्राकृत प्रकाश ७/१
६ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण पृ० २००
७ वही पृ० १६७
८ प्राकृत व्याकरण पृ० २०५
९ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण पृ० ५८४
१० वही, पृ० १५१

प्रकृत रूपक से सम्बद्ध प्राकृत–प्रयोगो का विवेचन प्रस्तुत है –

सीता एव उर्मिला विश्वामित्र को प्रणाम करने से सम्बन्धित कुशध्वज की आज्ञा शिरोधार्य करती हैं – जह कणिट्ठतादो आणवेदि।[१] यहॉ 'जह' महाराष्ट्री प्राकृत[२] तथा तकार को दकार[३] शौरसेनी प्राकृत एव 'आणवेदि'[४] शौरसेनी तथा मागधी प्राकृत के अनुसार है।

बाल्यावस्था की रमणीय मूर्ति राम तथा लक्ष्मण को देखकर सीता एव उर्मिला कहती हैं – सोम्मदसणा क्खु एदे।[५] यहॉ क्खु[६] प्रयोग शौरसेनी प्राकृत के अनुसार है।

ताटकावधार्थ राम को नियुक्त करने से सीता भयातुर हो जाती हैं – 'हद्धी हद्धी। एसो एव्व एत्थ णिउत्तो।'[७] यहॉ 'हद्धी'[८] शौरसेनी प्राकृत तथा 'एव्व'[९] मागधी प्राकृत के अनुसार है।

राम के वीरोचित आचरण से सीता आश्चर्यान्वित हो जाती हैं – 'अण्णदोमुहो एव्व से चित्तभेदो'।[१०] यहॉ एव्व[११] मागधी प्राकृत के अनुसार है।

भीषणाकृति ताटका को देखकर सीता कहती हैं– उप्पादवादावली विअ सा हदासा महाणुभाव अहिद्दवदि।[१२] यहॉ 'विअ'[१३], तिप् को 'दि'[१४] शौरसेनी प्राकृत तथा पकार को वकार[१५] महाराष्ट्री प्राकृत के अनुसार है।

---

१ महावीरचरितम् १/६–१०
२ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण पृ० २००
३ प्राकृत व्याकरण पृ० १८२
४ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण, पृ० १६४
५ महावीरचरितम् १/१८–१६
६ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण पृ० १७३
७ महावीरचरितम् १/३६–३७
८ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण पृ० १३६
६ वही पृ० १६७
१० महावीरचरितम् १/३६–३७
११ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण पृ० १६७
१२ महावीरचरितम् १/३८–३६
१३ प्राकृतदीपिका पृ० १२०
१४ प्राकृत व्याकरण, पृ० १८२
१५ प्राकृत प्रकाश २/१५

परिणय–निर्णय श्रवण कर सीता एव उर्मिला प्रसन्न होती हैं – दिट्ठिआ अविप्पवासो दाणि भइणीआण भविस्सदि'।[1] यहाँ दिट्ठिआ'[2] 'दाणि'[3], भविस्सदि मे 'स्स'[4] शौरसेनी प्राकृत के अनुसार है।

परशुराम के कन्यान्त पुर मे प्रविष्ट होने से परिजन भागते हैं विलाप करते हैं – 'अह्मो ! समन्तदो एव्व' हा देव चन्दमुह रामचन्द ! हा जामादुएत्ति परिदेवणमुहरकाअरुव्विग्गसमत्तपरिअण पलाइद अह्मराअउलम्। भट्टदारिए ! सअ एव्व विण्णवेहि भट्टारम्।[5] यहाँ 'एव्व' मागधी प्राकृत[6], भट्टिदारिए[7] शौरसेनी प्राकृत तथा सुप् विभक्ति के अन्तिम अ के स्थान पर 'उ' – काअरु'[8] अपभ्रश के अनुसार है।

सखियाँ सीता का ध्यान राम के गाम्भीर्य की ओर आकृष्ट करती हैं – भट्टिदारिए ! पेक्ख पेक्ख भत्तुणो सोहग्गम्। तुम क्खु णिच्च परामुही अत्ताण वञ्चेसि।[9] यहाँ पेक्ख'[10], क्खु'[11] तुम[12] शौरसेनी प्राकृत तथा 'अत्ताण'[13] अर्धमागधी के अनुसार है।

देवगणो का राम को समर्थन देखकर शूर्पणखा डर जाती है– 'णहि तुह्मेहि णिरूविद विसवदइ। सपद उक्कम्पिदह्मि'।[14] यहाँ 'तुह्मेहि'[15], भविष्यत्काल मे 'स्सि'[16] शौरसेनी प्राकृत तथा तिप् को 'इ'[17] महाराष्ट्री प्राकृत के अनुसार है।

---

१ महावीरचरितम् १/५८–५६
२ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण पृ० ५५६
३ प्राकृत व्याकरण पृ० १८५
४ वही ८/४/२७७
५ महावीरचरितम् २/२०–२१
६ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण, पृ० १६७
७ वही पृ० १०६
८ प्राकृत व्याकरण, पृ० २०५
६ महावीरचरितम् २/३८–३६
१० प्राकृत व्याकरण पृ० १८७
११ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण पृ० १७३
१२ प्राकृत व्याकरण पृ० १०३
१३ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण, पृ० ५८४
१४ महावीरचरितम् ४/१–२
१५ प्राकृत व्याकरण, पृ० १०३
१६ वही ८/४/२७५
१७ प्राकृत प्रकाश ७/१

हनूमान् द्वारा लका–दहन से आक्रान्त होकर त्रिजटा माल्यवान् से कहती है – क्खु कुमालएण अणुवन्धिज्जमाणो तस्मि कदन्तलील कदुआ झत्ति णिक्कन्तो।[1] यहॉ कदुआ'[2] शौरसेनी प्राकृत तथा 'कुमाल'[3] अर्धमागधी प्राकृत के अनुसार है।

मन्दोदरी रावण को वानरो द्वारा सेतु–निर्माण जल पर प्रस्तरो के तैरने आदि की सूचना देती है – 'महाराअ ! ओधारेहि कि वि अण्णारिसी रअणा कस्स व विलीमुह... हत्थपुण्णदो उवरिज्जेव चिट्ठन्दि ते महीहरा जलम्मि त्ति।[4] यहॉ 'चिट्ठ'[5] शौरसेनी प्राकृत तथा अधिकरण मे 'म्मि'[6] महाराष्ट्री प्राकृत के अनुसार है।

राक्षस–सहार के अनन्तर लका विलाप करती हैं– 'हा कुमार कुम्भअण्ण !'[7], 'कह अम्ह सामिणा रक्खसणाहेण एद ण ओधारिदम्'[8] ? यहॉ कुमार' मे अपरिवर्तन[9], अस्माक का अम्ह'[10] शौरसेनी प्राकृत के अनुसार है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि भवभूति ने भाव के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है, यद्यपि वह प्राकृत के नियमो का स्पष्ट भेद नहीं कर सके हैं।

रीति

शब्द तथा अर्थ को सश्लिष्ट कर भावो को अभिव्यक्ति प्रदान करने की विधा को रीति कहते हैं, जिसके अभाव मे कोई रचना शब्द, अर्थ तथा अक्षराडम्बर तो हो सकती है किन्तु उसे काव्य की सज्ञा नही दी जा सकती है। रीति शब्द की व्युत्पत्ति – 'रियन्ते परम्परया गच्छन्ति अनया इति रीति' 'रीड् गतौ' अथवा 'रीड् स्रवणे' धातु से क्तिन् प्रत्यय से हुयी है, तदनुसार वैदर्भ आदि मार्ग अथवा वैदर्भी आदि रीति अर्थ किया जाता है। सस्कृत काव्यशास्त्र मे शैली के स्थान पर 'रीति' शब्द का

---

१ महावीरचरितम् ६/४–५
२ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण, पृ० २०१
३ वही पृ० १५१
४ महावीरचरितम् ६/१४–१५
५ प्राकृतदीपिका पृ० १२०
६ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण पृ० ३८
७ महावीरचरितम् ७/०–१
८ वही ७/२–३
९ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण पृ० १५१
१० प्राकृत व्याकरण, पृ० १८८

प्रयोग मिलता है। आचार्य दण्डी एव आचार्य कुन्तक ने रीति के स्थान पर मार्ग शब्द का प्रयोग किया है।[1] आचार्य वामन ने रीति को काव्य का आत्मतत्त्व माना है। उनके मत मे विशेष प्रकार की पदरचना रीति कहलाती है।[2] आचार्य वामन ने विशेष पद को स्पष्ट करते हुए माधुर्यादिक गुणो की ओर सकेत किया है।[3] माधुर्य, ओज, प्रसाद आदि तीन गुणो के अनुसार साहित्याचार्यों ने वैदर्भी, गौडी एव पाञ्चाली रीतियो को काव्य मे महत्त्व दिया है। आचार्य दण्डी ने वैदर्भ मार्ग एव गौड मार्ग को मुख्य माना है।[4] आचार्य वामन ने वैदर्भी, गौडी एव पाञ्चाली रूप मे रीतियो का त्रिधा विभाजन किया है।[5] आचार्य कुन्तक कतिपय परिवर्तन कर इन्हे क्रमश सुकुमार मार्ग, विचित्र मार्ग एव मध्यम मार्ग मानते हैं।[6] आचार्य भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण मे षड् रीतियो वैदर्भी, गौडी, पाञ्चाली, अवन्तिका, लाटी एव मागधी का प्रतिपादन किया है।[7] साहित्यदर्पणकार ने चतुर्विध विभाजन वैदर्भी, गौडी, पाञ्चाली एव लाटी रूप मे किया है।[8]

महाकवि भवभूति ने प्रकृत रूपक मे गौडी एव वैदर्भी रीतियो का यथावसर उचित प्रयोग किया है।

गौडी रीति

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार ओज को प्रकाशित करने वाले, परुष वर्णोपेत, विकटबन्ध तथा समासबहुला पदरचना को गौडी रीति कहते हैं।[9] इसमे सयुक्त वर्णों (क्ख, ग्घ, ड्ड आदि), द्वित्व वर्णो

---

१ (क) अस्त्यनेको गिरा मार्ग सूक्ष्मभेद परस्परम्। –काव्यादर्श ४०
(ख) सम्प्रति तत्र ये मार्गा कविप्रस्थानहेतव ।
सुकुमारो विचित्रश्च मध्यमश्चोभयात्मक ।। –वक्रोक्तिजीवित १/२४

२ विशिष्टा पदरचना रीति । –काव्यालकारसूत्रवृत्ति १/२/७
विशेषवती पदाना रचना रीति । –वही वृत्तिभाग

३ विशेषो गुणात्मा। –वही १/२/८
वक्ष्यमाण गुणरूपो विशेष । –वही वृत्तिभाग

४ तत्र वैदर्भगौडीयौ वर्ण्यते प्रस्फुटान्तरौ। –काव्यादर्श १/४०

५ सा त्रेधा वैदर्भी गौडीया पाञ्चाली चेति। –काव्यालकारसूत्रवृत्ति १/२/६

६ वक्रोक्तिजीवित १/२४

७ वैदर्भी चाथ पाञ्चाली गौडीयावन्तिका तथा।
लाटीया मागधी चेति षोढा रीति निगद्यते।। –सरस्वतीकण्ठाभरण २/५२

८ सा पुन स्याच्चतुर्विधा।
वैदर्भी चाथ गौडी च पाञ्चाली लाटिका तथा।। –साहित्यदर्पण ६/१–२

९ ओज प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बर पुन ।
समासबहुला गौडी ।। – वही ६/३–४

(क्क च्च आदि), रेफयुक्त वर्णों (र्क, र्च, र्ट आदि), रकारयुक्त वर्ण (क्र, द्र प्र आदि) एव ट ठ, ड, ढ, श, ष से बने पदो का बाहुल्य होता है।[1] ओजपूर्ण भावो की क्रमश वीर, रौद्र, बीभत्स रसो मे उत्तरोत्तर अधिकता के साथ अभिव्यक्ति होती है।[2] प्रकृति के भयावह रूपो का चित्रण करने के लिये गौडी रीति का प्रयोग किया जाता है।

क्रुद्ध परशुराम कुठार–प्रहार का निश्चय करते हैं –

> प्रागप्राप्तनिसुम्भशाम्भवधनुर्द्वेधाविधाविर्भव–
> त्क्रोध प्रेरितभीमभार्गवभुजस्तम्भापविद्ध क्षणात्।
> सज्वाल परशुर्भवत्वशिथिलस्त्वत्कण्ठपीठातिथि–
> र्येनानेन जगत्सु खण्डपरशुर्देवो हर ख्याप्यते।।[3]

यहाँ रेफयुक्त वर्ण र्द, र्भ, र्ग, रकारयुक्त प्र, क्र तथा श, ठ, ड आदि से समन्वित समासबहुल ओजोव्यञ्जक उक्ति का प्रयोग है।

रावण राक्षससेना को अर्गला तोडने, वानरो को खण्ड–खण्ड कर देने का आदेश देता है–

> त्रोट्यन्तामभितोऽर्गलानि भुवनप्रख्यातसारोद्धतै
> पाट्यन्ता पुरगोपुराणि च परब्याक्षेपिभी राक्षसै।
> मथ्यन्ता रिपुघस्मरप्रहरण विक्षोभ्य भग्या भुजा
> खण्ड्यन्ता च मुहुर्विवल्गनवृथोत्थानोत्कटा मर्कट।।[4]

यहाँ ओजोव्यञ्जक पदो के प्रयोग से गौडी रीति है।

महाकवि भवभूति ने गौडी रीति का प्रयोग प्राकृत भाषा (गद्य भाग) मे किया है। द्वितीय अक मे सखियाँ तेज कुठार लिये, यत्र–तत्र विकीर्ण जटा वाले तथा पृथ्वी को प्रकम्पित करते हुए

(क) योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययो।
टादि शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि। –काव्यप्रकाश ८/७५
(ख) वर्गस्याद्यतृतीयाभ्या युक्तौ वर्णौ तदन्तिमौ।।
उपर्यधो द्वयोर्वा सरेफौ टठडढै सह।
शकारश्च षकारश्च तस्य व्यञ्जकता गता।।
तथा समासो बहुलो घटनौद्धत्यशालिनी। –साहित्यदर्पण ८/५–६–७

२ काव्यप्रकाश ८/६६–७०

३ महावीरचरितम् २/३३

४ वही ६/२३

परशुराम का वर्णन करती हैं – 'हा ! एसो दिप्पन्तदिणअरालोअदुप्पेक्खजरठदेहप्पहापरिक्खेवभासुरोज्जलन्त सुणिसिद परसु धारअन्तो ।'[1]

यहॉ द्वित्व वर्ण, प्प ज्ज, ल्ल, सयुक्त वर्ण क्ख आदि से युक्त दीर्घ समास पदावली का प्रयोग है अत गौडी रीति है।

इसके अतिरिक्त भवभूति ने अनेक स्थलो पर गौडी रीति का सुन्दर प्रयोग किया है – सर्वमाय द्वारा रावण के पराक्रम का वर्णन[2], भीषणाकृति ताटका का वर्णन[3], परशुरामकृत आत्मप्रशसा[4], जनक का युद्धार्थ उद्यत होना[5], रावण द्वारा स्वपराक्रमवर्णन[6] तथा वानर एव तपस्वीजन पर प्रहारार्थ उद्यत होना।[7]

वैदर्भी रीति

माधुर्य के अभिव्यञ्जक वर्णों से पूर्ण, समासरहित अथवा अल्पसमासयुक्त मनोहर रचना वैदर्भी रीति कही जाती है।[8] वैदर्भी रीति सरल, सुबोध एव सरस होने के कारण सर्वजनसवेद्य होती है। इसमे ललित रचना के लिये माधुर्य गुण एव सरल तथा सुबोध रचना के लिये प्रसाद गुण की आवश्यकता होती है। अतएव वैदर्भी रीति मे माधुर्य एव प्रसादगुण व्यञ्जक वर्णों का प्राधान्य होता है। अत माधुर्य एव प्रसाद गुणो का सक्षिप्त विवेचन प्रासगिक होगा।

चित्त के द्रवीभाव का कारण माधुर्य गुण आह्लादस्वरूप होता है।[9] ट ठ, ड, ढ को छोडकर क से लेकर म पर्यन्त समस्त स्पर्श वर्ण अपने–अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त वर्ण, ह्रस्व रेफ और णकार आदि वर्ण माधुर्यव्यञ्जक हैं। समासरहित अथवा स्वल्प समास युक्त रचना माधुर्य गुण व्यञ्जक

---

१ महावीरचरितम् २/२२–२३
२ वही १/३४
३ वही १/३५
४ वही २/१६ १७ ४८
५ वही ३/२६
६ वही ६/११
७ वही ६/२५
८ माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका।।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते। –साहित्यदर्पण ६/२–३
६ आह्लादकत्व माधुर्य श्रृगारे द्रुतिकारणम्।। –काव्यप्रकाश ८/६८

होती है।[1] इसकी स्थिति मुख्य रूप से श्रृगार, करुण एव शान्त रसो मे होती है। सम्भोग श्रृगार की अपेक्षा करुण, विप्रलम्भ श्रृगार तथा शान्त रसो मे यह माधुर्य गुण क्रमश वृद्धि को प्राप्त होता है।[2]

शुष्क इन्धन मे अग्नि तथा स्वच्छ जल के समान जो गुण चित्त मे तुरन्त व्याप्त हो जाता है उसे प्रसाद गुण कहते हैं। यह समस्त रसो एव रचनाओ मे व्याप्त रहता है।[3] आचार्य विश्वनाथ के अनुसार श्रवण मात्र से ही प्रसाद गुण व्यञ्जक सरल एव सुबोध अर्थ की प्रतीति होती है।[4]

महावीरचरितम् मे वीर रस की प्रधानता के कारण गौडी रीति का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है, तथापि कवि भवभूति ने अनेक स्थलो पर सरल पदावली का स्वाभाविक प्रयोग कर वैदर्भी रीति मे दक्षता प्रदर्शित की है।

प्रथम अक मे राजा कुशध्वज विश्वामित्र को साक्षात् धर्म स्वरूप बताते हैं –

तुरीयो ह्येष मेध्याग्निराम्नाय पञ्चमोऽपि वा।
अथवा जगम तीर्थं धर्मो वा मूर्तिसचर ।।[5]

माल्यवान् परशुराम की शक्ति का समासरहित शब्दो मे वर्णन करता है –

तान्येव यदि भूतानि ता एव यदि शक्तय ।
तत परशुरामस्य न प्रतीम पराभवम्।।[6]

लक्ष्मण द्वारा शोकाकुल राम की अवस्था का वर्णन सरल शब्दो मे द्रष्टव्य है –

एष मूर्त इव क्रोध शोकाग्निरिव जगम ।
कृच्छ्राद् बिभर्ति हृल्लेखलज्जासवेगिनीं तनुम्।।[7]

---

१ मूर्ध्नि वर्गान्त्यगा स्पर्शा अटवर्गा रणौलघू।
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा।। –काव्यप्रकाश ८/७४
२ करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्। –वही ८/६६
३ शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव य ।।
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थिति । –वही ८/७०–७१
४ शब्दास्तद्व्यञ्जका अर्थबोधका श्रुतिमात्रत ।। –साहित्यदर्पण ८/८
५ महावीरचरितम् १/१०
६ वही २/१४
७ वही ५/२०

महाकवि भवभूति ने गद्य मे भी वैदर्भी रीति का सुन्दर प्रयोग किया है। परशुराम राम को ककणमोचनार्थ जाने की अनुमति देते हैं – क्रियता लोकधर्म। पश्यन्तु त्वा ज्ञातय। किन्तु जनपदेषु न चिरमारण्यकास्तिष्ठन्ति। गन्तुकामोऽस्मि। अतो न काल परिक्षेप्तव्य।[1]

लक्ष्मण को मूर्च्छित जानकर राम के हृदय मे वीर एव करुण रस का सचार होता है, जिसका वर्णन अत्यन्त सरल शब्दो मे किया गया है– देवराज ! अयमत्राद्भुततरो विमर्द। यदा तु भ्रातुर्मोहमधिगम्य भाविलकेश्वरादक्रममेव करुवीरानुभावभावितचित्तवृत्तिस्तथाविधस्यापि दर्शनोत्सुक समवारुध्यत परित कुम्भकर्णप्रमुखया रक्षपृतनया तदा पुनरिदमेव प्रत्यकार्षीत्।[2]

भवभूति ने इसके अतिरिक्त अनेक स्थलो पर वैदर्भी रीति का सुन्दर प्रयोग किया है।[3]

छन्द

काव्य के मुख्य रूप से दो भेद है – गद्य एव पद्य। भाषा का स्वाभाविक रूप गद्य है जो व्याकरण के नियमो द्वारा शासित होता है। किन्तु पद्य मे कवि के नैपुण्य एव रसबोध का प्राधान्य रहता है, जिसमे भाषा एव भाव की निर्बाधगति को लयबद्ध करने के लिये व्याकरणशास्त्र एव छन्दशास्त्र दोनो का प्रयोग अपरिहार्य होता है।

'छन्द' शब्द की निष्पत्ति 'चदि आह्लादने दीप्तौ च' धातु से असुन् प्रत्यय लगने पर होती है। 'चन्देरादेश्च छ' (उ० ४/२/१६)[4] सूत्र से 'चन्द्' के 'च्' को 'छ्' आदेश होकर 'छन्द' शब्द बनता है।

वेद के षडगो मे छन्द शास्त्र की परिगणना की गयी है। महर्षि पाणिनी छन्द को वेद का चरणद्वय मानते हैं।[5] नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत मुनि ने नाट्यवाङ्मय मे छन्द के महत्त्व को प्रदर्शित किया है। उनके मत मे छन्द और शब्द परस्परापेक्षी होते हैं। छन्द के बिना शब्द नहीं होता है तथा

---

१ महावीरचरितम् २/५०–५१ पृ० १०३
२ वही ६/४८–४६ पृ० ३८४–८५
३ वही १/१६ ३६ २६–२७, ३/४–५, ४/५३–५४, ७/२८–२६
४ अमरकोष, पृ० २५७
५ छन्द पादौ तु वेदस्य । –वृत्तरत्नाकर की भूमिका, पृ० ५

छन्द भी बिना शब्द के नहीं होता, दोनो के सयोग से नाट्यसौन्दर्य की वृद्धि होती है।[१] काव्यमीमासाकार राजशेखर ने छन्द को काव्यपुरुष का रोमसमूह बतलाया है।[२]

भवभूति ने महावीरचरितम् के ३८८ पद्यो मे १६ प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है। कवि ने अनुष्टुप् शार्दूलविक्रीडित स्रग्धरा, शिखरिणी तथा मन्दाक्रान्ता छन्दो का सर्वाधिक प्रयोग किया है।

अनुष्टुप्[३]

भवभूति ने पूरे रूपक मे ११२ पद्य अनुष्टुप् छन्द मे प्रस्तुत किया है।[४] अधिकाश स्थलो पर तो सूचना देना ही अभीष्ट है। सूत्रधार के कथन से ज्ञात होता है कि यह नाटक प्रसादगुणोपेत है[५], वीर एव अवान्तर रस से परिपूर्ण है[६], इसकी कथा रामचरित से सम्बद्ध है[७], कवि के गुरु ज्ञाननिधि हैं।[८]

कतिपय स्थलो पर पात्रो के हृदयगत भावो की अभिव्यञ्जना मे इस छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है – राम सुन्दरता की प्रतिमूर्ति सीता पर अनुरक्त हो जाते हैं –

> उत्पत्तिर्देवयजनाद् ब्रह्मवादी नृप पिता।
> सुप्रसन्नोज्ज्वला मूर्तिरस्या स्नेह करोति मे।।[९]

---

१ छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न छन्दश्शब्दवर्जितम्।
एव तूभयसयोगो नाट्यस्योद्द्योतक स्मृत।। –नाट्यशास्त्र १४/४५

२ रोमाणि छन्दासि। –काव्यमीमासा, पृ० २७

३ पञ्चम लघु सर्वत्र सप्तम द्विचतुर्थयो।
गुरु षष्ठ च पादाना शेषैष्वनियमो मत।
प्रयोगे प्रायिक प्राहु केऽप्येतद्वृत्तलक्षणम्।
लोकेऽनुष्टुबिति ख्यात तस्याष्टाक्षरता मता।। –छन्दोमञ्जरी चतुर्थस्तबक पृ० १३६

४ महावीरचरितम् १/१ २, ३ ४, ५, १०, १४ १५, १६ १७ १९ २०, २१ २२ २३ २६ २९ ३२ ३७ ४१ ४७ ४८ ४९ ५२ ५७ ६० ६१, २/३ ५, १० १४ ४२ ४६ ४७, ३/२ ६ ८ १० १२ १८ १९ २० ३८ ३९ ४६, ४/२ ४ १३ १६ २३ २४ २६ २७ ३३ ३४ ३७ ३९ ४० ४२ ४३ ४५, ४६ ४७ ४८ ५१ ५३ ५४, ५८ ५९, ५/६ ७ ८ ९ ११, १२ १३ १७, २० २४ २७ ३०, ३१ ३४, ३५, ३६, ३८ ४३, ५०, ५९ ६०, ६/२, ३, ५, ६ १३ १९ २१, ३९, ५०, ५५, ७/४ ६, १९ २०, २२ २३ २४ ३१ ३२ ३६ ३९ ४०

५ वही १/२

६ वही १/३

७ वही १/४

८ वही १/५

९ वही १/२१

परशुराम की शिवभक्ति असाधारण है –

शत्रुमूलमनुत्खाय न पुनर्द्रष्टुमुत्सहे।
त्र्यम्बक देवमाचार्यमाचार्यानीं च पार्वतीम्।।[1]

शार्दूलविक्रीडित[2]

आचार्य क्षेमेन्द्र के मत मे शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग राजाओ के शौर्यवर्णन के प्रसग मे उचित होता है।[3]

कवि ने ५६ पद्यो मे इस छन्द का प्रयोग किया है।[4] भवभूति ने प्राय समस्त प्रसगो मे इस छन्द का प्रयोग किया है। सिद्धाश्रम मे रामादिक के रूपवर्णन[5], परशुराम तथा राम दशरथ, जनक प्रभृति का सवाद[6], जटायु का सीताहरण के समय क्रुद्ध हो युद्धार्थ उद्यत होना[7], कबन्ध का दिव्यपुरुष के रूप मे प्रकट होना[8], राम–वाली–युद्ध[9], युद्ध–वर्णन[10], प्रकृति–वर्णन[11] आदि अनेक प्रसग शार्दूलविक्रीडित छन्द मे प्रस्तुत किये गये हैं।

शिखरिणी[12]

आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार शिखरिणी छन्द का किसी विषय की सीमा को निर्धारित करने मे प्रयोग किया जाता है।[13]

---

१ महावीरचरितम् ३/६
२ सूर्याश्वैर्यदि म सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम्। –छन्दोमञ्जरी द्वितीय स्तबक पृ० १००
३ शौर्यस्तवे नृपादीना शार्दूलविक्रीडितम्। –सुवृत्ततिलक ३/२२
४ महावीरचरितम् १/१३ १८ २५, ३० ३३ ३४ ३५, ४६ ५४ ५६, २/६ ६ १३ १६ २० २१ २२ २८ ३२, ३३, ३६ ४५, ३/१ ३ १३ ३५, ३७ ४० ४३ ४/३ ६ १४ १७ २२ २५, ३० ३१ ३८ ५६ ५७, ५/१ २ १८ १६ २१ २२ २३, ३३, ३७ ३६ ५१ ५५, ६३, ६/१ १७ २० ४१ ७/१३ ४१
५ वही १/१८
६ वही द्वितीय एव तृतीय अक
७ वही ५/१८, १६
८ वही ५/३३
६ वही ५/३६
१० वही षष्ठ अक
११ वही ७/१३
१२ रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला ग शिखरिणी।। –छन्दोमञ्जरी २/१
१३ उपपन्नपरिच्छेदकाले शिखरिणी मता। –सुवृत्ततिलक ३/२०

भवभूति ने २४ पद्यो मे इस छन्द का प्रयोग किया है।[1]

कुशध्वज–विश्वामित्र–सवाद[2], दिव्यास्त्र–वर्णन[3] परशुराम की गर्वोक्ति[4], जनक का युद्धार्थ उद्यत होना[5], कैकेयी–कुकृत्य के कारण युधाजित् का विह्वल होना[6], युद्ध–वर्णन[7] आदि अनेकविध स्थलो पर कवि ने शिखरिणी छन्द का प्रयोग किया है।

स्रग्धरा[8]

कवि ने २० पद्यो मे स्रग्धरा छन्द का प्रयोग किया है।[9]

राम–परशुराम–सवाद[10], वाली का आगमन तथा अपने मनोगत भावो की अभिव्यक्ति[11], युद्ध–वर्णन[12], राम–राज्याभिषेक के पश्चात् विश्वामित्र का प्रसन्न होना[13] आदि प्रसग स्रग्धरा छन्द मे प्रस्तुत किये गये हैं।

वसन्ततिलका[14]

आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार वीर एव रौद्र रसो के सकर मे वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया जाता है।[15]

---

१ महावीरचरितम् १/११ १२ ४३, २/१५, ३/२४ २७ ३६ ४१, ४/१ १८ १९ ५२, ५/५, १४ २८ ५८ ६/८ १५, २२ ३० ३४ ३६ ४९, ७/३०

२ वही १/११ १२

३ वही १/४३

४ वही ३/२४

५ वही ३/२७

६ वही ४/५२

७ वही ६/३०, ३४, ३६, ४९

८ म्रभ्नैर्याणा त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।। –छन्दोमञ्जरी द्वितीय स्तबक पृ० १०८

९ महावीरचरितम् २/१७, १८, ४८, ३/३२, ५/३२ ४४, ४५, ५३, ६/४ १०, १२ २५, ३२ ३३ ३८, ४८ ५१ ५६ ६१, ७/३८

१० वही २/४८

११ वही ५/४४ ४५, ५३

१२ वही ६/३२ ३३ ३८ ५१ ५६ ६१

१३ वही ७/३८

१४ उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग। –वृत्तरत्नाकर ३/७९

१५ वसन्ततिलक भाति सकरे वीररौद्रयौ। –सुवृत्ततिलक ३/१९

रूपक मे २१ पद्य इस छन्द मे प्रस्तुत किये गये हैं।[1]

दूत सर्वमाय का ताटकावध से उद्विग्न होना[2], परशुराम द्वारा राम की प्रशसा[3], शापोद्यत शतानन्द को विरत करना[4], माल्यवान् की खरप्रभृति विषयक चिन्ता[5], दशरथ–विलाप[6], नीलप्रभृति का वालीवध के अनन्तर विलाप[7], किन्नरी द्वारा राम का यशगान[8] आदि प्रसग वसन्ततिलका छन्द मे प्रस्तुत किये गये हैं।

मन्दाक्रान्ता[9]

रूपक मे १६ पद्य मन्दाक्रान्ता छन्द मे प्रस्तुत किये गये हैं।[10] वीर, रौद्र तथा शान्त रस के अनेक स्थलो पर इस छन्द का प्रयोग किया गया है।

सर्वमाय रावण एव इन्द्र के युद्ध का स्मरण करता है –

सर्वप्राणप्रवणमघवन्मुक्तमाहत्य वक्ष–
स्तत्सघट्टाद्विघटितबृहत्खण्डमुच्चण्डरोचि।
एव वेगात्कुलिशमकरोद् व्योम विद्युत्सहस्रै–
र्भर्तुर्वक्त्रज्वलनकपिशास्ते च रोषाट्टहासा ।।[11]

उपर्युक्त पद्य मे मन्दाक्रान्ता छन्द प्रयुक्त है।

---

१ महावीरचरितम् १/६ ७ ४० ५५, २/२६ ३१ ३४ ३८, ३/१६ २२ २६ ४२, ४/८ १२ २६ ५५, ५/२६ ५६ ६१, ७/३ २६
२ वही १/४०
३ वही २/३१
४ वही ३/२२
५ वही ४/८
६ वही ४/५५
७ वही ५/६१
८ वही ७/२६
६ मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्। –छन्दोमञ्जरी द्वितीय स्तबक पृ० ८७
१० महावीरचरितम् १/४५, २/२ ४ २५, २६, ४१, ३/२३ २५, २६ २८ ३४ ४७, ६/३७, ४४ ४५, ५३
११ वही १/४५

मालिनी[1]

रूपक मे ७ पद्यो मे मालिनी छन्द प्रयुक्त है।[2] रामादिक की सिद्धाश्रम मे एकत्र उपस्थिति[3] परशुराम का श्रोत्रियोचित सत्कार अथवा शत्रुरूपेण आने पर धनुष्–प्रयोग सम्बन्धी जनक का निश्चय[4], प्रकृति का मनोरम वर्णन[5] आदि प्रसग मालिनी छन्द मे प्रस्तुत किये गये हैं।

प्रहर्षिणी[6]

रूपक मे ७ पद्य इस छन्द मे विन्यस्त हैं।[7] दिव्यास्त्र–प्रभाव[8], परशुराम को भस्मसात् करने के लिये शतानन्द का उद्यत होना[9], जटायु का मलयाचल के शिखर पर अवतरण[10] राक्षसो का तीव्र निर्घोष[11] आदि प्रसग प्रहर्षिणी छन्द मे उपनिबद्ध हैं।

हरिणी[12]

रूपक मे ५ पद्य इस छन्द मे उपनिबद्ध हैं।[13] दशरथ परशुराम–समागम के कारण सानन्द हैं –

> जनपदबहिर्निष्ठा यूय गृहस्य परिग्रहाद्वयमपि निजैर्व्यग्रा कार्यैस्ततो न बभूव य।
> स इह भवतामाद्यास्माभिर्मनोरथवाञ्छित सुचरितपरीपाकात्प्राप्तश्चिरस्य समागम।।[14]

उपर्युक्त पद्य मे हरिणी छन्द प्रयुक्त है।

---

१ ननमययुतेय मालिनी भोगिलोकै। –छन्दोमञ्जरी द्वितीय स्तबक पृ० ७२
२ महावीरचरितम् १/८, २/४४ ४६, ३/४, ५/४०, ४१, ६/२७
३ वही १/८
४ वही २/४४
५ वही ५/४१
६ त्र्याशाभिर्मनजरगा प्रहर्षिणीयम्।। –छन्दोमञ्जरी द्वितीय स्तबक, पृ० ५७
७ महावीरचरितम् १/४४, ३/२१, ४/१५, ५/३ १५, ६/१४ २६
८ वही १/४४
६ वही ३/२१
१० वही ५/३
११ वही ६/२६
१२ (क) नसमरसला ग षड्वेदैहयैर्हरिणी मता। –छन्दोमञ्जरी द्वितीय स्तबक पृ० ८८
(ख) नसमै रसलैर्गेन युक्ता सप्तदशाक्षरा।
विच्छिन्ना हरिणी षड्भिश्चतुर्भि सप्तभिस्तथा।। –सुवृत्ततिलक १/३३
१३ महावीरचरितम् १/५१, २/११ ३०, ३/१७, ४/२८
१४ वही ४/२८

पृथ्वी[१]

रूपक मे ४ पद्य पृथ्वी छन्द मे उपन्यस्त हैं।[२] अन्तर्निगूढ कोपानल से दग्ध राम की स्थिति का वर्णन इस छन्द मे द्रष्टव्य है –

प्रचण्डपरिपिण्डित स्तिमितवृत्तिरन्तर्मुख
पिबन्निव मुहुर्मुहुर्झटिति मन्युरुच्चैर्ज्वलन्।
शिखाभिरिव निश्चरन्ननुपलभ्य दाह्यान्तर
पयोधिमिव वाडवो दहति मामतस्त्रायताम्।।[३]

उपजाति[४]

दूत सर्वमाय का सिद्धाश्रम मे आगमन[५], रावण का परिव्राजक वेष मे पर्णशाला मे प्रवेश[६] सुग्रीव तथा विभीषण का मरणासन्न वाली के शपथ से विवश होना[७] आदि प्रसगो मे उपजाति छन्द प्रयुक्त है।

इन्द्रवज्रा[८]

सुबाहु एव मारीच पर प्रहार करते हुये राम के पराक्रम का विश्वामित्र द्वारा वर्णन[९], जामदग्न्य का राम के गुणो से प्रभावित होना[१०] इन्द्रवज्रा छन्द मे उपनिबद्ध है।

शालिनी[११]

रामादिक का पुष्पक विमान सूर्य के निकट पहुँच जाता है, राम साश्चर्य देखते हैं –

---

१ जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरु। –छन्दोमञ्जरी द्वितीय स्तबक पृ० ८५
२ महावीरचरितम् २/२३, ५/२६, ६/६, ७/५
३ वही ५/२६
४ अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ता।। –वृत्तरत्नाकर ३/३०
५ महावीरचरितम् १/२८
६ वही ५/१६
७ वही ५/५७
८ स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग। –वृत्तरत्नाकर ३/२८
९ महावीरचरितम् १/६२
१० वही २/३७
११ मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेद लोकै।। –छन्दोमञ्जरी द्वितीय स्तबक, पृ० ३८

य पूर्वेषा न कुलस्य प्रतिष्ठा देव साक्षादेष धाम्ना निधानम्।
त्रय्या सार कोऽपि मूर्तो विवस्वान्प्रत्यासन्न पुष्पकारोहणेन।।[1]

उपर्युक्त पद्य मे शालिनी छन्द प्रयुक्त है।

पुष्पिताग्रा[2]

जनक को परशुराम पर शस्त्र–प्रयोग से विरत किया जाना[3], रामादिक के विवाह तथा परशुराम–विजय के अनन्तर विश्वामित्र का गमनार्थ निश्चय,[4] लक्ष्मण के प्रहार से रावण एव मेघनाद का क्रोधित होना[5] आदि पुष्पिताग्रा छन्द मे उपनिबद्ध हैं।

आर्या[6]

भयकर मूर्ति स्वरूप परशुराम का राम द्वारा वर्णन[7], युद्ध के समय रावण की अपेक्षा राम की प्रबल स्थिति का चित्ररथ द्वारा वर्णन[8] आदि प्रसग आर्या छन्द मे उपन्यस्त हैं।

दोष–निरूपण

आचार्यों ने दोषरहित, गुणयुक्त तथा सर्वत्र यथासम्भव अलकारयुक्त शब्द एव अर्थ को काव्य सज्ञा दी है।[9] आचार्य दण्डी ने दोष–परिहार पर बल देते हुए कहा है – काव्य मे अत्यल्प दोष की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, क्योकि सुन्दर शरीर भी कुष्ठ के चिह्न मात्र से कुरुप की श्रेणी मे आ

---

१ महावीरचरितम् ७/२१
२ अयुजि नयुगरेफतो यकारो।
युधि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।। –वृत्तरत्नाकर ४/१०
३ महावीरचरितम् ३/३०
४ वही ४/३२
५ वही ६/४७
६ लक्ष्मै तत् सप्त गणा गोपेता भवति नेह विषमे ज।
षष्ठो जश्च नलघु वा प्रथमेऽर्धे नियतमार्याया।।
षष्ठे द्वितीयलात् परके न्ले मुखलाश्च सयतिपदनियम।।
चरमेऽर्धे पञ्चमके तस्मादिह भवति षष्ठो ल।। –छन्दोमञ्जरी, पञ्चम स्तबक पृ० १३७
७ महावीरचरितम् २/२४
८ वही ६/५८
६ तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुन क्वापि। –काव्यप्रकाश १/४ का पूर्वार्ध

जाता है।[1] आचार्य दण्डी के अनुसार अनुचित एव अशिष्ट, सहृदय के हृदय को उद्विग्न करने वाला प्रयोग दोष है।[2] अलकारवादी आचार्य भामह ने केवल शब्दगत, अर्थगत एव अलकारगत दोषो का प्रकाशन किया है।[3] आचार्य दण्डी ने दोषो का परिगणन काव्य–शरीर के सन्दर्भ मे किया है।[4] ये अलकारवादी आचार्य रसादिक का अन्तर्भाव अलकारो मे करते हैं अतएव वे रसदोषो का उल्लेख नही करते हैं। कालान्तर मे आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा ध्वनिसम्प्रदाय की स्थापना के उपरान्त रस को काव्य मे उचित स्थान प्राप्त हुआ। उन्होने काव्य के आत्मभूत तत्त्व रस के सन्दर्भ मे गुण, दोष अलकार आदि काव्य के विभिन्न उपादानो का सम्यक् विवेचन किया है।[5] काव्यप्रकाशकार मम्मट के अनुसार मुख्यार्थ रस के अपकर्षक तत्त्वो को दोष कहते हैं। रस का आश्रय वाच्यार्थ है, अतएव वाच्यार्थ का अपकर्षकारक अर्थदोष कहा जाता है। शब्दादिक रस एव वाच्यार्थ दोनो के उपकारक हैं अत दोषो का सम्बन्ध शब्दो से भी हो जाता है।[6] इस प्रकार आचार्य मम्मट ने काव्य मे तीन प्रकार के दोषो का प्रतिपादन किया है– पददोष (शब्ददोष), अर्थदोष एव रसदोष। भामह, दण्डी रुद्रट, वामन प्रभृति आचार्यों ने अलकारगत दोषो का अलग से परिगणन किया है, किन्तु आचार्य मम्मट ने उनका शब्दार्थ दोषो मे ही स्पष्ट रूप से अन्तर्भाव किया है।[7]

प्रकृत रूपक से सम्बद्ध दोष–विवेचन प्रस्तुत है –

विरुद्धमति ग्त्

जहाँ समस्त पद प्रस्तुत अर्थ से भिन्न अर्थ की प्रतीति कराता है, उसे विरुद्धमतिकृत् दोष कहते हैं। यह समासगत दोष है।

---

१ तदल्पमपि नोपेक्ष्य काव्ये दुष्ट कथचन।
स्याद्वपु सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम्।। –काव्यादर्श १/७

२ गौर्गौ कामदुघा सम्यक्प्रयुक्ता स्मर्यते बुधै।
दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोत्व प्रयोक्तु सैव शसति।। –वही १/६

३ भामह–काव्यालकार १/३७–५८ २/३६–६४

४ दण्डी–काव्यादर्श २/५१ ३/१२५–१२६

५ तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिन ते गुणा स्मृता।
अगाश्रितास्त्वलकारा मन्तव्या कटकादिवत्।। –ध्वन्यालोक २/६

६ मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद् वाच्य।
उभयोपयोगिन स्यु शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि स।। –काव्यप्रकाश ७/४९

७ वही १०/१४२ एव वृत्तिभाग पृ० ५६७–५८३
–षष्टम सस्करण सवत् २०४२ वि० ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी

द्वितीय अक मे धनुर्भंग का समाचार ज्ञात होने पर रामवधार्थ आये हुये क्रुद्ध परशुराम का कथन है –

न त्रस्त यदि नाम भूतकरुणासतानशान्तात्मन–
स्तेन व्यारुजता धनुर्भगवतो देवाद्भवानीपते ।
तत्पुत्रस्तु मदान्धतारकवधाद्विश्वस्य दत्तोत्सव
स्कन्द स्कन्द इव प्रियोऽहमथवा शिष्य कथ न स्मृत ।।[1]

भवानी शब्द 'भवस्य शिवस्य पत्नी भवानी' शिव–पार्वती के पति–पत्नी सम्बन्ध का द्योतक है। भवानीपति शब्द भवानी 'पार्वती' के दूसरे पति की प्रतीति कराता है। अतएव प्रस्तुत पद्य मे प्रयुक्त 'भवानीपति' पद विरुद्धमतिकृत् दोष से युक्त है।[2]

वाच्यस्यानभिधान दोष

जहॉ आवश्यक रूप से कथनीय शब्द का प्रयोग न हो, उसे वाच्य का अनभिधान नामक वाक्यदोष कहते हैं।[3] द्वितीय अक मे राम के असाधारण व्यक्तित्व से प्रभावित परशुराम की स्वगत उक्ति है –

अप्राकृतस्य चरितातिशयस्य भावैरत्यद्भुतैर्मम हतस्य तथाप्यनास्था।
कोऽप्येष वीरशिशुकाकृतिरप्रमेयसामर्थ्यसारसमुदायमय पदार्थ ।।[4]

यहॉ 'तथापि' इस पद के द्वितीय वाक्य मे प्रयुक्त होने से प्रथम वाक्य को पृथक् करने के लिये 'अपहृतस्य' इस षष्ठ्यन्त पद के स्थान पर 'अपहृतोऽस्मि' इस रूप मे अपहृतत्व विधि का कथन न होने के कारण 'वाच्यस्यानभिधान' नामक वाक्यदोष की स्थिति है।[5]

भग्नप्रक्रमता

जहॉ प्रकरण अर्थात् प्रस्ताव का भग हो जाता है, उसे 'भग्नप्रक्रमता' नामक वाक्यदोष कहते हैं।[6]

---

१ महावीरचरितम् २/२८
२ द्रष्टव्य काव्यप्रकाश। –कारिका ७/५१ पृ० स० २७६
३ अवश्यवक्तव्यमनुक्त यत्र। –काव्यप्रकाश पृ० ३१५ कारिका ५४
४ महावीरचरितम् २/३६
५ द्रष्टव्य काव्यप्रकाश पृ० स० ३१५ (कारिका ५४)
६ भग्न प्रक्रम प्रस्तावो यत्र। –काव्यप्रकाश पृ० ३२०

द्वितीय अक मे राम वधार्थ आये हुये परशुराम के प्रति राम की उक्ति है –

अकलिततपस्तेजोवीर्यप्रथिम्नि यशोनिधा–
ववितथमदध्माते रोषान्मुनावभिधावति।
अभिनवधनुर्विद्यादर्पक्षमाय च कर्मणे
स्फुरति रभसात्पाणि पादोपसग्रहणाय च।।[1]

प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्ध मे परशुराम को यशोनिधि कहा गया है, तो उत्तरार्ध मे 'चरणवन्दना' के अनन्तर ही धनुष्–प्रयोग का निर्देश होना चाहिये था। यहॉ पूर्वार्ध मे निर्दिष्ट क्रम का उत्तरार्ध मे अनुसरण नहीं किया गया है, अतएव 'भग्नप्रकमता' नामक दोष है।[2]

साकाक्षता

जहॉ किसी पदविशेष के परिप्रेक्ष्य मे अभिलषित अन्य पद का अभाव रहता है, उसे साकाक्षता नामक अर्थदोष कहते हैं।

द्वितीय अक मे राम–सीता–परिणय एव राम को उत्तम आयुधो की प्राप्ति का वृत्तान्त ज्ञात होने पर अमात्य माल्यवान् रावण के लिये परोत्कर्ष अपने मान–यश का ह्रास एव स्त्रीरत्न की उपेक्षा सर्वथा असह्य होने की सकल्पना करता है –

आर्थित्वे प्रकटीकृतेऽपि न फलप्राप्ति प्रभो प्रत्युत
द्रुह्यन्दाशरथिर्विरुद्धचरितो युक्तस्तया कन्यया।
उत्कर्षं च परस्य मानयशसोर्विस्रसन चात्मन
स्त्रीरत्न च जगत्पतिर्दशमुखो दृप्त कथ मृष्यते।।[3]

प्रस्तुत पद्य मे 'स्त्रीरत्न' के पश्चात् 'उपेक्षितु पद की आकाक्षा रहती है। 'स्त्रीरत्न' के साथ 'परस्य' पद का अन्वय करना उचित नहीं है क्योकि 'परस्य' पद का 'उत्कर्ष' के साथ पहले ही अन्वय किया जा चुका है।[4]

---

१ महावीरचरितम् २/३०
२ द्रष्टव्य काव्यप्रकाश पृ० ३२० कारिका ७/५५ का पूर्वार्ध
३ महावीरचरितम् २/६
४ द्रष्टव्य काव्यप्रकाश पृ ३३७ कारिका ७/५७

कही दोष भी गुण

वक्ता बोद्धा व्यग्य वाच्य और प्रकरण आदि के वैशिष्ट्य के कारण कहीं दोष गुण हो जाता है तो कहीं न दोष होता है और न गुण।[1]

प्रथम अक मे लक्ष्मण भीषणाकृति, दर्प से भ्रमण करती हुयी ताटका के विषय मे मुनि विश्वामित्र से प्रश्न करते हैं –

> अन्त्रप्रोतबृहत्कपालनलकक्रूरक्वणत्ककण–
> प्रायप्रेखितभूरिभूषणरवैराघोषयन्त्यम्बरम्।
> पीतोच्छर्दितरक्तकर्दमघनप्राग्भारघोरोल्लल–
> द्व्यालोलस्तनभारभैरववपुदर्पोद्धत धावति।।[2]

प्रस्तुत पद्य मे बीभत्स रस व्यग्य है, श्रुतिकटु वर्ण एव दीर्घसमासोपेत क्लिष्ट रचना भी गुण हो गयी है।[3]

रसदोष

व्यभिचारीभावो, रसो तथा स्थायीभावो की स्वशब्दवाच्यता, अनुभाव एव विभाव की कष्टकल्पना से अभिव्यक्ति, अगी रस के विरुद्ध विभाव, अनुभाव एव व्यभिचारीभाव की वर्णना, रस की पुन पुन दीप्ति, अनवसर मे विस्तृति, अनवसर मे रस का विच्छेद, अगभूत रस का अत्यन्त विस्तार, प्रकृत (रस के मुख्य उपकरणो) का विस्मरण, प्रकृति अर्थात् पात्रो का प्रतिकूल वर्णन, रस के अनुपकारक का वर्णन आदि रसदोष हैं।[4]

---

१ वक्त्राद्यौचित्यवशाद्दोषोऽपि गुण क्वचित् क्वचिन्नोभौ। –काव्यप्रकाश ७/५६ पृ० ३४६

२ महावीरचरितम् १/३५

३ द्रष्टव्य काव्यप्रकाश पृ० ३४७ कारिका ७/५६

४ व्यभिचारिरसस्थायिभावाना शब्दवाच्यता।
कष्टकल्पनया व्यक्तिरनुभावविभावयो ।।
प्रतिकूलविभावादिग्रहो दीप्ति पुन पुन।
अकाण्डे प्रथनच्छेदौ अगस्याप्यतिविस्तृति ।।
अङ्गिनोऽननुसन्धान प्रकृतीना विपर्यय।
अनङगस्याभिधान च रसे दोषा स्युरीदशा ।। –काव्यप्रकाश ७/६०–६२

अकाण्डच्छे

अनुपयुक्त स्थान पर रस को भग कर देना अकाण्डच्छेद नामक दोष कहा जाता है।

द्वितीय अक मे धनुर्भंग से क्रोधित हो परशुराम रामवधार्थ मिथिला पहुॅचते हैं, जहॉ राम तथा परशुराम का वार्त्तालाप वीर रस की पराकाष्ठा पर पहुॅच जाता है –

राम – नृशसता हि नाम पुरुषदोष। तत्र का विकत्थना?

अपि च

जामदग्न्य – आ निर्भरक्षत्रियबटो। अति नाम प्रगल्भसे।

प्रहर नमतु चाप प्राक्प्रहारप्रियोऽह
मयि तु कृतनिघाते कि विदध्यात्परेण।
झटिति विततवह्न्यद्गारभास्वत्कुठार–
प्रविघटितकठोरस्कन्धबन्ध कबन्ध ।।[1]

एतद्नन्तर जनक शतानन्द के हस्तक्षेप के पश्चात् राम को ककणमोचनार्थ कन्यान्त पुर मे गमन का आदेश दिया जाता है। राम परशुराम से कहते हैं –

राम – जामदग्न्य। एवमादिशन्ति गुरव।

जामदग्न्य – क्रियता लोकधर्म। पश्यन्तु त्वा ज्ञातय।[2]

यहॉ राम का कन्यान्त पुर मे गमन रसानुभूति मे बाधक है, अत अकाण्डच्छेद नामक रसदोष है।[3]

प्रबन्धगत दोष .

रूपक मे अन्वितित्रय का ध्यान रखना आवश्यक है – कालान्विति, स्थानान्विति एव कार्यान्विति। महावीरचरितम् मे अयोध्या से लका पर्यन्त विस्तृत कथाभाग का उपनिबन्धन किया गया

---

१ महावीरचरितम् २/४६
२ वही २/५०–५१
३ द्रष्टव्य काव्यप्रकाश पृ० ३६२ कारिका ७/६१ का उत्तरार्ध

है जो कालान्विति की दृष्टि से अस्वाभाविक प्रतीत होता है। कथावस्तु कई वर्षों तक चलती है जिसे रगमच पर प्रस्तुत करना नियमविरुद्ध प्रतीत होता है।

कवि ने अभिधावृत्ति का आश्रय लेकर किसी भी प्रसग का अबाधगत्या सविस्तर वर्णन किया है फलस्वरूप कथा–प्रवाह मे विच्छेद उत्पन्न हो जाता है, यथा – परशुराम द्वारा क्रोधित हो आत्मप्रशसापूर्ण वचनो का प्रयोग करना तथा वशिष्ठादिक गुरुजनो का तिरस्कार इत्यादि प्रसग सविस्तर वर्णित है।

प्रकृत रूपक मे हास्य–प्रसग का सर्वथा अभाव है। यदि कहीं है तो शिष्ट परिहास – जहॉ राम परशुराम के पराक्रम, वीरता का वर्णन करते हैं, साथ ही प्रत्याख्यान भी करते हैं। परशुराम एव शतानन्द का परस्पर तीक्ष्ण वार्त्तालाप, कटाक्ष, व्यग्य हास्य के अभाव मे वाक्कलह मात्र रह जाता है।

कवि ने अत्यन्त क्लिष्ट भाषा का प्रयोग किया है। कथोपकथनो मे गद्य भाग सविस्तर उपनिबद्ध है, अतएव आनन्द एव सरसता का अभाव परिलक्षित होता है। भवभूति ने वैकन्तक शुण्डार, खुरली, काण्डीर, काण्डपृष्ठ आदि अप्रयुक्त शब्दो का बहुधा प्रयोग किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रकृत रूपक मे विद्वानो ने अनेक दोषो का उल्लेख किया है, तथापि इसे सर्वथा समीचीन नहीं माना जा सकता। यद्यपि कवि ने अयोध्या से लका पर्यन्त विस्तृत रामकथा का उपनिबन्धन किया है, तथापि कालान्विति को ध्यान मे रखते हुए अनेक घटनाक्रमो को सर्वथा नवीन रूप मे प्रस्तुत किया है। यथा– रामादिक के वनगमन का प्रसग मिथिला मे ही प्रस्तुत कर दिया है। परशुराम का राम, वशिष्ठादिक के साथ वार्त्तालाप–प्रसग का सविस्तर वर्णन अगी वीर रस का परिपोष करता है। कवि ने पात्रो के व्यक्तित्व के अनुरूप वर्णन किया है जो उनकी सूक्ष्मदर्शिता, विद्वत्ता, भाषा पर एकाधिकार को प्रदर्शित करता है। अतएव विस्तृत इतिवृत्त का उपनिबन्धन होने पर भी विद्वद्वर्ग द्वारा निर्दिष्ट दोष भी गुण प्रतीत होता है। कतिपय दोषो के उल्लेख से भवभूति के महत्त्व पर कोई प्रभाव नहीं पडता है।

■

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१–	अथर्ववेदसहिता	सस्करण १९९६, चौखम्बा सस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
२–	अर्थसग्रह	डा० कामेश्वर नाथ मिश्र द्वितीय सस्करण १९८३ चौखम्बा सरस्वती प्रकाशन, वाराणसी।
३–	अमरकोष	पण्डित वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर, द्वितीय सस्करण १९८७ चौखम्बा सस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली।
४–	अष्टाध्यायी	चौखम्बा बनारस।
५–	आर्यासप्तशती	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
६–	ईशावास्योपनिषद्	वाचस्पति पाण्डेय विकल (सम्पादक), साहित्य भण्डार, शिक्षा साहित्य प्रकाशक, सुभाष बाजार, मेरठ।
७–	उत्तररामचरितम्	डा० कृष्णकान्त शुक्ल, डा० उमाकान्त शुक्ल एव डा० रमाकान्त शुक्ल, षष्ठ सस्करण १९८४, साहित्य भण्डार, शिक्षा साहित्य प्रकाशक, सुभाष बाजार, मेरठ।
८–	उत्तररामचरितम्	डा० रमाकान्त त्रिपाठी, तृतीय सस्करण १९९५, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
९–	ऋग्वेद	चौखम्बा सस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
१०–	ऐतरेय ब्राह्मण	आनन्दाश्रम प्रेस, पूना।
११–	औचित्यविचारचर्चा	आचार्य श्री व्रजमोहन झा, चतुर्थ सस्करण १९९२, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
१२–	कामसूत्र	पुनर्मुद्रित सस्करण १९९७, चौखम्बा सस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
१३–	कामसूत्र परिशीलन	वाचस्पति गैरोला, तृतीय सस्करण १९९५, चौखम्बा सस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
१४–	कालिदास और भवभूति के नाटको का तुलनात्मक अध्ययन	डा० सुरेन्द्रदेव शास्त्री, सस्करण १९६६, साहित्य भण्डार सुभाष बाजार, मेरठ।
१५–	काव्यप्रकाश	स्व० आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि (व्याख्याकार), डा० नगेन्द्र (सम्पादक) षष्ठ सस्करण, सम्वत् २०४२ वि०, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी।

१६–	काव्यप्रकाश	(झल्कीकर टीका) १६८३, भाण्डारकर–प्राच्य–विद्या–सशोधन–मन्दिरम्, पुणे।
१७–	काव्यप्रकाश	डा० सत्यव्रत सिह, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी।
१८–	काव्यमीमासा	डा० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चतुर्थ सस्करण १६६३, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
१६–	काव्यादर्श	धर्मेन्द्र कुमार गुप्त, प्रथम सस्करणम् १६७३ ई०, मेहरचन्द लछमनदास, दिल्ली।
२०–	काव्यालकार (भामह)	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, १६६२ ई०।
२१–	काव्यालकार (रुद्रट)	प० रामदेव शुक्ल सस्करण १६८६, चौखम्बा विद्या–भवन, वाराणसी।
२२–	काव्यालकारसूत्राणि	प० श्री हरगोविन्द शास्त्री, द्वितीय सस्करण १६६५, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
२३–	कौटिलीय अर्थशास्त्र	वाचस्पति गैरोला, चतुर्थ सस्करण १६६६, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
२४–	कुमारसम्भवम्	डा० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी नवम सस्करण १६८६, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
२५–	गउडवहो	डा० मिथिलेश कुमारी मिश्र, द्वितीय सस्करण १६६४, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
२६–	चन्द्रालोक	प० बदरीनाथ शुक्ल, द्वितीय सस्करण १६७१, मोतीलाल बनारसीदास।
२७–	छन्द शास्त्रम्	प० केदारनाथ, पुनर्मुद्रित १६६४, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
२८–	छन्दोमञ्जरी	डा० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, द्वितीय सस्करण १६८३, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
२६–	छान्दोग्योपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर।
३०–	तर्कभाषा	आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, तृतीय सस्करण वि०स० २०३६, चौखम्बा सस्कृत सस्थान, वाराणसी।
३१–	तत्त्वप्रदीपिका (चित्सुखी) (नयन प्रसादिनी व्याख्या)	स्वामी योगीन्द्रानन्द, षड्दर्शनप्रकाशनप्रतिष्ठानम्, उदासीन सस्कृत विद्यालय, काशी।
३२–	तात्पर्यटीका	चौखम्बा सस्कृत सीरीज, बनारस।
३३–	तैत्तिरीयोपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर।

३४–	दशरूपक	डा० भोलाशकर व्यास, नवम सस्करण १६६०, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।
३५–	दशरूपकम्	डा० श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार मेरठ।
३६–	धर्मशास्त्र का इतिहास	डा० पी०वी० काणे द्वितीय सस्करण १६८४, उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान, लखनऊ।
३७–	ध्वन्यालोक	आचार्य जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
३८–	ध्वन्यालोक	डा० रामसागर त्रिपाठी, द्वितीय सस्करण १६७५ (वाराणसी) पुनर्मुद्रण १६८६ (दिल्ली), मोतीलाल बनारसीदास।
३६–	ध्वन्यालोक	आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि तृतीय सस्करण सवत् २०४२ वि०, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी।
४०–	ध्वन्यालोकलोचन	डा० रामसागर त्रिपाठी, द्वितीय सस्करण १६७५ (वाराणसी), पुनर्मुद्रण १६८६ (दिल्ली), मोतीलाल बनारसीदास।
४१–	नाटकलक्षणरत्नकोश	श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, प्रथम सस्करण १६७२, चौखम्बा सस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।
४२–	नाट्यदर्पण	प० थानेशचन्द्र उप्रेती द्वितीय सस्करण १६६४, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
४३–	नाट्यशास्त्रम्	बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, प्रथम सस्करण वि०स० २०४०, चौखम्बा सस्कृत सस्थान, वाराणसी।
४४–	पातञ्जलयोगदर्शनम्	डा० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, द्वितीय सस्करण १६८८, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
४५–	प्राकृतदीपिका	डा० सुदर्शन लाल जैन प्रथम सस्करण, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान, वाराणसी।
४६–	प्राकृत प्रकाश	श्रीजगन्नाथशास्त्रिहोशिग, षष्ठम् सस्करण वि० स० २०३६, चौखम्बा सस्कृत सस्थान, वाराणसी।
४७–	प्राकृत भाषा	प्रबोध बेचरदास पडित, सस्करण १६५४, श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस।

४८–	प्राकृत भाषाओ का व्याकरण	आर० पिशल (लेखक) डा० हेमचन्द्र जोशी (अनुवादक) प्रथम सस्करण विक्रमाब्द २०१५, बिहार राष्ट्रभाषा–परिषद् पटना।
४९–	प्राकृत व्याकरण	आचार्य श्री मधुसूदन प्रसाद मिश्र, प्रथम सस्करण वि०स० २०१७ चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
५०–	प्राकृत साहित्य का इतिहास	जगदीशचन्द्र जैन, द्वितीय सस्करण १९८५, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
५१–	बालरामायणम्	डा० गगा सागर राय, प्रथम सस्करण १९८४, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
५२–	बृहदारण्यकोपनिषद्	गीता प्रेस गोरखपुर।
५३–	ब्रह्माण्डपुराण	कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
५४–	भरतप्रणीत नाट्यशास्त्रीय परम्परा तथा दशरूपक	डा० ज्ञानदेवी श्रीवास्तव, सस्करण १९६४, शिव पब्लिशिग हाउस, इलाहाबाद।
५५–	भवभूति और उनकी नाट्यकला	डा० अयोध्या प्रसाद सिह, द्वितीय सस्करण १९८८, मोतीलाल बनारसीदास।
५६–	भवभूति के नाटक	डा० व्रज वल्लभ शर्मा, प्रथम सस्करण १९७३, मध्य–प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
५७–	भवभूति व्यक्तित्व और उनके पात्र	डा० अजलि रोझा, सस्करण १९८४, राजपाल एण्ड सन्स।
५८–	भविष्य पुराण	नाग प्रकाशन, दिल्ली।
५९–	भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनयदर्पण	वाचस्पति गैरोला, सस्करण १९८६, चौखम्बा सस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
६०–	भारतीय साहित्य शास्त्र	डा० गणेश त्र्यम्बक देश पाण्डेय, १९६० पापुलर बुक डिपो, बम्बई।
६१–	भाषा विज्ञान	डा० भोलानाथ तिवारी, बीसवॉ सस्करण १९८७, किताब महल, इलाहाबाद।
६२–	भाषा विज्ञान एव भाषाशास्त्र	डा० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, प्रथम सस्करण १९८०, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
६३–	भोजप्रबन्ध	प० केदारनाथ शर्मा (टीकाकार), डा० भोलाशकर व्यास (भूमिका लेखक), तृतीय सस्करण १९८८ चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
६४–	मनुस्मृति	चौखम्बा सस्कृत सीरीज, बनारस।

६५–	महाकवि भवभूति	डा० गगा सागर राय प्रथम सस्करण, १६६५, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
६६–	महावीरचरितम्	आचार्य श्रीरामचन्द्र मिश्र द्वितीय सस्करण स० २०२५, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
६७–	मालतीमाधवम्	श्री शेषराज शर्मा शास्त्री काव्यतीर्थ, द्वितीय सस्करण वि० सवत् २०२७, चौखम्बा सस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।
६८–	मेघदूतम्	आचार्य श्री शेषराज शर्मा रेग्मी, अष्टम सस्करण १६८७, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी।
६६–	रसगगाधर	प० मदनमोहन झा (हिन्दी व्याख्याकार), चतुर्थ सस्करण १६६५, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
७०–	रसार्णवसुधाकर	त्रिवेन्द्रम् सस्कृत सीरीज १६१६ ।
७१–	राजतरगिणी	रामतेजशास्त्री पाण्डेय, पुनर्मुद्रित सस्करण १६८५, चौखम्बा शास्त्री प्रतिष्ठान, दिल्ली।
७२–	रामकथा (उत्पत्ति और विकास)	फादर कामिल बुल्के, द्वितीय सस्करण नवम्बर, १६६२ ।
७३–	वक्रोक्तिजीवितम्	श्री परमेश्वरदीन पाण्डेय, द्वितीय सस्करण १६६४, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
७४–	वराह पुराण	काशीराज ट्रस्ट, रामनगर, वाराणसी।
७५–	वाग्भटालकार	डा० सत्यव्रत सिह, सस्करण १६५७, चौखम्बा विद्या–भवन, वाराणसी।
७६–	वायु पुराण	आनन्दाश्रम, सस्कृत सीरीज, पूना।
७७–	विष्णु पुराण	नाग प्रकाशन, दिल्ली।
७८–	व्यक्तिविवेक	डा० विभारानी दूबे, प्रथम सस्करण वि० स० २०५२ (१६६५), कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
७६–	वृत्तरत्नाकर	आचार्य बलदेव उपाध्याय (व्याख्याकार) तथा डा० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी (भूमिका लेखक), षष्ठम सस्करण १६६६, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
८०–	शारदातनय का भावप्रकाशन, विवेचनात्मक अध्ययन	डा० शशि तिवारी, प्रथम सस्करण १६८४, कैशिकी प्रकाशन, आगरा।
८१–	श्वेताश्वतरोपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर, बारहवॉ सस्करण स० २०५० ।
८२–	श्रीमद्भागवतम्	प० श्री रामतेज शास्त्री, सस्करण १६६३, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।

८३—	श्रीमद्वाल्मीकि रामायण	नवम सस्करण स० २०४७ गीता प्रेस गोरखपुर।
८४—	श्री शकरदिग्विजय (माध्वाचार्य विरचित)	प० बलदेव उपाध्याय (अनुवादक) तृतीय सस्करण स० २०४२ वि०, महन्त नरोत्तम गिरि, श्री श्रवणनाथ ज्ञानमन्दिर, हरिद्वार।
८५—	सरस्वतीकण्ठाभरण	जैनप्रभाकर प्रेस, काशी।
८६—	सामान्य भाषाविज्ञान	डा० बाबू राम सक्सेना, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १८८३ शकाब्द।
८७—	साहित्यदर्पण	डा० सत्यव्रत सिह, षष्ठ सस्करण १९८२, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
८८—	सिद्धान्तकौमुदी तत्त्वबोधिनी टीका	वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर,पुनर्मुद्रित सस्करण १९९४, चौखम्बा सस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
८९—	सुवृत्ततिलक	चौखम्बा सस्कृत सीरीज, १९६८ ई०।
९०—	सक्षेपशारीरकम्	स्वामी रामानन्द (लेखक), स्वामी योगीन्द्रानन्द (सम्पादक), सन् १९८७, षड्दर्शनप्रकाशन प्रतिष्ठानम्, श्रीउदासीन—सस्कृत—महाविद्यालय, वाराणसी।
९१—	सस्कृत आलोचना	आचार्य बलदेव उपाध्याय, चतुर्थ सस्करण १९९१, उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान, लखनऊ।
९२—	सस्कृत कविदर्शन	डा० भोलाशकर व्यास तृतीय सस्करण १९६८, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
९३—	सस्कृत काव्यधारा	राहुल साकृत्यायन, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
९४—	सस्कृत साहित्येतिहास	आचार्य लोकमणि दाहाल, प्रथम सस्करण वि०स० २०५० (१९९३), कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
९५—	सस्कृत साहित्य का इतिहास	वाचस्पति गैरोला, तृतीय सस्करण १९८५, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
९६—	सस्कृत साहित्य का इतिहास	आचार्य बलदेव उपाध्याय, दशम सस्करण १९७८, शारदा निकेतन, वाराणसी।
९७—	सस्कृत साहित्य की रूपरेखा	स्व० प० चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा डा० शान्तिकुमार नानू राम व्यास, चतुर्दश सस्करण १९८०, साहित्य निकेतन, कानपुर।
९८—	सस्कृत सुकवि समीक्षा	प० बलदेव उपाध्याय, तृतीय सस्करण, १९८७, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
९९—	सस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ	पडित तारिणीश झा, पञ्चम सस्करण १९८६, रामनारायणलाल बेनीप्रसाद, इलाहाबाद।

१००— हिन्दी कुवलयानन्द — डा० भोलाशकर व्यास, चतुर्थ सस्करण १६६५, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी।

ENGLISH BOOKS

1 A History of Sanskrit Literature — Arthur A Macdonell, First edition, London, 1900, Reprinted Delhi 1971, Motilal Banarasidas, Delhi

2 Bhavabhuti — V V Mirashi, First edition 1974, Motilal Banarasidas

3 Bhavabhuti — Edited by R D Karmarkar, Karnataka University, Dharwar, 1971

4 Bhavabhuti — G K Bhat, First published 1979, Second Printing, 1984, Sahitya Academy, Delhi

5 Bhavabhuti and his Place in Sanskrit Literature — Anudoram Borooah, Publication Assam, 1971

6 Bhavabhuti's Uttarramcharitam — Dr Saradaranjan Ray, Sixth edition, revised and enlarged by Kumudranjan Ray

7 Geographical Dictionary of Ancient and Maedeval India — Nando Lal Dey

8 Gottinger Gelehrte Anzeigen Vol II — 1888

9 (History and Culture of the Indian People, Vol IV), The Age of Imperial Kannauj — Forward by K M Munshi, Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay, Third edition, R C Majumdars and others

10 History of Sanskrit Poetics — P V Kane,Reprint 1994, Motilal Banarasidas, Delhi

11 Kāmasūtra — Chaukhamba Sanskrit Series

12 Mahavircharitam — Todarmall, Oxford University Press, London, 1928

13 Mahavircharitam — Anudoram Borooah, Publication Board Assam, Gauhati, 1969

14 Malatimadhava — M R Kale, Gopal Narayan and Co , Bombay, 1928

15 Malatimadhava — R G Bhandarkar, Bombay 1876, Bombay Sanskrit Series No 15

16	Mind and Art of Bhavabhuti	Dr Vimla Gera, First edition 1973, Meharchand Lachhmandas, Delhi
17	Natyasastra of Bharatmuni with Abhinavabharati	Edited by Ravishanker Nagar, Third edition
18	Observations on the Life and Works of Bhavabhuti	R G Harshe, Translated from the Original French by Jang Bahadur Khanna, First Published French 1938, English 1974, Meharchand Lachhmandas, Delhi
19	Rama's Later History or Uttara-Ramcharita (An Ancient Hindu Drama by Bhavabhuti)	S K Belvelkar, Harvard University, Part-I, Intro & Translation (Harvard Oriental Series Vol XXI Cambridge Massachusetts, Harvard University Press, 1915
20	Survey of Sanskrit Literature	C Kunhan Raja (Forward by K M Munshi) First edition 1962, Bharatiya Vidyabhawan, Bombay
21	The Sanskrit Drama	A B Keith, First Indian edition 1992, Motilal Banarasidas Publishers, Delhi
22	Uttarramcharita of Bhavabhuti	P V Kane and C N Joshi, Fourth edition, 1962, Motilal Banarasidas

■